अपश्चिम तीर्थंकर

महावीर

भाग-5

अपश्चिम तीर्थंकर

महावीर

भाग-5

आवृत्ति : प्रथम संस्करण, जून 2022
4000 प्रतियाँ

मूल्य : ₹ 150/-

प्रकाशक : **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261, 3292177, 2270359
e-mail : ho@sadhumargi.com

ISBN No. : 978-93-91137-16-8

मुद्रक : **एस आर जी ट्रेडर्स प्रा.लि.**
बी 41, सेक्टर 67, नोएडा

पथ प्रदर्शक भगवान महावीर

जैन धर्म की मान्यता में 24 तीर्थंकर हुए हैं। तीर्थंकर यानी साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूपी चार तीर्थ की स्थापना करने वाले। चौबीस तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं भगवान महावीर। श्रमण भगवान महावीर का अपना विशिष्ट स्थान है। उनके उपदेशों को अंगीकार कर बहुत से लोगों ने अपना कल्याण किया है। उनकी शिक्षाएं उस काल में तो प्रासंगिक थीं ही आज के दौर में और अधिक प्रासंगिक हैं। आगे भी रहेंगी। इसलिए रहेंगी क्योंकि वे अलौकिक पुरुष थे। अलौकिक पुरुषों का जीवन अनूठी आभा से अलंकृत रहता है। अलौकिक व्यक्ति अपने दिव्य प्रकाश से अनेक आत्माओं का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अनेक को प्रेरित करते हैं।

पथ प्रदर्शक, प्रेरक, अलौकिक भगवान महावीर की जीवन गाथा का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। यूँ तो भगवान महावीर के जीवन को शब्दों में बयां करना दुष्कर है किंतु श्री विपुला श्री जी म. सा. के पुरुषार्थ ने इस दुष्कर कार्य को आसान कर दिया। विपुला श्री जी का पुरुषार्थ उस दिशा में काफी दिनों से चल रहा था। अनवरत चल रहा था। उसी दिशा में उन्होंने चूर्णि आदि कई प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया। पुरुषार्थ का सुखद परिणाम मिला है '**अपश्चिम तीर्थंकर महावीर**' ग्रंथ के रूप में। यह ग्रंथ का पाँचवाँ भाग है। इससे पहले चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं। भगवान महावीर के अलौकिक व्यक्तित्व को देखते हुए एक-दो भागों में पूरा करना सम्भव भी नहीं था। यदि उसे सम्भव बनाया भी जाता तो पाठकों के लिए सुविधाजनक नहीं होने से कम उपयोगी रहता।

भगवान महावीर के सिद्धांतों पर कदम बढ़ाने वाली साध्वी श्री जी का देवलोकगमन दिनांक 2 मई 2021 को हो गया। अंतिम समय तक आपने

अपने शरीर को भगवान महावीर के जीवन पर शोध करने में लगाए रखा। यह सब वे करती रहीं आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. व उपाध्याय प्रवर श्री राजेश मुनि जी म. सा. के कुशल नेतृत्व में। आचार्य श्री की सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचनाओं से श्री विपुला श्री जी का ज्ञानकोष लगातार समृद्ध होता रहा तो उपाध्याय प्रवर का व्यक्तित्व उन्हें प्रभावित करता रहा।

'**अपश्चिम तीर्थंकर महावीर, (भाग 5)**' के नाम से इस पुस्तक को पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हम विदुषी महासती श्री विपुला श्री जी के प्रति, उनके पुरुषार्थ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। साथ ही पाठकों से अनुरोध करते हैं कि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो हमें जरूर बतायें, जिससे हम भविष्य में उससे बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**अपश्चिम तीर्थंकर महावीर (भाग-5)**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

स्व. श्रीमती मिश्री देवी एवं पूनम चंद जी दस्साणी
की स्मृति में
समस्त दस्साणी परिवार
बीकानेर

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

अनुत्तर
ज्ञान-चर्या का
सोलहवाँ वर्ष
पेज नं. 8-91
अनुत्तर
ज्ञान-चर्या के
सोलहवें वर्ष के
सन्दर्भ
पेज नं. 92-103
अनुत्तर
ज्ञान-चर्या के
सोलहवें वर्ष के
टिप्पण
पेज नं. 104-121
अनुत्तर
ज्ञान-चर्या का
सत्रहवाँ वर्ष
पेज नं. 122-128
अनुत्तर
ज्ञान-चर्या के
सत्रहवें वर्ष के
सन्दर्भ
पेज नं. 129-130
अनुत्तर
ज्ञान-चर्या के
सत्रहवें वर्ष के
टिप्पण
पेज नं. 131-136

परिशिष्ट - प्रथम व द्वितीय पेज नं. 199-275

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का
सोलहवाँ वर्ष

विषय-वस्तु

क्र.सं.	विषय
1.	भगवान महावीर का मिथिला से विहार
2.	केशी-गौतम का स्वर्णिम-मिलन
3.	केशी कौन से ?
4.	शिव-राजर्षि की प्रणामा-प्रव्रज्या
5.	शिव राजर्षि को विभंग ज्ञान और प्रव्रज्या
6.	हस्तिनापुर में पोट्टिल की दीक्षा
7.	गणधर अग्निभूति की पृच्छा - चमरेन्द्र की ऋद्धि/उत्पात पर्वत/पद्मवर वेदिका वनखण्ड/तृणो-मणियों के शब्द/बावड़ियों-त्रिंसोपान-तोरण आदि का वर्णन/तिगिच्छ-कूट पर्वत/चमरचंचा राजधानी/वैक्रिय शक्ति का वर्णन
8.	वायुभूति जी का वैरोचनेन्द्र वैरोचन-राज बलि की ऋद्धि/शक्ति का वर्णन
9.	अग्निभूति जी और वायुभूति जी की जिज्ञासाएँ - भवनपति/वाणव्यन्तर/ ज्योतिष्क और वैमानिक देवों सम्बन्धी समाधान भगवान महावीर द्वारा
10.	ईशानेन्द्र जी का आगमन और उनके पूर्व भव सम्बन्धी गौतम पृच्छा
11.	चातुर्मास-वाणिज्य-ग्राम

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का सोलहवाँ वर्ष
'संगम'

समर्पण शिष्य का

भगवान[1] महावीर[1] का परम समागम[क] प्राप्तकर हम धन्य-धन्य हो रहे हैं। कितना जबर्दस्त आनन्द आ रहा है। अलकापुरी[ख] के सुख भी फीके लग रहे हैं। अहो! मन अब कहीं ठहरता ही नहीं, नयनों से छवि ओझल होती ही नहीं, इन स्वर्णिम पलों के सुखद अहसास को कैसे खो सकते हैं? तब क्या करें, तो क्या हम भगवान को यहीं पर नहीं रोक सकते? हम सभी मिलकर रास्ता रोक ही देंगे तो भगवान यहाँ से कैसे पधार जायेंगे?

श्रावक जी :- अरी बावरी! क्या तीर्थेश[2] प्रभु को हम रोक सकते हैं... नहीं... नहीं, वे तो कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् एक दिन के लिए भी रुक नहीं पायेंगे... अब तो बहुत ही स्वल्प[ग] समय अवशेष है... भगवान... वे तो पधार ही जायेंगे और हमें विरहानल[घ] में जलना ही होगा।

श्राविका जी :- तब... हम कहाँ ऐसी मधुरिम वाणी श्रवण करने जायेंगे? हमारा दिल... उसकी पुकार कौन सुन पायेगा...? उस दिव्य दीदार[ङ] के दर्शन किये बिना हमारा हृदय-कमल मुरझा ही जायेगा...। तुम जाओ ना... प्रभु से बोलो ना...। वे तो करुणा के अवतार हैं। क्या हमारी पुकार ना सुनेंगे...? जरूर श्रवण कर ही लेंगे। जाओ जल्दी जाओ...।

श्रावक जी :- उनके दर्शन के लिए लाखों नयन पलक पावड़े बिछाये हैं। वे प्रतिपल प्रभु की राह निहार रहे हैं। उनका मन-आँगन भगवान को देखे बिना शून्यवत् बन गया और भगवान भी अब ना रुक पायेंगे। मैं उन्हें नहीं रोक सकता।

(क) समागम - सान्निध्य **(ख) अलकापुरी** - कुबेर की राजधानी **(ग) स्वल्प** - थोड़ा **(घ) विरहानल** - विरह की अग्नि **(ङ) दीदार** - मुख

श्राविका जी :- तब क्या करें? कैसे रोकें भगवान को? मन भगवान[3] के बिना कहीं ठहरता नहीं और भगवान यहाँ ठहरते नहीं। तब क्या करें?... क्या समाधान है?

श्रावक जी :- बस... एक ही समाधान...

श्राविका जी :- बतलाइए क्या?

श्रावक जी :- आकांक्षा[क] के लाल डोरे के बन्धनों को तोड़कर निराकांक्ष[ख] बन प्रभु में ही लीन हो जाओ।

श्राविका जी :- परमात्मा[4] भगवान महावीर की प्रसन्नता के लिए समर्पण का आकाशदीप[ग] जलाऊँ?

श्रावक जी :- परमात्मा प्रभु की प्रसन्नता के लिए नहीं... क्योंकि परमात्मा कभी प्रसन्न या नाराज नहीं होते... वे सदैव वीतराग[घ] भावों में रमण करते हैं। तुम अपनी आत्म-विजय को प्राप्त करने के लिए कर दो समर्पण... कर दो अपना सब कुछ अर्पण... फिर भगवान सदैव तुम्हारे अन्तर्मन में समाये ही रहेंगे...

श्राविका जी - हाँ... हाँ... समर्पण ही, सर्वस्व को पाने का द्वार है। समर्पण से ही अभेद के द्वार उद्घाटित होते हैं। मैं... अपने भावों का... परिपूर्ण समर्पण करने को उद्यत होती हूँ।

शरद[ङ] की रात्रि में जब स्वच्छ नीले नभ[च] के आँगन नक्षत्रों का प्रकाश झिलमिला रहा था, चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरणों से धरती के चरणों का स्पर्श कर रहा था, उसी शांत यामिनी[छ] में मिथिला[5] में ये श्रावक और श्राविका परमात्मा के मिलन की आश सँजोये अनन्त-आस्था के सुमेरु पर आरोहण कर रहे थे।

इस समय मिथिला[II] की भव्यता का क्या कहना? जब से श्रमण भगवान महावीर पधारे तब से मिथिला का कण-कण आलोकित हो गया है।[6] आनन्द के इस वातावरण में भव्यजन अपने अन्तर् में प्रसन्नता का अनुभव करते हुए सुख के महासागर में गोते लगा रहे थे। अहो! ऐसे अनन्त पुण्यशाली भगवान के दर्शन करते ही मन बाग-बाग हो जाता था। हृदय में उल्लास की

(क) आकांक्षा - आसक्ति, इच्छा **(ख) निराकांक्ष** - इच्छा रहित, उत्सुकता रहित **(ग) आकाशदीप** - प्रकाश-स्तम्भ पर रखा हुआ दीपक **(घ) वीतराग** - राग-द्वेष रहित **(ङ) शरद** - एक ऋतु, जो आसोज कार्तिक में रहती है **(च) नभ** - आकाश **(छ) यामिनी** - रात्रि

उर्मियाँ[क] अठखेलियाँ[ख] करने लगती थी। मस्तिष्क में शुभ विचारों का जागरण नवीन स्फूर्ति देने वाला बन जाता था। नयन तो प्रभु के दिव्य दर्शन करते ही रुक जाते थे, थम जाते थे, हटने का नाम भी नहीं लेते। प्रभु के दिव्य दीदार करने के पश्चात् और कहीं दृष्टि थमती नहीं? उनके मधुर-मधुर वचनों को श्रवण करके मन स्वयं के अस्तित्व को भी विस्मृत[ग] कर देता था। समवसरण की सौम्य छटा जिसमें प्रवेश करते ही ताप, सन्ताप समारत हो जाते थे। पलक झपकते ही मानों दिन और रात व्यतीत हो रहे थे। यामिनी के शान्त-प्रशान्त शून्य क्षणों में ये सब दृश्य चित्रपट की भाँति भव्यों के हृदय में उभरते हुए निरन्तर मन को पावन कर देते थे। जैसे चकोर चन्द्रकिरणों का अनुपान[घ] करते हुए समस्त यामिनी को अभेद कल्पना में व्यपगत[ङ] कर देता है, वैसा ही सुहावना मौसम मिथिला में चल रहा था।

ऐसे सुहावने क्षणों में बाहर से भीतर की यात्रा करने वाले भव्यजन अपने जीवन को विभिन्न गुणों से अलंकृत[च] करने में लगे थे। किसी ने जीवन पर्यन्त क्रोध के जहर को समाप्त कर दिया, तो किसी ने मान की अकड़ को चूर-चूर कर डाला। किसी ने माया को लील दिया[छ], तो किसी ने लोभ के नाग को पछाड़ दिया। किसी ने राग की आग को बुझा दिया, तो किसी ने द्वेष के दावानल[ज] को परिसमाप्त कर दिया। निरन्तर सभी भव्य अपनी-अपनी मंजिल को प्राप्त करने हेतु कदम बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार त्याग के वातावरण में संवलित[झ] वर्षावास का यह पावन समय हवा के तीव्र वेग की तरह सनन-सनन करता हुआ व्यतीत हो रहा था। आखिरकार कार्तिक पूर्णिमा भी अमावस्या का रूप लेकर आ ही गयी। बस... यह चातुर्मास की अन्तिम रात्रि... सब भव्यों का मन व्यथा से आपूरित[ञ] हो गया... भोर का सूर्य वियोग का सन्देश लेकर आया और भगवान... वे अपने शिष्य समुदाय सहित विहार करने लगे। भव्य आत्माएँ विरह वेदना के शूल हृदय में चुभाये आँखों से अश्रुपात[ट] करते हुए थके कदमों से भगवान को विहार करवाने लगे। थोड़ी दूर जाकर... वे सभी रुक गये और भगवान निरन्तर बढ़ने

(क) उर्मियाँ - लहरें **(ख) अठखेलियाँ** - घूमना, भ्रमण करना **(ग) विस्मृत** - भूलना **(घ) अनुपान** - रसास्वादन **(ङ) व्यपगत** - भूलना, व्यतीत करना **(च) अलंकृत** - सजाना **(छ) लील दिया** - समाप्त कर दिया **(ज) दावानल** - जंगल में लगने वाली आग **(झ) संवलित** - युक्त **(ञ) आपूरित** - भरना **(ट) अश्रुपात** - आँसू बहाना

लगे। प्रभु के ओझल होने पर मिथिलावासी मन में विरह की अग्नि से झुलसते हुए लौट आते हैं। भगवान महावीर निरन्तर बढ़ते हुए पश्चिम के जनपदों[क] की ओर पधार रहे थे। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान महावीर हस्तिनापुर[III] की ओर पधारने लगे।

यह समय ऐसा था, जिसमें भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य भी विचरण कर रहे थे और वे भी समय-समय पर भगवान महावीर के सान्निध्य को प्राप्त करके धन्य-धन्य हो जाया करते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि भगवान पार्श्वनाथ का धर्मशासन श्रमण भगवान महावीर से ढाई सौ वर्ष पूर्व था[7], अतएव अनेक भव्यात्माओं को भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर का सान्निध्य मिला।

भगवती सूत्र में भी उल्लेख मिलता है कि भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य कालास्यवैशिक अणगार[8], गांगेय अणगार[ख/9] एवं अन्य अनेक स्थविरों[ग/10] ने भगवान महावीर के शासन को स्वीकार किया। सूत्र कृतांग सूत्र में भी उल्लेख मिलता है कि भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य उदकपेढाल[घ] ने भगवान महावीर के शासन को स्वीकार किया। अभी भी इस समय भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार[11] श्रमण जो कि ज्ञान और चारित्र में पारगामी[ङ], महायशस्वी थे, वे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी पधार गये।

प्रभु महावीर अपने केवलज्ञान से जान रहे थे कि श्रावस्ती में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार श्रमण विराज रहे हैं, वहाँ पर गणधर गौतम को भेजने से विशिष्ट भव्य शासन प्रभावना का प्रसंग बन सकता है अतएव भगवान महावीर ने प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम को सम्बोधित करते हुए कहा- गौतम!...

इन्द्रभूति गौतम :- तहत्ति भंते[च]!

भगवान :- तुम श्रावस्ती[IV] की ओर विहार करो और वहाँ कोष्ठक उद्यान में ठहर जाना...।

इन्द्रभूति गौतम :- तहत्ति भंते![12]

गौतम स्वामी ने अपने परम प्रियकारी परमात्मा के वचनों को ऐसे

(क) जनपद - देश, राष्ट्र, नगर **(ख) अणगार** - साधु **(ग) स्थविर** - तीन प्रकार के स्थविर साधु- (1) 60 वर्ष की उम्र वाले वय-स्थविर (2) 20 वर्ष की दीक्षा वाला दीक्षा-स्थविर (3) समवायांग, ठाणांग आदि शास्त्रों का ज्ञाता श्रुत-स्थविर **(घ) उदकपेढाल** - एक साधु का नाम **(ङ) पारगामी** - पारंगत **(च) तहत्ति भंते** - तथास्तु भगवन्

झेला जैसे चातक[क] स्वाति[ख] की बूँद को झेलता है। न तर्क, न वितर्क... न विलम्ब[ग]... न प्रश्न... न प्रतिप्रश्न... न उलझन... न तनाव... न विचार... न विषाद। मात्र आह्लाद प्रभु आज्ञा पालन का[13]। जिन शिष्यों को भगवान ने इंगित[घ] किया, उनको साथ लेकर इन्द्रभूति गौतम[14] श्रावस्ती नगर पधारे और कोष्ठक[V] उद्यान में ठहर गये।

मिलन जो मन भाया

इसी श्रावस्ती नगरी के बाहर एक और उद्यान था- तिन्दुक उद्यान[VI]। इसी उद्यान में पार्श्वापत्य श्री केशीकुमार श्रमण[15] अपने शिष्य समुदाय सहित ठहरे हुए थे। श्रावस्ती नगरी धन्य-धन्य हो रही थी, जहाँ के भव्य जनों को एक साथ एक समय में दो तीर्थंकर भगवन्तों के महान धुरन्धर श्रमण[VII]-भगवन्तों का सान्निध्य सम्प्राप्त[ङ] हो रहा था।

दोनों तीर्थंकरों के शिष्य, शासन प्रभावना करते हुए श्रावस्ती नगरी में विचरण कर रहे थे। परन्तु... दोनों समुदाय के श्रमणों में आचार भिन्नता...। भगवान महावीर के शिष्य मात्र श्वेत वस्त्र ही धारण किये हैं तो भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य रंग-बिरंगे पचरंगे वस्त्रों से भिक्षाचर्या आदि में घूमते हुए परिलक्षित[च] होते हैं। भगवान महावीर का धर्म पंचयाम[छ] तथा भगवान पार्श्वनाथ का धर्म चातुर्याम[ज]... ये कैसी भिन्नता? दोनों तीर्थंकरों के शिष्यों के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने लगे। वे चिन्तन करने लगे कि हम दोनों के धर्म-प्रवर्तक भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर का एक ही उद्देश्य निष्पाप चर्या में लीन रहकर मुक्ति प्राप्त करना, तब फिर दोनों तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित धर्म में इतना अंतर क्यों[16]? वेष में भी अंतर क्यों? इसका समाधान करना चाहिए। तब गणधर गौतम के साथ रहने वाले शिष्यों ने, एक बार गणधर गौतम से निवेदन किया- भगवन्! आपकी आज्ञा लेकर हम भिक्षाचर्या हेतु भिक्षाटन कर रहे थे, तब हमने भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों को देखा तो वे रंग-बिरंगे बहुमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे। ऐसा श्रावस्ती की जनता से श्रवण भी किया कि उनके चार महाव्रत हैं, जबकि भगवान महावीर के श्रमणों के पाँच महाव्रत[17] हैं। दोनों

(क) चातक - पपीहा (कवि समय के अनुसार यह केवल वर्षा ऋतु में ही रहता है) **(ख) स्वाति** - एक नक्षत्र **(ग) विलम्ब** - देर **(घ) इंगित** - इशारा **(ङ) सम्प्राप्त** - अच्छी तरह से प्राप्त **(च) परिलक्षित** - दिखाई **(छ) पंचयाम** - पाँच महाव्रत **(ज) चातुर्याम** - चार महाव्रत

तीर्थंकरों का उद्देश्य समान होने पर ये भिन्नता किस कारण है?

इस प्रकार ऐसी ही शंका केशी श्रमण के शिष्यों के मन में भी हुई और उन्होंने भी केशी श्रमण से इसी प्रकार के प्रश्न किये। तब इन्द्रभूति गौतम ने अपने शिष्यों से कहा- अपन सभी केशी कुमार श्रमण के समीप चलते हैं। केशी कुमार श्रमण सर्वज्ञ[क/18], सर्वदर्शी[ख], वीतरागी, धर्म तीर्थ के प्रवर्तक भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य हैं, जो कि ज्ञान[19] और चारित्र[20] में पारगामी[ग], महायशस्वी, अवधिज्ञान और श्रुतसम्पदा[घ] से प्रबुद्ध हैं। ऐसा कहकर विनय मर्यादा[21] के ज्ञाता गौतम स्वामी, केशी कुमार के कुल को ज्येष्ठ[ङ] मानकर अपने शिष्य-संघ के साथ तिन्दुक-वन उद्यान में पधारने लगे। जैसे ही श्रावस्ती में ऐसी चर्चा फैली कि स्वयं इन्द्रभूति गौतम जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान महावीर के प्रधान शिष्य हैं, जो विद्या और चारित्र के पारगामी, महायशस्वी, सम्पूर्ण द्वादशांगी[च] के ज्ञाता और प्रबुद्ध हैं, वे अपने शिष्य समुदाय सहित केशी कुमार श्रमण के यहाँ तिन्दुक-वन उद्यान में पधार रहे हैं तो पूरे नगर में हलचल मच गयी। कई भावुक लोग सोचने लगे कि आज गणधर गौतम, गौतम[22] स्वयं जा रहे हैं तो कोई न कोई विशिष्ट कारण रहा होगा। अपने को भी चलना चाहिए। चलकर देखना है कि वहाँ क्या होगा। अपने को भी चलना चाहिए। सब एक-दूसरे से चर्चा करने लगे और कुतूहल के वशीभूत हो, जत्थे-जत्थे लोग भी उधर जाने लगे। अन्यतीर्थिकों[छ] को जब इस बात की जानकारी मिली तो वे भी इस अद्भुत समागम को देखने हेतु तिन्दुक-वन उद्यान की ओर चल पड़े। गृहस्थों को भी जब यह घटना ज्ञात हुई तो अनेक सद्गृहस्थ भी चिन्तन करने लगे कि इस अद्भुत समागम को देखने के लिये हमें भी चलना चाहिए, तब वे गृहस्थ भी अविलम्ब[ज] चपल-गति[झ] से उसी ओर बढ़ने लगे। पूरे नगर का दृश्य देखने लायक था। श्रावस्ती में ही नहीं, यह हलचल देवलोक में भी होने लगी। देवों के मन में भी जिज्ञासा पैदा हुई कि दो महान् धुरन्धर श्रमण भगवन्तों का समागम... अहा! वह दृश्य कितना मनोरम होगा? वहाँ... वहाँ श्रुत-ज्ञान की पावन गंगा प्रवहमान होगी तो फिर... फिर... अपने को भी वहाँ चलना चाहिए।

(क) सर्वज्ञ - सम्पूर्ण ज्ञानी, केवलज्ञानी **(ख) सर्वदर्शी** - सम्पूर्ण दर्शी, केवलदर्शी **(ग) पारगामी** - पारंगत **(घ) श्रुतसम्पदा** - श्रुतज्ञान की सम्पत्ति **(ङ) ज्येष्ठ** - बड़ा **(च) द्वादशांगी** - आचारांग आदि 12 अंग शास्त्र **(छ) अन्यतीर्थिक** - अन्य धर्मी **(ज) अविलम्ब** - जल्दी **(झ) चपल गति** - शीघ्र गति

ऐसा चिन्तन कर अनेक देव, दानव[क], गन्धर्व[ख], यक्ष, राक्षस[ग], किन्नर[घ] और क्रीड़ा परायण व्यन्तर भी उधर आने लगे।

इधर गणधर गौतम तिन्दुक-वन उद्यान के सन्निकट पहुँच गये[23] तब केशी कुमार श्रमण ने गौतम गणधर को आते हुए देखकर उनका सम्यक प्रकार से योग्य आदर सत्कार किया और गणधर गौतम को बैठने के लिए उन्होंने तत्काल प्रासुक चार प्रकार के अनाजों के पराल[VIII] घास[ङ] तथा पाँचवां कुश[च]-तृण[24] समर्पित किया। केशी कुमार श्रमण तथा महायशस्वी गौतम गणधर दोनों वहाँ विराज गये। वे दोनों बैठे हुए चन्द्र और सूर्य समान शोभा को धारण कर रहे थे। इस समय अनेक भावुक लोग, अन्य धर्म सम्प्रदायों के बहुत से परिव्राजक[छ/25] और हजारों गृहस्थ वहाँ पहुँच गये। साथ ही साथ देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और अदृश्य भूतों का भी समागम हो गया।[26]

पहला प्रश्न केशी श्रमण का उत्तर गौतम स्वामी का

तिन्दुक-वन उद्यान का यह भव्य दृश्य नयनाभिराम[ज] था। इस समय केशी श्रमण ने गौतम स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा- हे महाभाग[IX]! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ?

गौतम[X] स्वामी :- भंते! आपकी जैसी भी इच्छा हो पूछिए।

केशी श्रमण :- हे मेधाविन्[झ]! भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म अर्थात् चार महाव्रतों का प्रतिपादन किया और भगवान महावीर ने पंच शिक्षात्मक धर्म अर्थात् पाँच महाव्रतों का प्रतिपादन किया। दोनों तीर्थंकर भगवन्तों का उद्देश्य समान होने पर भी इस अंतर का क्या कारण है? इन दोनों धर्मों को देखकर क्या तुम्हें संदेह नहीं होता?

गौतम स्वामी :- भंते! वस्तुत: जीवादि तत्वों का जिसमें निश्चय रूप होता है, ऐसे धर्म की समीक्षा, प्रज्ञा[ञ] कर देती है। महाव्रतों की संख्या में अंतर इसलिए आया है कि प्रथम तीर्थंकर के साधुओं द्वारा कल्प-

---

(क) दानव - भवनपति देवों की एक जाति **(ख) गन्धर्व** - गीत-प्रिय व्यन्तर देवों की एक जाति **(ग) यक्ष, राक्षस** - व्यन्तर देवों की एक जाति **(घ) किन्नर** - किन्नर जाति के व्यन्तर देव **(ङ) पराल घास** - अनाज के छिलके का घास **(च) कुश** - दर्भ, दाभ **(छ) परिव्राजक** - संन्यासी **(ज) नयनाभिराम** - नेत्रों को सुन्दर लगने वाला **(झ) मेधाविन्** - बुद्धिमान **(ञ) प्रज्ञा** - बुद्धि

साध्वाचार अत्यन्त कठिनता से निर्मल किया जाता था, क्योंकि प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के साधु सरल किंतु जड़ बुद्धि के होते थे। वे साधुधर्म की शिक्षा को सरलता से ग्रहण कर लेते किंतु जड़ बुद्धि[क] होने के कारण उसी धर्मतत्व के दूसरे पहलू में गड़बड़ा जाते थे। यथा उनको कहते, नट का नृत्य नहीं देखना तो वे नट का नृत्य नहीं देखते, लेकिन नटनी का नृत्य देखने लग जाते कि नट का नृत्य देखना मना है, नटनी का नहीं। इस कारण उनके द्वारा साध्वाचार को शुद्ध रखना कठिन होता था।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के साधुओं की बुद्धि वक्रजड़[ख] होती है। उस वक्र बुद्धि में अनेक तर्क-वितर्क उठते ही रहते हैं, जिसके कारण वे महाव्रतों को जान तो लेते हैं, किंतु कदाग्रही होने से उनका पालन करने में कठिनाई उपस्थित कर लेते हैं। इसलिये प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने साधुओं के लिए सम्यक् साध्वाचार का पालन करवाने के लिए पंच महाव्रत रूप धर्म बतलाया है।

दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक मध्यम बाईस तीर्थंकर भगवन्तों के साधु ऋजुप्रज्ञ अर्थात् सरल एवं बुद्धिमान होते हैं। वे सरलता से साधुधर्म के तत्त्व को ग्रहण भी कर लेते हैं। उनके लिए साध्वाचार का पालन करना सुकर है। इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म बतलाया। यथा- (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अचौर्य (4) बहिद्धादान त्याग- बाह्य वस्तुओं के आदान-ग्रहण का त्याग[27]। भगवान पार्श्वनाथ ने ब्रह्मचर्य महाव्रत को बहिद्धादान विरमण में समाविष्ट[ग] कर दिया था, क्योंकि उन्होंने मैथुन को परिग्रह के अन्तर्गत माना था। इसका कारण यह था कि स्त्री को परिगृहीत किये बिना मैथुन सम्भव नहीं है। इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर प्रभु पार्श्वनाथ ने साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य[28] महाव्रत को अलग न मानकर बहिद्धादान त्याग महाव्रत[XI] में ही उसको समाविष्ट कर दिया था। पार्श्वनाथ भगवान के श्रमण भी स्त्री के प्रति आसक्ति, वासना, कामवासना को परिग्रह मानकर त्याग करते हैं। यही कारण है कि वक्रजड़ होने से भगवान महावीर ने अपने श्रमणों के लिए पंच महाव्रत[XII] और ऋजुप्रज्ञ होने से भगवान पार्श्वनाथ ने अपने श्रमणों के लिए

(क) जड़ बुद्धि - विवेक रहित बुद्धि **(ख) वक्रजड़** - कुटिल, विवेक रहित **(ग) समाविष्ट** - मिलाना

चार महाव्रत बतलाये हैं[29]। महाव्रतों की मूल संख्या में अंतर होने पर भी साध्वाचार की मर्यादा में अंतर नहीं है।

दूसरा प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह मिटा दिया। गौतम! मेरा एक और सन्देह है, उसके विषय में मुझे कहिए। हे मेधाविन्! भगवान पार्श्वनाथ ने सान्तरोत्तर[क/XIII]-वर्णादि से विशिष्ट बहुमूल्य वस्त्र वाला धर्म बतलाया है, जबकि भगवान वर्धमान ने अचेलक[XIV]-अल्पमूल्य वाले प्रमाणोपेत[ख] श्वेत वस्त्र वाला धर्म बतलाया है। दोनों तीर्थंकरों का उद्देश्य मात्र युक्ति-रूप है, तब इन दोनों धर्मों में भेद का क्या कारण है? दोनों तीर्थंकरों के साधुओं के अलग-अलग वेष देखकर आपको संशय क्यों नहीं होता?

गौतम स्वामी :- तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होते हैं। उन्होंने अपने ज्ञान में देखकर जिस समय जो उचित था, करने का आदेश दिया। साधुवेष[XV], चिह्न सम्बन्धी वस्त्र तथा अन्य उपकरण धर्म के साधन मात्र हैं। उन साधनों का उपयोग करने वालों की प्रज्ञा[ग] की भिन्नता को देखकर तीर्थंकर भगवान ने भिन्न-भिन्न प्रकार का उपदेश दिया। प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ तथा अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ होते हैं। यदि उनको रंगीन वस्त्र ग्रहण करने की आज्ञा मिल जाती, तो वे वस्त्रों को रंगने लग जाते, इसलिये प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने साधुओं को रंगीन वस्त्र पहनने का निषेध करके केवल श्वेत और परिमित[घ] वस्त्र पहनने की आज्ञा दी है। मध्यवर्ती[ङ] तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्रज्ञ[च] होते हैं, इसलिये उन्होंने रंगीन वस्त्र धारण करने की आज्ञा प्रदान की है।[30]

निश्चय नय की दृष्टि से मोक्ष के वास्तविक साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र हैं। इस विषय में दोनों तीर्थंकरों[छ] का मत एक समान है, लेकिन निश्चय को समझने के लिए व्यवहार की आवश्यकता है, क्योंकि सम्यक् दर्शनादि किसमें है, किसमें नहीं इसको साधारण लोग नहीं समझ सकते। अतएव साधु

(क) सान्तरोत्तर - नानावर्ण वाले बहुमूल्य वस्त्र **(ख) प्रमाणोपेत** - प्रमाण-युक्त **(ग) प्रज्ञा** - बुद्धि **(घ) परिमित** - सीमित **(ङ) मध्यवर्ती** - बीच के 22 तीर्थंकर **(च) ऋजुप्रज्ञ** - सरल और बुद्धिमान **(छ) दोनों तीर्थंकरों** - भगवान पार्श्वनाथ जी, भगवान महावीर स्वामी

का वेष, रजोहरणादि[क] चिह्न आदि व्यवहार का आश्रय लेकर कहे हैं। कहा भी है कि लोक में लिंग-वेष से प्रयोजन है। इसी कारण तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने-अपने युग में देशकाल पात्रादि को देखकर नाना प्रकार के उपकरणों का विधान किया है। अतएव निश्चय नय से दोनों का सिद्धान्त एक सा है।[31]

तीसरा प्रश्न और समाधान

केशी श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा[ख] श्रेष्ठ है। आपने मेरे मन का संशय दूर कर दिया है। मेरा एक और संशय है, गौतम! उस सम्बन्ध में मुझसे कहिये। गौतम! आप हजारों शत्रुओं[XVI] के बीच खड़े हो। वे शत्रु आपको जीतने के लिए आपकी ओर दौड़ते हैं। तब भी आपने उन शत्रुओं को कैसे जीत लिया।[32]

गौतम स्वामी :- एक को जीतने से पाँच को जीत लिया, पाँच को जीतने से दस को जीत लिया। दसों को जीतकर मैंने सब शत्रुओं को जीत लिया।[33]

केशी श्रमण :- गौतम! तुमने जो कहा कि एक को जीतने से पाँच को जीत लिया। पाँच को जीतने से दस को जीत लिया और दस को जीतने से सब शत्रुओं का जीत लिया तो यह बताओ की तुम शत्रु किसे बता रहे हो?

गौतम स्वामी :- हे महामुने! एक न जीता हुआ अपनी आत्मा शत्रु है। उस आत्मा को नहीं जीतने से पाँच इन्द्रियां शत्रु हैं, जो कि आत्मा के अधीन हैं। उनको न जीतने पर आत्मा के दस शत्रु- पाँच इन्द्रियां, चार कषाय[ग] और एक मन है। इन दसों को जीतने पर इनका समस्त परिवार जो हजारों की संख्या में है, उसे जीत लिया जाता है।[34] अतएव मैंने आत्म-विजय की दिशा में प्रयाण करके ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। इसी कारण शत्रुओं के बीच भी मैं अप्रतिबद्ध[घ] विहारी बना हुआ हूँ।

चौथा प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा प्राञ्जल[ङ] है, क्योंकि आपने मेरा सन्देह समीचीन[च] रूप से मिटा दिया है। मेरा एक और सन्देह है कि इस संसार में बहुत से शरीरधारी जीव बन्धनों से बद्ध दिखलाई देते हैं। मुने! आप बन्धन[35] से मुक्त वायु की तरह हलके होकर कैसे विचरण करते हैं?

(क) रजोहरणादि - ओघा आदि **(ख) प्रज्ञा** - बुद्धि **(ग) कषाय** - क्रोध, मान, माया, लोभ **(घ) अप्रतिबद्ध** - रुकावट रहित **(ङ) प्राञ्जल** - निश्छल **(च) समीचीन** - सम्यक्

गौतम! इस विषय में मुझसे कहें?

गौतम स्वामी :- मुने! संसार को अपने चंगुल में फँसाने वाले राग-द्वेषादि बन्धनों को सब प्रकार से काटकर तथा सत्यभावना या नि:संगता[क] आदि के अभ्यास रूप उपाय से विनष्ट कर बन्धन मुक्त[36] एवं हलका होकर विचरण करता हूँ।

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! बन्धन किन्हें कहा है?

गौतम स्वामी :- तीव्र राग-द्वेष आदि तथा पुत्र-कलत्र[ख] सम्बन्धी स्नेह, भयंकर पाश बन्धन हैं। उन सब बन्धनों को भगवान के बताये हुए सिद्धान्तों पर अमल करके मैं काटता हूँ तथा साध्वाचार की मर्यादा अनुसार विचरण करता हूँ।

पाँचवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार[ग] श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा सुन्दर है। आपने मेरा यह संशय मिटा दिया। मेरा एक और सन्देह है, हे गौतम! हृदय के भीतर एक लता है, जो विषैले फल देती है। आपने इस विष बेल को कैसे उखाड़ा? गौतम! इस विषय में मुझसे कहिए।

गौतम स्वामी :- उस लता को सर्वथा काटकर एवं जड़ से समूल उखाड़ कर मैं सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित मार्गानुसार विचरण करता हूँ। अतएव मैं उसके विषैले फल खाने से मुक्त हूँ।

केशी कुमार श्रमण :- संसार विषयक तृष्णा-लालसा लोभ प्रकृति की लता ही वास्तव में भयंकर लता है[37]। यही लता मनुष्य के भीतर पैदा होकर भयंकर विपाक[घ] वाले विषैले फल देती है। तृष्णा परायण व्यक्ति को इन विषैले फलों को भोगना पड़ता है। हे महामुने! मैं उस मूल को उखाड़कर भगवान द्वारा कथित मर्यादानुसार विचरण करता हूँ।

छठा प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- हे गौतम! आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है। आपने मेरे इस

(क) नि:संगता - अनासक्ति **(ख) कलत्र** - पत्नी **(ग) केशी कुमार** - के आगे कुमार शब्द लगा है, जिसका तात्पर्य है कि कुमार अवस्था में ही ये साधु होने के कारण कुमार श्रमण कहलाये **(घ) विपाक** - परिणाम

संशय को निर्मूल[क] कर दिया। गौतम! मेरे मन में अन्य भी संशय है कि चारों और घोर-अग्नियाँ प्रज्जवलित हो रही हैं, जो शरीरधारी जीवों को जलाती रहती हैं, आपने उन्हें कैसे बुझाया? गौतम इस विषय में आप मुझे बतलाइए?

गौतम स्वामी :- महामेध के समान जिन प्रवचन में उत्पन्न श्रुत[ख], शील और तप रूप जल से मैं कषाय रूपी अग्नि को सिंचित कर शान्त करता हूँ।[38] इस प्रकार श्रुत, शील तप रूप जलधारा से शान्त और शीतल की गई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती हैं।

केशी कुमार श्रमण :- वे अग्नियाँ कौनसी हैं?

गौतम स्वामी :- क्रोध, मान, माया और लोभ रूप अग्नियाँ कही गयी हैं। श्रुत, शील और तप रूप जल है। इसी जल से शांत और नष्ट की गई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती हैं।

सातवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा प्रशस्त है। आपने मेरे सन्देह को निरस्त[ग] कर दिया। गौतम! मेरा एक सन्देह है कि यह साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व[घ] इधर-उधर चहुँओर दौड़ लगा रहा है। आप उस घोड़े पर आरूढ़[ङ] हैं, लेकिन वह घोड़ा आपको उन्मार्ग[च] की ओर क्यों नहीं ले जाता?

गौतम स्वामी :- मैं उस दौड़ते हुए घोड़े को श्रुत ज्ञान की लगाम लगाकर नियंत्रित करता हूँ, जिससे वह मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता, अपितु वह नियंत्रित अश्व सन्मार्ग पर ही चलता है।

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! तुम अश्व किसको कहते हो?

गौतम स्वामी :- मन ही वह साहसी, भयंकर और दुष्ट अश्व है जो चहुँओर दौड़ लगाता रहता है। धर्म के अभ्यास-शिक्षा से मैं मनरूपी दुष्ट अश्व को वश में[39] करता हूँ[40]। धर्म शिक्षा से वह कन्थक (उत्तम जाति के अश्व) के समान हो गया है।

(क) निर्मूल - समाप्त **(ख) श्रुत** - शास्त्र, ज्ञान **(ग) निरस्त** - समाप्त **(घ) अश्व** - घोड़ा
(ङ) आरूढ़ - सवार **(च) उन्मार्ग** - विपरीत मार्ग

आठवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरे संशय को मन से हटा दिया। मेरा एक संशय और भी है कि संसार में अनेक कुपथ हैं, जिन पर चलने से प्राणी भटक जाते हैं। सन्मार्ग पर चलते हुए आप कैसे नहीं भटके[41] ?

गौतम स्वामी :- मुनिवर! मैंने सन्मार्ग पर चलने वालों एवं कुमार्ग पर चलने वालों को बहुत बारीकी से भलीभाँति जान लिया है। सन्मार्ग एवं कुमार्ग का ज्ञान मेरे द्वारा कर लिया गया है। इसी कारण मैं कुमार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चलता हूँ। मैं मार्गभ्रष्ट नहीं होता हूँ।

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आप मार्ग किसे कहते हैं?

गौतम स्वामी :- कुप्रवचनों[XVII] को मानने वाले मिथ्यात्वी उन्मार्ग गामी हैं, क्योंकि उनके प्रवचनों में एकान्तवाद तथा हिंसादि का उपदेश है[42]। इसलिए इन कुमार्गों पर चलकर बहुत से लोग दुर्गति रूपी अटवी[क] में भटक जाते हैं, मार्गभ्रष्ट हो जाते हैं। इनका मार्ग एकान्त रूप से कुमार्ग है, जबकि वीतराग[43] भगवन्तों द्वारा प्ररूपित[ख] मार्ग ही सन्मार्ग है, क्योंकि इसका मूल दया और विनय है, इसलिए यही सर्वोत्तम है[44]।

नौवां प्रश्न और समाधान

केशी श्रमण :- आपकी प्रज्ञा प्रशस्त है। आपने मेरा ये सन्देह निरस्त कर दिया। मेरे मन में एक अन्य भी सन्देह है- मुनिवर! महान जल प्रवाह के वेग में डूबते हुए प्राणियों के लिए शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप[XVIII] आप किसे मानते हैं?

यहाँ केशी कुमार श्रमण के कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में जन्म, जरा, मरण आदि रूप जल प्रवाह तीव्र गति से प्राणियों को बहाये जा रहा है, प्राणी उसमें डूब जाते हैं तो डूबते हुए उन प्राणियों को बचाने के लिए कौन शरण है? अर्थात् कौन उनकी रक्षा करने में समर्थ है। गति- कौन उनका आधार है? प्रतिष्ठा- कौन उनको स्थिरतापूर्वक टिका सकता है? द्वीप- कौनसा ऐसा जल मध्यवर्ती उन्नत निवास स्थान है जहाँ प्राणी जन्म, जरा और मरण से बच सकते हैं।

(क) अटवी - घोर भयंकर जंगल **(ख) प्ररूपित** - कहा हुआ, निर्दिष्ट

गौतम स्वामी :- जल के मध्य एक विशाल महाद्वीप है। वहाँ महान जल प्रवाह के वेग की गति प्रवेश नहीं है।

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आप महाद्वीप किसे कहते हैं?

गौतम स्वामी :- जरा और मरण आदि के वेग से बहते-डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है तथा उत्तम शरण है।

वस्तुत: धर्म इतना विशाल एवं व्यापक द्वीप है[45] कि वह संसार समुद्र में डूबते हुए अथवा उसके जन्म-मरणादि विशाल तीव्र प्रवाह में बहते हुए प्राणी को स्नान, शरण, आधार या स्थिरता देने में सक्षम है। जहाँ धर्म है, वहाँ जन्म, जरा, मरणादि, जलप्रवाह की गति नहीं है, क्योंकि जो प्राणी शुद्ध धर्म की शरण ले लेता है, धर्मरूपी द्वीप में आकर बस जाता है, टिक जाता है, वह जन्म, जरा[क] और मृत्यु के कारण भूत कर्मों को क्षय कर देता है। धर्म ही जन्म मरणादि के दु:ख से बचाकर मोक्ष में पहुँचाने वाला साधन है।

दसवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा अत्यन्त विलक्षण है, आपने मेरा संशय निवारण कर दिया। मेरा एक और संशय है, गौतम! महाप्रवाह वाले समुद्र में नौका डगमगा रही है, इधर-उधर भाग रही है। ऐसी डगमगाती नौका पर आरूढ़ होकर आप समुद्र पार कैसे जा सकोगे?

गौतम स्वामी :- जो नौका छिद्र युक्त, फूटी हुई है वह समुद्र के पार नहीं जा सकती, क्योंकि उस छिद्र वाली नौका में पानी भर जाने से वह समुद्र पार नहीं जा सकती। इसके विपरीत जो छिद्र रहित नौका है, वह समुद्र के पार जा सकती है। इसका कारण यह है कि बिना छिद्र वाली नौका में पानी नहीं भर सकता, इसीलिए वह मझधार में नहीं डूबती, नौकारोहियों[ख] को निर्विघ्न समुद्र से पार करा देती है।

मुनिवर! मैं जिस नौका पर आरूढ़ होकर चल रहा हूँ, वह नौका सछिद्र[ग] नहीं अपितु निश्छिद्र[घ] है। वह नौका न ही डगमगा सकती और न ही मझधार में डूब सकती है, अत: मैं उस नौका द्वारा समुद्र को निर्विघ्नतया पार कर लेता हूँ।

(क) जरा - बुढ़ापा **(ख) नौकारोहियों** - नाव पर सवारी करने वालों **(ग) सछिद्र** - छेद सहित **(घ) निश्छिद्र** - छेद-रहित

केशी कुमार श्रमण :- आप नौका किसे कहते हैं?

गौतम स्वामी :- यह शरीर नौका है, आत्मा नाविक है तथा जन्म-मरणादि रूप चतुर्गतिक[क] संसार समुद्र है, जिसे महर्षि लोग पार कर जाते हैं। यह शरीर जब कर्म आने के कारण रूप आस्रव रूपी छिद्रों से रहित हो जाता है तब यह ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना का साधन-भूत बनता हुआ जीव रूपी नाविक को संसार समुद्र से पार करने में सहायक बन जाता है। इसलिये शरीर को नौका की उपमा दी है। रत्नत्रय[ख] की आराधना करने वाला साधक शरीर रूपी नौका द्वारा उस संसार समुद्र को पार करता है। इसलिए संयमी साधक को नाविक कहा गया है। जन्म-मरणादि संसार जीवों द्वारा पार करने योग्य है[46]।

ग्यारहवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरे इस संशय को मिटा दिया। मेरा एक और संशय है कि घोर एवं गाढ़ अन्धकार[47] में बहुत से प्राणी रह रहे हैं, ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण लोक में प्राणियों के लिए कौन प्रकाश करेगा?

गौतम स्वामी :- सम्पूर्ण लोक में निरन्तर प्रकाश करने वाला निर्मल सूर्य[XIX] उदित हो गया है। वही समस्त लोक में प्राणियों के लिये प्रकाश प्रदान करेगा।

केशी श्रमण :- गौतम[ग]! आप सूर्य किसे कहते हैं।

गौतम स्वामी :- जिनका संसार-परिभ्रमण नष्ट हो चुका है, जो सर्वज्ञ[48] है। ऐसा जिनेश्वर देव रूपी सूर्य उदित हो चुका है। वे सर्वज्ञ आन्तरिक कर्म रूपी बादल से रहित हैं। वे सम्यक् ज्ञान का प्रकाश करते हैं, जिससे अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट होता है। इस प्रकार जो संसारी प्राणी अज्ञान रूप गाढ़ अन्धकार से घिरे हैं, उन्हें सद्ज्ञान का प्रकाश जिनेन्द्र भगवान रूपी सूर्य दे रहे हैं[49]।

(क) चतुर्गतिक - नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव रूप चार गति **(ख) रत्नत्रय** - ज्ञान, दर्शन और चारित्र **(ग) गौतम** - भगवान के पट्ट शिष्य, प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम थे, ये गौतम-गोत्रीय थे। आगमों में अधिकांशत: 'गौतम' नाम से ही इनको सम्बोधित किया गया है। जैन-जगत में ये गौतम स्वामी के नाम से विख्यात हैं। **- उत्तराध्ययन/वृहदवृत्ति/पत्र 499**

बारहवां प्रश्न और समाधान

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह संशय दूर कर दिया, अब मेरा एक और संशय है कि शारीरिक और मानसिक दु:खों से पीड़ित प्राणियों के लिये क्षेम-व्याधि आदि से रहित, शिव-जरा उपद्रव से रहित, अनाबाध-शत्रुजन का अभाव होने से, स्वाभाविक रूप से पीड़ा रहित स्थान कौनसा है? गौतम! इस विषय में मुझे कहिए।

गौतम स्वामी :- लोक के अग्रभाग में एक ऐसा ध्रुव-अचल स्थान है, जहाँ बुढ़ापा, मृत्यु, व्याधियां तथा वेदनाएं नहीं हैं, परन्तु वहाँ पहुँचना बहुत कठिन है।

केशी कुमार श्रमण :- गौतम! वह स्थान कौनसा है।

गौतम स्वामी :- जिस स्थान को महामुनि जन ही प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण, अबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। भव प्रवाह का अंत करने वाले मुनि चक्रवर्ती से अधिक सुखभागी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं[50]। जिसे प्राप्त करके वे शोक मुक्त हो जाते हैं, वह स्थान लोक के अग्रभाग में हैं। शाश्वत रूप से मुक्त जीव का वहाँ निवास हो जाता है, जहाँ पर पहुँच पाना अत्यन्त कठिन है।

केशी कुमार श्रमण का समर्पण, पंच महाव्रत स्वीकार

केशी कुमार :- हे गौतम! श्रेष्ठ है आपकी प्रज्ञा। आपने मेरा यह संशय भी समाप्त कर दिया है। संशयातीत[क]! सर्वश्रुतमहोदधि[ख]! आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार संशय निवारण होने पर घोर पराक्रमी[51] केशी कुमार श्रमण ने महायशस्वी गौतम स्वामी को मस्तक झुकाकर अभिवन्दना की और तदनन्तर भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रवर्तित तीर्थ से, उस सुखावह[ग] अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित तीर्थ में पंच-महाव्रत रूप धर्म को भाव से अंगीकार किया[52]।

इस प्रकार तिन्दुक-वन उद्यान की शोभा में चार चाँद लग गया। जहाँ पर दोनों मुनिभगवन्तों के मिलन से श्रुत और शील की पावन मन्दाकिनी[घ]

(क) संशयातीत - संशय-रहित **(ख) सर्वश्रुतमहोदधि** - सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के महासागर
(ग) सुखावह - सुखपूर्वक वहन करने योग्य **(घ) मन्दाकिनी** - जलधारा

प्रवाहित हुई। महान तत्त्व के अर्थों का निश्चय हुआ[53]।

देवों, दानवों, मानवों अन्यतीर्थिकों और हजारों हजार गृहस्थों ने जब यह धर्मचर्या श्रवण की तो उनके हृदय में भक्ति का दीप जला। मन कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर बढ़ने को तत्पर हो गया। अनेक भव्य आत्माओं ने सन्मार्ग को स्वीकार किया और सारी सभा में प्रसन्नता की लहर छा गई। भक्ति-विभोर हो स्तुति करने लगे कि भगवान केशी और गौतम दोनों हम पर प्रसन्न रहें।

केशी कौन से?

इस प्रकार केशी कुमार श्रमण ने भगवान महावीर के शासन को स्वीकार किया। क्या ये केशी कुमार श्रमण वे ही थे, जिन्होंने परदेशी राजा को प्रतिबोधित किया या दूसरे? इस संदर्भ में समीक्षा कर लेना आवश्यक है।

शास्त्र में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य 'केशी' नामक दो मुनियों का उल्लेख मिलता है। एक राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक[क/54] और दूसरे गणधर गौतम के साथ संवाद करने वाले[55]। इन दोनों में से भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर कौनसे केशी-श्रमण थे, यहाँ पर विचारणीय तथ्य है। अतएव भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा को जान लेना आवश्यक है।

इतिहास में उल्लेख मिलता है कि भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त प्रथम गणधर भी थे। इनकी जन्मस्थली क्षेमपुरी थी। इन्होंने 'सम्भूत' मुनि के पास श्रावक धर्म ग्रहण किया था। माता-पिता के परलोकवासी होने पर उन्हें संसार से विरक्ति के भाव उत्पन्न हुए और वे आश्रम पद उद्यान में आये, जहाँ पर भगवान पार्श्वनाथ का प्रथम समवसरण हुआ। भगवान की देशना श्रवण कर उन्होंने प्रव्रज्या[ख] अंगीकार की और प्रथम गणधर बने[56]। भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के पश्चात् इन्हीं शुभदत्त गणधर को आचार्य पद से अभिषिक्त किया गया। इन्होंने आचार्य पद पर रहते हुए चौबीस वर्षों तक अतीव कुशलता से संघ का नेतृत्व किया। तत्पश्चात् आर्य हरिदत्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके आर्य शुभदत्त मोक्ष पधारे।

भगवान पार्श्वनाथ के द्वितीय पट्टधर आचार्य हरिदत्त पार्श्वनिर्वाण संवत् 24 से 94 तक आचार्य पद पर पदासीन रहे।

हरिदत्त साधु बनने से पहले चोरों के सरदार थे। एक बार गणधर

(क) प्रतिबोधक - प्रतिबोध देने वाला **(ख) प्रव्रज्या** - दीक्षा

शुभदत्त के शिष्य वरदत्त मुनि जो कि 500 शिष्यों के साथ ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे, उनको जंगल में रुकना पड़ा। उस समय चोरों का सरदार हरिदत्त 500 चोरों के साथ 500 मुनियों के पास इस आशा से आया कि मुनियों के पास जो भी सम्पत्ति होगी, उसका हम अपहरण कर लेंगे। लेकिन जैसे ही हरिदत्त मुनियों के पास पहुँचा उसे भौतिक सम्पत्ति के स्थान पर धर्मोपदेश रूप सम्पत्ति का लाभ मिला। उसे श्रवण कर हरिदत्त एवं 500 चोर प्रतिबुद्ध[क] हुए और सभी ने संयम अंगीकार किया।

गुरु भगवन्तों की अतीव प्रसन्नता के साथ सेवा सुश्रूषा करते हुए मुनि हरिदत्त बड़ी लगन से ज्ञानार्जन करने लगे। अपनी कुशाग्रबुद्धि[ख] के कारण वे स्वल्प[ग] समय में एकादशांगी[घ] के पारगामी विद्वान बन गये। इनकी योग्यता का मूल्यांकन करके आर्य शुभदत्त ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

आचार्य हरिदत्त अपने समय के अत्यन्त प्रभावशाली आचार्य हुए। इन्होंने एक बार वेदान्त दर्शन के विख्यात आचार्य लौहित्य जो कि 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' मत के कट्टर समर्थक और घोर प्रचारक उद्भट विद्वान थे, उनके साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें राज्य सभा में पराजित कर दिया। उस समय आर्य हरिदत्त सूरि ने अहिंसा परमोधर्म: का झण्डा जनमानस पर फहरा दिया।

सत्य के प्रबल समर्थक आचार्य लौहित्य ने अपने 1000 शिष्यों के साथ आचार्य हरिदत्त के सान्निध्य में संयम ग्रहण कर लिया। किन्हीं ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि लौहित्य आचार्य के 500 शिष्य थे। हरिदत्त सूरि के पास संयम ग्रहण करके उन्हीं की आज्ञा लेकर दक्षिण में अहिंसा धर्म का प्रचार करने के लिए निकल पड़े। उस समय लौहित्याचार्य ने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार मैंने अज्ञानवश हिंसा का प्रचार किया था, उससे सौ गुणा वेग से मैं अहिंसा धर्म का प्रचार करूँगा। इसी संकल्प के अनुसार उन्होंने अहिंसा धर्म का खूब प्रचार किया। यहाँ तक कि उन्होंने दक्षिण में लंका तक जैन धर्म का बखूबी प्रचार किया। इसका प्रमाण तात्कालीन ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। बौद्ध भिक्षु धेनुसेन ने ईसा की पाँचवी शताब्दी में लंका की ऐतिहासिक स्थिति का दिग्दर्शन कराने वाला 'महावंश काव्य' पाली भाषा में लिखा था। उसमें ईस्वी सन् पूर्व 543 से, 301 वर्ष तक लंका की ऐतिहासिक क्षेत्रीय स्थिति का वर्णन करते हुए

(क) प्रतिबुद्ध - जाग्रत **(ख) कुशाग्र बुद्धि** - तीक्ष्ण-बुद्धि **(ग) स्वल्प** - बहुत कम **(घ) एकादशांगी** - आचारांग आदि ग्यारह अंग शास्त्र

धेनुसेन ने लिखा है कि सिंहल द्वीप के राजा 'पनुगानय' ने लगभग ईस्वी सन् पूर्व 437 में अपनी राजधानी 'अनुराधापुर' बनायी और वहाँ निर्ग्रन्थ मुनियों[क] के लिये 'गिरी' नामक स्थान खुला छोड़ा। इस प्रकार आर्य हरिदत्त ने विदेश में भी जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। लगभग 70 वर्ष तक धर्म प्रचार करने के पश्चात् आर्य हरिदत्त ने आर्य 'समुद्रसूरि' को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और पार्श्व निर्वाण[ख] 94 में मुक्ति का वरण किया।

आर्य हरिदत्त के पश्चात् भगवान पार्श्वनाथ के तृतीय पट्टधर आर्य समुद्रसूरि हुए। इन्होंने अनेक स्थानों पर धर्म का विशिष्ट प्रचार किया। इन्हें चौदह पूर्वों का ज्ञान था। ये याज्ञिकी हिंसा के प्रबल विरोधी थे। आपके सान्निध्य में विदेशी नामक एक मुनि जो प्रतिभाशाली और प्रकाण्ड विद्वान थे, वे विहार करते हुए एक बार उज्जयिनी पधारे।

आपके त्याग और वैराग्यपूर्ण उपदेश से प्रभावित होकर उज्जयिनी के राजा जयसेन और महारानी अनंग सुन्दरी ने अपने प्रिय पुत्र केशी के साथ जैन श्रमण-दीक्षा अंगीकार की। उपकेश गच्छ की पट्टावली के अनुसार केशी कुमार श्रमण जाति स्मरण ज्ञान[ग] के साथ-साथ चौदहपूर्व तक श्रुतज्ञान के धारक थे। केशी श्रमण ने अपने आचार्य समुद्रसूरि के समय में यज्ञ के प्रचारक 'मुकुन्द' नामक आचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित किया। अंत में आचार्य समुद्रसूरि ने अपना अन्तिम समय निकट जानकर केशी श्रमण को आचार्य पद पर नियुक्त किया और पार्श्व निर्वाण सम्वत् 166 में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके निर्वाण पद प्राप्त किया।

भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य केशी श्रमण हुए। केशी श्रमण अत्यन्त प्रतिभाशाली, बाल ब्रह्मचारी, चौदह पूर्वधारी और चार ज्ञान[घ] के धारक थे। इतिहास में ऐसा उल्लेख मिलता है कि आपकी नेतृत्व क्षमता अत्यन्त गरिमामय थी। आपने श्रमणसंघ के संगठन को सुदृढ़ बनाकर विद्वान श्रमणों के नेतृत्व में पाँच-पाँच सौ श्रमणों की 9 टुकड़ियां बनाई। उन 9 टुकड़ियों को पाञ्चाल[ङ], सिन्धु-सौवीर[च], अंग[छ], बंग, कलिंग, तेलंग, महाराष्ट्र, काशी,

(क) निर्ग्रन्थ मुनि - जैन साधु **(ख) पार्श्व निर्वाण** - भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण **(ग) जाति स्मरण ज्ञान** - मतिज्ञान का भेद जिससे पूर्व भव जाने जाते हैं **(घ) चार ज्ञान** - मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यव ज्ञान **(ङ) पाञ्चाल** - आजकल के रुहेलखण्ड को प्राचीन पाञ्चाल भूमि समझना चाहिए **(च) सिन्धु-सौवीर** - आर्य देश जहाँ सर्वप्रथम उस समय भगवान महावीर ने विचरण किया **(छ) अंग** - आजकल भागलपुर और मुंगेर के समीप का प्रदेश पूर्वकाल में अंग जनपद कहलाता था

कौशल, सूरसेन, अवन्ती, कोंकण आदि प्रान्तों में भेजकर स्वयं पाँच सौ साधुओं के साथ मगध में रहकर सम्पूर्ण देश में जैन धर्म का बखूबी प्रचार किया। इनका आचार्य काल पार्श्व निर्वाण सम्वत् 166-250 तक बतलाया गया है[57]।

प्रज्ञाचक्षु श्री सुखलाल जी संघवी[58], डॉ. जगदीशचन्द्र जैन[59], डॉ. मोहनलाल मेहता[60], मुनि नथमल जी[61] आदि अनेक विद्वानों ने राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक केशी कुमार श्रमण को और गौतम गणधर के साथ संवाद करने वाले केशी को एक माना है।

आचार्य राजेन्द्रसूरि ने अपने अभिधान-राजेन्द्र कोष में दो स्थानों पर केशी श्रमण का परिचय दिया है। उन्होंने इस कोष के प्रथम भाग (पृष्ठ संख्या 201) पर अजणिय कण्णिया शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए केशी श्रमण के लिए निर्ग्रन्थी पुत्र कुमार अवस्था में प्रव्रजित एवं युग प्रवर्तक आचार्य होने का उल्लेख किया है। इसी कोष के तीसरे भाग (पृष्ठ 669) पर केशी शब्द की व्युत्पत्ति में उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि करते हुए लिखा है-

केस संस्पृष्ट शुक्र पुद्गलसम्यर्काज्जाते निर्ग्रन्थी पुत्रे (स च यथाजातस्तथा अजणिकन्निया शब्दे प्रथम भागे 101 पृष्ठे दर्शित :) स च कुमार एवं प्रव्रजित : पार्श्वापत्यीयश्चतुर्ज्ञानी अनगारगुण सम्पन्न : सूर्याभदेव-जीवं पूर्वभवे प्रदेशी नामानं राजानं प्रबोधदया दिति। रा.नि.। ध.र.। (तद्धर्णकविशिष्टं 'पएसि' शब्दे वक्ष्यते गोयमकेसिज्ज शब्दे गौतमेन सहास्य संवादो वक्ष्यते)

इस प्रकार राजेन्द्रसूरि ने गौतम के साथ संवाद करने वाले केशीश्रमण को ही प्रदेशी प्रतिबोधक माना है।

उपकेशगच्छ चरित्र में केशी कुमार श्रमण को उज्जयिनी के महाराज जयसेन व रानी अनंग सुन्दरी का पुत्र आचार्य समुद्रसूरि का शिष्य, पार्श्वनाथ की आचार्य परम्परा के चतुर्थ पट्टधर, प्रदेशी राजा का प्रतिबोधक[क] तथा गौतम गणधर के साथ संवाद करने वाला बताया है।

उपकेशगच्छ पट्टावली में निर्ग्रन्थीपुत्र केशी का उल्लेख नहीं है तथा अभिधान राजेन्द्र कोष में उज्जयिनी के राजा जयसेन के पुत्र केशी का कोई जिक्र नहीं है। लेकिन इन दोनों ग्रन्थों में केशी श्रमण को भगवान पार्श्वनाथ का चतुर्थ पट्टधर आचार्य, प्रदेशी राजा का प्रतिबोधक तथा गणधर गौतम के साथ संवाद

(क) प्रदेशी राजा का प्रतिबोधक - प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने वाले

करने वाला बतलाया गया है।

गुजराती लेखक मुनि दर्शन-विजय जी ने 'जैन परम्परा नो इतिहास' नामक पुस्तक में भी दोनों केशी-श्रमणों को अलग न मानकर एक ही माना है।

इसके विपरीत 'पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' नामक पुस्तक में दोनों केशी श्रमणों का भिन्न-भिन्न परिचय नहीं देते हुए भी आचार्य केशी और केशी कुमार श्रमण को अलग-अलग मानकर दो केशी श्रमणों का होना स्वीकार किया है।

वस्तुत: दोनों केशी श्रमण अलग-अलग ही हैं, क्योंकि आचार्य केशी, जो कि भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर और श्वेताम्बिका के राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक माने गये हैं, उनका काल उपकेशगच्छ पट्टावली के अनुसार पार्श्व निर्वाण संवत् 166 से 250 तक का है। यह काल भगवान महावीर की छद्मस्थावस्था तक ही हो सकता है।

इसके विपरीत श्रावस्ती नगरी में दूसरे केशी कुमार श्रमण और गौतम गणधर का सम्मिलन भगवान महावीर के केवलीचर्या के पन्द्रह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् होता है।[62]

इसके अतिरिक्त राजप्रश्नीय सूत्र में प्रदेशी प्रतिबोधक केशीकुमार श्रमण को चार ज्ञान[63] का धारक[क] बतलाया गया है[64] तथा गणधर गौतम के साथ संवाद करने वाले केशी कुमार श्रमण को उत्तराध्ययन में तीन ज्ञान[65] का धारक[ख] बतलाया गया है।[66]

इस प्रकार दोनों केशी श्रमण भिन्न ही हैं, एक का निर्वाण भगवान पार्श्वनाथ के शासन में हुआ, जबकि दूसरे का भगवान महावीर के शासन में।

(तत्वं तु केवलिगम्यम्)

इस प्रकार केशी कुमार श्रमण के भगवान महावीर के शासन में प्रव्रजित[67] होने के पश्चात् भगवान महावीर श्रावस्ती पधारे। भगवान कुछ समय तक वहाँ पर ठहरे, तत्पश्चात् प्रभु ने पाञ्चाल की ओर प्रयाण[ग] किया और अहिच्छत्रा[घ] पधारे। वहाँ धर्म की प्रभावना करके जन-जन के मन को धार्मिक रंग में रंगकर भगवान ने कुरु जनपद[ङ] की ओर विहार किया और भगवान

(क) चार ज्ञान का धारक - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव ज्ञान का धारक **(ख) तीन ज्ञान का धारक** - मति, श्रुत, अवधि ज्ञान का धारक **(ग) प्रयाण** - प्रस्थान **(घ) अहिच्छत्रा** - आजकल के रामनगर के समीप पूर्वकाल में अहिच्छत्रा थी **(ङ) कुरु जनपद** - यह देश पाञ्चाल के पश्चिम में और मत्स्य के उत्तर में था। अति प्राचीन-काल में इसकी राजधानी हस्तिनापुर में थी, जहाँ शांतिनाथ आदि तीर्थंकरों का जन्म हुआ।

हस्तिनापुर पधार गये। वहाँ के सहस्राम् वन उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

शिवराजर्षि की प्रणामा प्रव्रज्या

इस समय हस्तिनापुर का राजा जिसने दिक्प्रोक्षिक तापस प्रव्रज्या-ग्रहण की, वह भी हस्तिनापुर में ही था, उसका वर्णन इस प्रकार है-

उस समय हस्तिनापुर में शिव राजा[68] महामहिमवान् पर्वत के समान श्रेष्ठ था[69]। उसकी धारिणी महारानी अतिसुकुमाल हाथ पैर वाली और पति का अनुसरण करने वाली थी। उनके शिवभद्र नामक एक पुत्र था। वह युवावस्था को प्राप्त करके राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, कोठार, पुर, अन्त:पुर और जनपद का स्वयं निरीक्षण करता था।

तदनन्तर एक दिन राजा शिव को रात्रि के अंतिम प्रहर में राज्य के कार्य भार का विचार कर रहे थे, तब उनके मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि पूर्व उपार्जित पुण्य[70] के प्रभाव में मेरे राज्य[क], राष्ट्र, बल[ख], वाहन[ग], कोष, कोष्ठागार[घ], पुर[ङ] और अन्त:पुर[च] में वृद्धि हो रही है। मैं प्रचुर धन, कनक[छ], रत्न और सारभूत द्रव्यों द्वारा भी अतीव वृद्धि प्राप्त कर रहा हूँ। तो मैं क्या पूर्वपुण्यों के फलस्वरूप एकान्त सुख का उपभोग करता रहूँ अथवा अपने जीवन को त्याग मार्ग पर लगाऊँ? यह अवसर मेरे हाथ में आया है तब... तब... क्या करना चाहिए..., वास्तव में मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि जब तक मैं स्वर्ण, मणि, मुक्ता आदि से वृद्धि प्राप्त कर रहा हूँ, जब तक सामन्त राजा आदि सारे मेरे वश में हैं, तब तक कल प्रभात होते ही जाज्वल्यमान सूर्योदय होने पर बहुत सी लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कलछी और ताँबे के बहुत से तापसोचित उपकरण या पात्र बनवाऊँ और शिवभद्र कुमार को राजगद्दी पर बिठा करके पूर्वोक्त बहुत से लोहे एवं ताँबे के तापसोचित्त भाण्ड-उपकरण लेकर, उन तापसों के पास जाऊँ जो गंगा तट पर रहते हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के वानप्रस्थ[ज] तापस हैं। अग्निहोत्री, पोतिक-वस्त्रधारी, कोत्रिक-पृथ्वी पर सोने वाले, याज्ञिक, श्राद्धकर्म करने वाले, खप्परधारी, कुण्डिकाधारी श्रमण,

---

(क) राज्य - राजतंत्र, साम्राज्य **(ख) बल** - सामर्थ्य **(ग) वाहन** - गाड़ी, रथ, घोड़ा आदि सवारी **(घ) कोष्ठागार** - भंडार, खजाना (ङ) **पुर** - नगर, शहर **(च) अन्त:पुर** - रनिवास **(छ) कनक** - स्वर्ण, सोना (ज) **वानप्रस्थ** - वन में जाकर तपस्या करने वाले

दन्त प्रक्षालक[क], उन्मज्जक[ख], सम्मज्जक[ग], निमज्जक[घ], सम्प्रक्षालक[ङ], ऊर्ध्वकण्डुक[च], अध:कण्डुक[छ], दक्षिणकूलक[ज], उत्तर कूलक[झ], शंख फूंककर भोजन करने वाले, किनारे पर खड़े होकर आवाज करके भोजन करने वाले, मृगलुब्धक[ञ], हस्तीतापस[ट], जल से स्नान किये बिना भोजन नहीं करने वाले, पानी में रहने वाले, वायुभक्षी, पटमण्डप में रहने वाले, बिलवासी, वृक्षमूलवासी, जलभक्षक वायु में रहने वाले, शैवालभक्षक, मूलाहारी[ठ], कन्दाहारी[ड], त्वचाहारी[ढ], पत्राहारी[ण], पुष्पाहारी[त], फलाहारी[थ], बीजाहारी[द], कन्द, मूल छाल पत्ते फूल और फल खाने वाले, दण्ड ऊँचा करके चलने वाले, वृक्षमूल निवासी, मांडलिक, वनवासी, दिशाप्रोक्षी, पंचाग्नि ताप तपने वाले इत्यादि। उनमें से जो तापस दिशाप्रोक्षक हैं, उनके पास मुण्डित होकर मैं दिक्प्रोक्षक तापस रूप प्रव्रज्या अंगीकार करूँ। प्रव्रजित होने पर ऐसा अभिग्रह ग्रहण करूँ कि यावज्जीवन निरन्तर बेले-बेले की तपस्या करके दिक्रचक्रवाल तप:कर्म करके दोनों भुजाएं ऊँची रखकर रहना मेरे लिए कल्पनीय है।

दिक्रचक्रवाल तप का तात्पर्य है कि एक जगह पारणे में जो पूर्व-दिशा में फल हों, वे ग्रहण करके खाये जाते हैं, दूसरी जगह दक्षिण दिशा में, इसी प्रकार सभी दिशाओं में क्रमश: जिस तप:कर्म से पारणा किया जाता है, उसे दिक्रचक्रवाल तप:कर्म कहते हैं। शिव राजा ने इस प्रकार का विचार किया और दूसरे दिन सूर्योदय होने पर राजा शिव ने अनेक प्रकार की लोढ़ियां, लोहे की कडाही और तापसोचित्त[ध] भण्डोपकरण तैयार करवा करके कौटुम्बिक[न] पुरुषों को बुलवाकर पूरे नगर के बाहर और भीतर जल का छिड़काव करवाकर सफाई करवाई।

(क) दन्त प्रक्षालक - फलभोजी **(ख) उन्मज्जक** - एक बार पानी में डुबकी लगाकर स्नान करने वाले **(ग) सम्मज्जक** - बार-बार पानी में डुबकी लगाकर स्नान करने वाले **(घ) निमज्जक** - डुबकी लगाकर कुछ समय पानी के भीतर रहने वाले **(ङ) सम्प्रक्षालक** - मिट्टी रगड़कर नहाने वाले **(च) उर्ध्वकण्डुक** - ऊपर खुजलाने वाला **(छ) अध:कण्डुक** - नीचे खुजलाने वाला **(ज) दक्षिणकूलक** - गंगा के दक्षिणी तट पर रहने वाला **(झ) उत्तरकूलक** - गंगा के ऊपरी तट पर रहने वाला **(ञ) मृग लुब्धक** - पशु मारकर खाने वाले **(ट) हस्तितापस** - हाथी मारकर खाने वाले **(ठ) मूलाहारी** - मूल खाने वाले **(ड) कन्दाहारी** - कन्द खाने वाले **(ढ) त्वचाहारी** - छाल खाने वाले **(ण) पत्राहारी** - पत्ते खाने वाले **(त) पुष्पाहारी** - पुष्प खाने वाले **(थ) फलाहारी** - फल खाने वाले **(द) बीजाहारी** - बीज खाने वाले **(ध) तापसोचित्त** - तापस-योग्य **(न) कौटुम्बिक** - सेवक

तत्पश्चात् दूसरी बार शिव राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाकर शिवभद्र कुमार के महार्थ[क], महामूल्यवान् और महोत्सव योग्य विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करवाई।

उसके पश्चात् राजा शिव ने अनेक गणनायक[ख], दण्डनायक[ग] यावत् सन्धिपाल[घ] आदि से युक्त होकर शिवभद्र कुमार को पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन किया। तत्पश्चात् एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से समस्त राज्य चिह्नों के साथ यावत् बाजों के महानिनाद[ङ] के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। तदनन्तर अत्यन्त कोमल सुगन्धित तौलिये से उसके शरीर को पोंछा। राजकुमार जमालि[71] की तरह शिवभद्र कुमार को कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित किया। तत्पश्चात् शिवभद्र कुमार को जय-विजय शब्दों से बधाया। कोणिक राजा की तरह शिवभद्रकुमार को इष्ट, कान्त एवं प्रिय शब्दों से आशीर्वाद दिया यावत् कहा कि तुम परम दीर्घायु हो और इष्ट जनों से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर तथा अन्य बहुत से ग्राम जाकर नगर आदि यावत् परिवार, राज्य और राष्ट्र आदि के स्वामित्व का उपभोग करते हुए विचरो इत्यादि आशीर्वचन कहकर जय-जय शब्द का प्रयोग किया[72]।

अब वह शिवभद्रकुमार राजा बन गया और वह महाहिमवान् पर्वत के समान राजाओं में प्रधान होकर विचरण करने लगा।

तदनन्तर किसी समय शिव राजा ने प्रशस्त तिथि, करण, नक्षत्र, दिवस और शुभ मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाया और मित्र, ज्ञातिजन[च], स्वजन, परिजन, राजाओं और क्षत्रियों आदि को आमंत्रित किया। तत्पश्चात् स्वयं राजा ने स्नानादि किया यावत् शरीर पर चन्दन का विलेपन किया। तब भोजन के समय भोजन मण्डप में उत्तम सुखासन पर बैठा और अपने मित्र, जाति, निजक[छ], स्वजन यावत् परिजन, राजाओं और क्षत्रियों के साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन किया। तत्पश्चात् तामली तापस की तरह उनका सत्कार-सम्मान किया। तत्पश्चात् उन मित्रादि को तथा शिवभद्र राजा की अनुमति लेकर लोढ़ी,

(क) महार्थ - बहुत पैसे वाली **(ख) गणनायक** - मनुष्य समूह का अगुआ **(ग) दण्डनायक** - संन्यासियों के स्वामी **(घ) सन्धिपाल** - राज्य की सीमा का रक्षक **(ङ) महानिनाद** - बहुत तेज आवाज **(च) ज्ञातिजन** - स्वजातीय लोग **(छ) निजक** - अपने

लोहकटाह[क], कलछी आदि बहुत से तापसोचित्त भण्डोपकरण ग्रहण किये और गंगातट निवासी वानप्रस्थ तापसों के पास जाकर दिशाप्रोक्षक तापसों के पास मुण्डित होकर दिशाप्रोक्षक तापस रूप में प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रज्या ग्रहण करते ही शिवराजर्षि ने इस प्रकार अभिग्रह[73] धारण किया कि आज से आजीवन बेले-बेले की तपस्या करते हुए दिक्चक्रवाल तप:कर्म करके दोनों भुजाएं ऊँची रखकर रहना मेरे लिए कल्पनीय है। इस प्रकार अभिग्रह धारण करके प्रथम बेले का तप अंगीकार करके विचरण करने लगा।

तत्पश्चात् वह शिवराजर्षि प्रथम बेले के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरे, उन्होंने वल्कल पहिने अपनी कुटी पर आये। वहाँ से बाँस की छबरी और कावड़ लेकर पूर्व दिशा का पूजन किया और इस प्रकार प्रार्थना की- हे पूर्वदिशा के लोकपाल सोम महाराज! इस परलोक साधना मार्ग में प्रवृत्त हुए मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें और यहाँ पूर्व दिशा में जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फल, बीज और हरी वनस्पति है, उन्हें लेने की अनुज्ञा दें। यों कहकर शिवराजर्षि ने पूर्व दिशा का अवलोकन किया और वहाँ जो भी कन्दमूल यावत् हरी वनस्पति मिली उसे ग्रहण कर कावड़ में लगी हुई बाँस की छबड़ी में भर ली। तत्पश्चात् दर्भ, कुश[74], समिधा की लकड़ी और वृक्ष की शाखा को मोड़कर तोड़े हुए पत्ते लिये और अपनी कुटी पर आ गये। कुटी पर आकर उस कावड़ सहित छबड़ी को नीचे रखा, वेदिका का प्रमार्जन कर उसे लीप कर शुद्ध किया। तत्पश्चात् डाभ और कलश लेकर गंगा महानदी के पास आये फिर गंगा में अवगाहन किया, उसके जल से स्वयं के शरीर को शुद्ध किया, जलक्रीड़ा की, पानी को अपने शरीर पर सींचा, जल का आचमन[ख] आदि करके परम पवित्र एवं स्वच्छ होकर देव और पितरों का कार्य सम्पन्न करके कलश में दर्भ डालकर उसे हाथ से लेकर गंगा महानदी से बाहर निकले और अपनी कुटी पर आकर डाभ, कुश और बालू से वेदिका बनाई, अरणि की लकड़ी का मंथन कर अग्नि प्रज्जवलित की। अग्नि जब धधकने लगी तब उसमें समिधा की लकड़ी डालकर और अधिक अग्नि प्रज्जवलित की। तत्पश्चात् अग्नि के दाहिने ओर सात वस्तुएं रखी यथा सकया उपकरण विशेष 2. वल्कल 3. टीप[ग] 4. शय्या भाण्ड 5. कमण्डलु 6. लकड़ी का डण्डा 7. अपना शरीर। तत्पश्चात् मधु, घी और

(ज) लोहकटाह - लोहे की (कढाई) कड़ाही **(ग) आचमन** - कुल्ला **(ग) टीप** - शरीर को एक निश्चित स्थिति में रखने का आसन

चावलों का अग्नि में हवन किया। चरू में बलिद्रव्य[क] को लेकर अग्निदेव को अर्पण किया[75] तब अतिथि की पूजा की और उसके पश्चात् शिवराजर्षि ने स्वयं आहार किया।

इसके बाद शिवराजर्षि ने दूसरा बेला अंगीकार किया। बेले के पारणे के दिन शिवराजर्षि आतापना भूमि से नीचे उतरे, वल्कल पहने यावत् प्रथम पारणे की तरह ही दूसरा पारणा किया लेकिन इतना विशेष है कि दूसरे पारणे के दिन दक्षिण दिशा की पूजा की, कि हे दक्षिण दिशा के लोकपाल यम महाराज! परलोक साधना में प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें इत्यादि समग्र वर्णन पूर्व की तरह ही है।

तब उस शिवराजर्षि ने तीसरा बेला तप अंगीकार किया, पारणा पूर्ववत् ही किया विशेषता इतनी है कि इसमें पश्चिम दिशा की पूजा की और प्रार्थना करते हुए कहा कि हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज! परलोक साधना मार्ग में प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षि की रक्षा करें इत्यादि समग्र वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

तत्पश्चात् शिवराजर्षि ने चतुर्थ बेला तप अंगीकार किया। बेले का पारणा पूर्ववत् ही किया लेकिन विशेषता इतनी है कि उन्होंने इस बार उत्तर दिशा की पूजा की और प्रार्थना करते हुए कहा कि हे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज! परलोक साधना मार्ग में प्रवृत्त इस शिवराजर्षि की रक्षा करें इत्यादि समग्र वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस प्रकार निरन्तर बेले-बेले की तपश्चर्या से दिक्चक्रवाल तप करते हुए, आतापना लेते हुए प्रकृति की भद्रता[ख] यावत् विनीतता से शिवराजर्षि को तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण ईहा[ग], अपोह[घ], मार्गणा[ङ] और गवेषणा[च] करते हुए विभंगज्ञान[XX] पैदा हुआ। इस विभंगज्ञान[छ] से वे इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र देखने लगे। इससे आगे वे जानते-देखते नहीं थे।

राजर्षि शिव को विभंग ज्ञान* और प्रव्रज्या

तब शिवराजर्षि को इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे अतिशय

(क) बलिद्रव्य - मधु, घी, चावल **(ख) भद्रता** - सरलता **(ग) ईहा** - ऊहापोह, विमर्श **(घ) अपोह** - निश्चय ज्ञान **(ङ) मार्गणा** - विचार करना **(च) गवेषणा** - खोज करना **(छ) विभंग ज्ञान** - अवधिज्ञान जैसा एक अज्ञान **(*) विभंग ज्ञान का वर्णन प्रथम परिशिष्ट में देखें**

ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इस लोक में सात द्वीप समुद्र हैं। उससे आगे द्वीप और समुद्र नहीं हैं। ऐसा विचार करके वे आतापना भूमि से नीचे उतरे। उन्होंने वल्कल पहिने, अपनी कुटी में आये। वहाँ से लोढ़ी, लोहे के कड़ाह, कलछी आदि बहुत से भण्डोपकरण तथा छबड़ी सहित कावड को लेकर हस्तिनापुर[क] नगर में तापसों के आश्रम में आये, वहाँ तापसोचित उपकरण रखे और फिर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक[ख], त्रिक[ग], यावत् राजमार्गों में बहुत से मनुष्यों को इस प्रकार कहने लगे यावत् प्ररूपणा करने लगे- हे देवानुप्रियों! मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता हूँ और देखता हूँ कि इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं।

शिवराजर्षि के इस कथन को सुनकर हस्तिनापुर के लोग जगह-जगह यह कहने लगे कि शिवराजर्षि ऐसा कहते हैं कि सात द्वीप-समुद्र ही हैं, उसके बाद द्वीप-समुद्रों का अभाव है, उनकी यह बात कैसे मानी जाये?

इधर यह चर्चा हो ही रही थी, उधर भगवान महावीर हस्तिनापुर पधार ही चुके थे। उनके प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम भिक्षाचर्या[76] के लिए घूम रहे थे, उन्होंने लोगों से यह सारी चर्चा सुनी। तब वे भिक्षाचर्या[घ] से लौटकर भगवान के पास गये और भगवान से सारी वार्ता निवेदन कर पूछने लगे कि भगवान क्या शिवराजर्षि का कथन सत्य है?

तब भगवान महावीर ने कहा- गौतम! शिवराजर्षि का यह कथन मिथ्या है, क्योंकि द्वीप समुद्र असंख्यात हैं[77]। जम्बूद्वीप तथा लवणादि[78] समुद्र गोल हैं, विस्तार में एक-दूसरे से दुगने दुगने हैं।

तब गौतम स्वामी ने पूछा भगवन्- क्या जम्बूद्वीप आदि सभी द्वीपों में तथा लवणादि सभी समुद्रों में पुद्गल द्रव्य तथा धर्मास्तिकायादि अन्योन्य बद्ध[ङ/79] तथा अन्योन्य स्पृष्ट[च] यावत् अन्योन्य सम्बद्ध[छ] रहते हैं[80]।

भगवान ने फरमाया, हाँ रहते हैं। इस प्रकार भगवान की वाणी गौतम स्वामी सहित विशाल परिषद ने श्रवण की और श्रवण करके हृदय में धारण करके

(क) हस्तिनापुर - इस नगर के लिए हस्तिनी, हस्तिपुर, गजपुर आदि अनेक नाम कवियों द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। किसी समय यह नगर कुरुदेश का पट्ट नगर था **(ख) शृंगाटक** - सिंघाड़े के आकार के समान त्रिकोणाकार रास्ता **(ग) त्रिक** - तीन रास्तों का समूह **(घ) भिक्षाचर्या** - गोचरी **(ङ) अन्योन्यबद्ध** - जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि समस्त द्वीप समुद्रों में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि से रहित और सहित द्रव्यों की परस्पर बद्धता **(च) अन्योन्य स्पृष्ट** - इन्हीं द्रव्यों की परस्पर स्पृष्टता **(छ) अन्योन्य सम्बद्ध** - परस्पर सम्बद्ध

हर्षित, सन्तुष्टित होकर वह परिषद लौट गयी।

भगवान के श्रीमुख से यह बात श्रवण करके हस्तिनापुर[81] के शृंगाटक यावत् राजमार्गों पर बहुत से लोग चर्चा करने लगे कि शिवराजर्षि जो यह कहते हैं कि द्वीप समुद्र सात ही हैं, उसके आगे नहीं तो उनका यह कथन मिथ्या है, क्योंकि भगवान महावीर कहते हैं कि द्वीप समुद्र असंख्यात हैं।

शिवराजर्षि ने जब लोगों के मुँह से यह सब श्रवण किया तो उनके मन में शंका[क], कांक्षा[ख], विचिकित्सा[ग] हुई, उनके मन में कलुषित भाव पैदा हुआ और उनका विभंग-ज्ञान नष्ट हो गया[82]।

तब शिवराजर्षि के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी, धर्म की आदि करने वाले, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। जिनके आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है। वे सहस्राम्रवन उद्यान में विराज रहे हैं। उनका नाम, गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है, तो फिर उनके सन्मुख जाना, वन्दन करना इत्यादि का तो कहना ही क्या? उनसे एक वचन भी सुन लूँ तो... तो... महान् फलदायक है। फिर विपुल अर्थ ग्रहण का तो कहना ही क्या? अत: मैं श्रमण भगवान महावीर के पास जाऊँ, उन्हें वन्दन-नमस्कार करके पर्युपासना करूँ। यह मेरे लिए इस भव में और परभव में श्रेयस्कर होगा।

इस प्रकार का विचार करके शिवराजर्षि तापस मठ में आये। वहाँ से वे बहुत से लोढ़ी, लौह-कड़ाह यावत् छबड़ी सहित कावड़ आदि बहुत से उपकरण लेकर तापस मठ से निकले और हस्तिनापुर के मध्य होकर सहस्राम् वन उद्यान में जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये। श्रमण भगवान महावीर के समीप आकर तीन बार आदक्षिणा[83]-प्रदक्षिणा की, उन्हें वन्दन नमस्कार किया और न अति दूर न अति निकट हाथ जोड़कर भगवान की पर्युपासना करने लगे।

तब श्रमण भगवान महावीर ने शिवराजर्षि को तथा उस विशाल परिषद को धर्मोपदेश दिया। भगवान की उस मर्मस्पर्शी दिव्य देशना को श्रवण करके, हृदय में धारण करके शिवराजर्षि ने स्कन्दक की तरह ईशान कोण[घ] में जाकर तापसोचित्त समस्त उपकरणों को एकान्त में डाल दिया तत्पश्चात् स्वयमेव पंचमुष्टि लोच कर श्रमण भगवान महावीर के पास ऋषभदत्त की तरह दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह अंगशास्त्रों का अध्ययन किया, इस प्रकार यावत् वे

(क) शंका - सन्देह **(ख) कांक्षा** - अन्य की आकांक्षा **(ग) विचिकित्सा** - फल में सन्देह
(घ) ईशान कोण - पूर्व-उत्तर का कोना

शिवराजर्षि मोक्ष को प्राप्त हुए[84]। तब गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से सिद्धों के संहनन आदि के विषय[XXI] में प्रश्न किया।

भगवान ने सिद्धों के सुख का सुन्दर स्वरूप बतलाया जिसे श्रवण कर इन्द्रभूति गौतम श्रद्धावनत होकर कहने लगे- भगवन्! यह इसी प्रकार है। भगवन्! यह इसी प्रकार है।

हस्तिनापुर में पोट्टिल की दीक्षा

भगवान महावीर अभी हस्तिनापुर ही विराज रहे हैं। वहाँ धर्म परायणा जनता निरन्तर भगवान के भव्य समागम का अपूर्वलाभ उठा रही है, एक दिन इसी नगर में रहने वाला भद्रासार्थवाही[क] का पुत्र पोट्टिल जो अत्यन्त सुकुमार एवं परिपूर्ण अंगोपांग सम्पन्न पञ्चधायों द्वारा पालित था, 32 सुन्दरियों के साथ जिसका विवाह हुआ। धन्नाकुमार की तरह बत्तीस का दहेज जिसे दिया गया, वह महलों में भोगों में लीन था कि मन में विचार आया, भगवान महावीर की वाणी श्रवण करने का। निकल पड़ा महलों से प्रभु की दिव्य देशना श्रवण करने। एक ही उपदेश श्रवण करके मन में विरक्ति का अंकुर फूट गया, थावच्चापुत्र[85] की तरह अभिनिष्क्रमण[ख] हुआ और वह प्रव्रजित[86] हुआ, उसी दिन उसने अभिग्रह धारण किया अनासक्त होकर आहार करने लगा।*

पोट्टिल की दीक्षा के पश्चात् अन्य अनेक भव्यात्माओं ने श्रमण दीक्षा स्वीकार की।

कुछ दिन प्रभु हस्तिनापुर विराजे तत्पश्चात् वहाँ से विहार करके भगवान मोका[ग] नगरी[XXII] पधारे और वहाँ के नन्दन चैत्य[XXIII] में तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

गणधर अग्निभूति की जिज्ञासा

इसी स्थान पर एक दिन द्वितीय गणधर अग्निभूति के मन में देव-

* **टिप्पण :-** पोट्टिल अणगार ने दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना करके विपुल गिरी पर अनशन कर सर्वार्थ-सिद्ध विमान में देव हुए। वहाँ से महाविदेह[87] में जन्म लेकर सिद्धावस्था को प्राप्त करेंगे। **(क) भद्रासार्थवाही** - भद्रा-सेठानी **(ख) अभिनिष्क्रमण** - दीक्षा **(ग) मोका** - यह नगरी उत्तर भारत के पश्चिम विभाग में कहीं थी, संभव है पंजाब प्रदेश स्थित आधुनिक मोगामण्डी ही प्राचीन मोका नगरी रही होगी।

सम्बन्धी जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई, वे स्वयं भगवान के पास पहुँचे, उन्होंने प्रभु को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन करके पूछने लगे- भगवन्! असुरों का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र कितनी बड़ी ऋद्धिवाला है? कितनी बड़ी कान्ति वाला है? कितने महान् प्रभाववाला है? और वह कितनी विकुर्वणा[XXV] करने में समर्थ है[88]?

भगवान ने फरमाया, अग्निभूति गौतम? असुरों का इन्द्र असुरराज चमर महान ऋद्धिवाला, महान प्रभावशाली है। वह दक्षिण दिशा में रहने वाले असुरकुमारों का मालिक है। इनके भवन एक लाख अस्सी हजार की मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड़कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में हैं।

ये भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौरस और नीचे से कमल की कर्णिका के आकार वाले हैं। इन भवनों के चारों ओर गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएं[क] खुदी हुई हैं, जिनका अंतर स्पष्ट प्रतीत होता है। यथास्थान परकोटों, अटारियों, कपाटों[ख], तोरणों[ग] और प्रतिद्वारों[घ] से भवनों का एकदेश भाग सुशोभित होता है।

ये भवन यंत्रों शतहिनयों-महाशिलाओं या महायाष्टियों, मूसलों और मुसुण्ढी[ङ] नामक शस्त्रों से चारों ओर से घिरे हुए होते हैं तथा शत्रुओं द्वारा युद्ध न कर सकने योग्य, सदाजय, सदैव सुरक्षित, अड़तालिस कोठों से रचित, अड़तालिस वनमालाओं से सुसज्जित क्षेममय[च], शिवमय, किंकर[छ] देवों के दण्डों से उपरक्षित हैं। गोबर आदि से लीपने तथा चूने आदि से पोतने के कारण वे भवन प्रशस्त रहते हैं। उन भवनों पर गोशीर्ष चन्दन और सरस रक्त चन्दन से लिप्त पाँचों अंगुलियों वाले हाथ के छापे लगे होते हैं। स्थान-स्थान पर चन्दन के कलश रखे रहते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वार देश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित होते हैं। वे भवन ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त होते हैं तथा पचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पों के द्वारा उपचार से भी युक्त होते हैं। वे भवन काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित अगरबत्ती के समान लगते हैं। वे भवन अप्सराओं के समूह से व्याप्त,

(क) परिखाएँ - नगर के चारों ओर की खाई **(ख) कपाटों** - किवाड़ों **(ग) तोरणों** - वन्दनवारों **(घ) प्रतिद्वारों** - फाटक के पास का दूसरा छोटा दरवाजा **(ङ) मुसुण्ढी** - एक प्रकार का शस्त्र **(च) क्षेममय** - कल्याणकारी **(छ) किंकर** - सेवक

दिव्य वाद्यों[क] के शब्दों से शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, पोंछें हुए, धूलि रहित, निर्मल, निष्पंक[ख], कान्तिमान्, प्रभायुक्त, श्री सम्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योत युक्त, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अतिरमणीय, सुन्दर होते हैं। इनमें बहुत से असुर कुमार देव निवास करते हैं। स्वयं असुर राज चमरेन्द्र भी यहीं निवास करता है। वह काले, महानील के समान रंगवाले विकसित कमल के समान निर्मल, कहीं श्वेत, रक्त और ताम्रवर्णी[ग] नेत्रों वाले, गरुड़ के समान विशाल सीधी और ऊँची नाक वाले पुष्ट या तेजस्वी मूंगा तथा बिम्बफल के समान अधर[घ] वाले, श्वेत विमल एवं निर्मल चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शंख, गाय के दूध, कुन्द जलकण और मृणालिका[ङ] के समान धवल दंतपंक्ति वाले, अग्नि में तपाये और धोये हुए सोने के समान लाल तलवों, तालु तथा जिह्वा वाले, अंजन[च] तथा मेघ के सामान काले, रूचकरत्न[छ] के समान रमणीय चिकने केशों वाले, बाएं कान में एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीर वाले, शिलिन्ध्र पुष्प के समान थोड़े से प्रकाशमान किञ्चित् लाल तथा संक्लेश उत्पन्न न करने वाले, सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र पहिने हुए, कुमारावस्था के किनारे पहुँचे हुए द्वितीय वय[ज] को प्राप्त नहीं किये हुए भद्र, अतिप्रशस्त यौवन वय में होते हैं। उनकी भुजाओं पर तलभंगक-भुजा का आभूषण विशेष (तोडा) त्रुटिलबाहु रक्षक एवं अन्यान्य श्रेष्ठ आभूषणों में जड़ित निर्मल मणियों तथा रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं से सुशोभित अंगुलियों वाले, चूड़ामणि रूप अद्भुत चिह्न वाले सुरूप, महर्द्धिक[झ], महाद्युतिमान्[ञ], महायशस्वी, महाबली, महा सामर्थ्य युक्त, महासुखी हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों और बाजूबन्दों से स्तम्भित[ट] भुजा वाले, अंगद और कुण्डल से चिकने कपोल[ठ] वाले तथा कर्ण-पीठ के धारक, हाथों में विचित्र आमरण वाले, विचित्र पुष्पमाला मस्तक में धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहिने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन[ड] के धारक चमकते हुए शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक, दिव्य वर्ण, गन्ध, स्पर्श,

(क) वाद्यों - बाजों **(ख) निष्पंक** - कीचड़ रहित **(ग) ताम्रवर्णी** - ताँबे के समान लाल रंग वाले **(घ) अधर** - नीचे का होंठ **(ङ) मृणालिका** - कमल तन्तु **(च) अंजन** - काजल **(छ) रूचकरत्न** - एक रत्न, गर्दन का आभूषण, विशेष हार **(ज) द्वितीय वय** - दूसरी उम्र (बुढ़ापा) **(झ) महर्द्धिक** - महान ऋद्धि वाले **(ञ) महाद्युतिमान** - महान चमक वाले **(ट) स्तम्भित** - स्थिर **(ठ) कपोल** - गाल **(ड) अनुलेपन** - विलेपन

संहनन[क], संस्थान[ख], ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, ज्योति, तेज, लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए असुरराज चमरेन्द्र वहाँ चौंतीस लाख भवनावासों[ग] पर, चौसठ हजार सामानिक देवों[घ] पर, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों[ङ] पर, चार लोकपालों[च/XXVI] पर, पाँच सपरिवार अग्रमहिषियों[छ/XXVII] पर तीन परिषदों[ज] पर, सात सेनाओं[झ] पर, सात सेनाधिपति देवों[ञ] पर, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक[ट] देवों पर, अन्य बहुत से दाक्षिणात्य[ठ] भवनवासी देवों और देवियों पर आधिपत्य[ड], अग्रसेरत्व[ढ], स्वाभित्व, मर्तृत्व (पोषण कर्तृव्य), महतरत्व-महानता, आज्ञेश्वरत्व[ण] एवं सेनापत्य[त] करते कराते, पालन करते कराते हुए महान बाधा रहित नृत्य, गीत, वादित, तल, ताल, त्रुटित, धनमृदंग के बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एवं उपभोग योग्य भोगों का उपभोग करते हुए विहरण करते हैं[89]।

उस असुरेन्द्र असुरराज चमर की तीन परिषदाएँ हैं यथा- समिता, चंडा और जाया।

आभ्यन्तर परिषद्- समिता, मध्यम परिषद्- चण्डा और बाह्य परिषद्- जाया हैं। इस आभ्यन्तर परिषद में 24000 देव, मध्यम परिषद में 28000 देव तथा बाह्य परिषद् में 32000 देव हैं। इनकी आभ्यन्तर परिषद् में 350 देवियां, मध्यम में 300 देवियां तथा बाह्य में 250 देवियां हैं।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति ढाई

(क) संहनन - हड्डियों की रचना **(ख) संस्थान** - आकृति **(ग) भवनावासों** - भवनपतियों के आवासों **(घ) सामानिक देवों** - इन्द्र के समान ऋद्धि वाले लेकिन इन्द्र पदवी से रहित **(ङ) त्रायस्त्रिंशक देवों** - के समान जैसे देवों **(च) लोकपालों** - दिशा-रक्षक देवों **(छ) अग्रमहिषियों** - प्रधान पट्टरानी देवियों। इनके पाँच अग्रमहिषियां हैं, यथा- 1. काली 2. राजी 3. रजनी 4. विद्युत 5. महिता। एक-एक अग्रमहिषी के आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है। यदि एक-एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो आठ-आठ हजार वैक्रिय रूप बना सकती हैं। इन्द्र जितनी देवियां होती हैं, उतने ही रूप बना सकते हैं **(ज) तीन परिषदों** - आभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य **(झ) सात सेनाओं** - 1. गजानीक - हाथियों की सेना 2. हयानीक - घोड़ों की सेना 3. स्थानीक - रथों की सेना 4. पदातिअनीक - पैदल सेना 5. महिषानीक - भैंसों की सेना 6. गन्धर्वानीक - गन्धर्व देवों की सेना 7. नाट्यानीक - नाटक करने वाले देवों की सेना **(ञ) सेनाधिपति देवों** - ..... **(ट) आत्म-रक्षक** - आत्मा की रक्षा करने वाले **(ठ) दाक्षिणात्य** - दक्षिण दिशावासी **(ड) आधिपत्य** - अधिकार **(ढ) अग्रेसरत्व** - अग्रसर करने वाले **(ण) आज्ञेश्वरत्व** - आज्ञा का पालन करवाते हुए **(त) सेनापत्य** - सेनापतित्व करते हुए

पल्योपम, मध्यम की दो पल्योपम तथा बाह्य परिषद् के देवों के डेढ़ पल्योपम की स्थिति है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की डेढ़ पल्योपम, मध्यम की एक पल्योपम और बाह्य परिषद् की देवियों की आधे पल्योपम की स्थिति है।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषद् के देव बुलाये जाने पर आते हैं। बिना बुलाये नहीं आते। मध्यम परिषद् के देव बुलाने पर भी आते हैं, नहीं बुलाने पर भी आते हैं। बाह्य परिषद् के देव बिना बुलाये आते हैं।

असुरेन्द्र असुरराज चमर किसी प्रकार के ऊँचे, नीचे, शोभन, अशोभन, कौटुम्बिक कार्य आ पड़ने पर आभ्यन्तर परिषद् के साथ विचारणा करता है, उनकी सम्मति लेता है। मध्यम परिषद् को अपने निश्चित किये कार्य की सूचना देकर उन्हें स्पष्टता के साथ कारणादि समझाता है। बाह्य परिषद् को कार्य करने की आज्ञा देता है[90]।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सात प्रकार की सेनाएँ हैं, यथा- 1. गन्धर्व सेना 2. नृत्य करने वाले देवों की सेना 3. अश्वरूप सेना 4. हस्तिरूप सेना 5. रथरूप सेना 6. पैदल सेना 7. भैंसरूप सेना[91]। एक-एक अनीका-सेना में 81 लाख 28 हजार देव हैं[92]।

उत्पात पर्वत का वर्णन

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा[क] तिर्यक् लोक[ख] में है। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में तिरछे असंख्यात द्वीपों और समुद्रों को लाँघने के पश्चात् अरुणवर द्वीप[ग] आता है। उस द्वीप की वेदिका[घ] के बाहरी किनारे से आगे बढ़ने पर अरुणोदय नामक समुद्र आता है। इस अरुणोदय समुद्र पर हजार योजन जाने के बाद उस स्थान में असुर कुमारों के इन्द्र, असुर कुमारों के राजा चमर का तिगिंच्छकूट नामक उत्पात पर्वत है। तिरछालोक में जाने के लिए इस पर्वत पर आकर चमर उत्पतन करता-उड़ता है, इसलिए इसका नाम उत्पात पर्वत पड़ा है। इस पर्वत की ऊँचाई 1721 योजन है। उसकी जमीन में गहराई 430 योजन और एक कोस है। इस तिगिंच्छकूट पर्वत का विष्कम्भ[ङ] मूल में 1022 योजन, मध्य में 424 योजन तथा ऊपर का विष्कम्भ 723 योजन है।

(क) सुधर्मा सभा - जिसमें इन्द्र विशेष विचार-विमर्श आदि करते हैं **(ख) तिर्यक् लोक** - तिरछा लोक, मध्य लोक **(ग) अरुणवर द्वीप** - एक द्वीप का नाम **(घ) वेदिका** - परकोटा **(ङ) विष्कम्भ** - चौड़ाई

उसका परिक्षेप[क] मूल में 3232 योजन से कुछ विशेषोन[ख] है, मध्य में 1341 योजन तथा कुछ विशेष ऊन और ऊपर का परिक्षेप 2286 योजन तथा कुछ विशेषाधिक है। वह मूल में विस्तृत, मध्य में संकरा तथा ऊपर विस्तृत है। उसके बीच का भाग उत्तम वज्र जैसा है, वह बड़े मुकुन्द - एक प्रकार का वाद्य विशेष जैसे आकार का है। पर्वत पूरा रत्नमय यावत् प्रतिरूप[ग] है[93]।

पद्मवर वेदिका का वर्णन

वह पर्वत एक पद्मवर वेदिका से घिरा हुआ है। उस श्रेष्ठ पद्मवेदिका की ऊँचाई आधा योजन, विष्कम्भ पाँच सौ धनुष[घ] है। वह सर्वरत्नमयी है। उसका परिक्षेप तिगिंच्छकूट के ऊपरी भाग के परिक्षेप जितना है।

उस पद्मवर वेदिका के नेम-भूमिभाग के ऊपर निकले हुए प्रदेश वज्र रत्न से बने हुए हैं। उसके मूल पाये रिष्टरत्न के बने हुए हैं, इसके स्तम्भ वैडूर्यरत्न के हैं। उसके फलक-पटिये सोने चाँदी के हैं, उसकी संधियाँ वज्रमय हैं, लोहिताक्षरत्न की बनी उसकी सूचियाँ हैं, ये सूचियाँ पादुकातुल्य होती हैं, जो पाटियों को जोड़े रखती हैं, विघटित नहीं होने देती। इस वेदिका में मनुष्यादि शरीर के चित्र अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए हैं तथा स्त्री-पुरुष युग्म[ङ] की जोड़ी के चित्र अनेकविध मणियों के बने हैं। मनुष्य चित्रों के अतिरिक्त जो चित्र बने हैं, वे अनेक प्रकार की मणियों के बने हुए हैं। उसके आजू-बाजू के भाग अंक रत्नों के बने हैं। बड़े-बड़े पृष्ठवंश ज्योति रत्न नामक रत्न के हैं। बड़े वंशों को स्थिर रखने के लिये उनकी दोनों ओर तिरछे रूप में लगाये गये बांस भी ज्योतिरत्न के हैं। बांसों के ऊपर छप्पर पर दी जाने वाली लम्बी लकड़ी की पट्टिकाएँ चाँदी की बनी हैं। कम्बाओं को ढकने के लिये उनके ऊपर जो ओहाडणियाँ-आच्छादन[च] हेतु बड़ी किमड़ियां हैं वे सोने की हैं और पुंछनियां-निविड़[छ] आच्छादन के लिए मुलायम तूण विशेष तुल्य छोटी किमड़ियां वज्ररत्न की हैं, पुच्छनी के ऊपर तथा कवेलु के नीचे का आच्छादन श्वेत चाँदी का बना हुआ है।

वह पद्मवर वेदिका कहीं पूरी तरह सोने के लटकते हुए माला समूह से,

---

(क) परिक्षेप - परिधि, घेरा **(ख) विशेषोन** - कुछ कम **(ग) प्रतिरूप** - मन को अच्छा लगने वाला **(घ) धनुष** - चार हाथ का एक धनुष **(ङ) युग्म** - जोड़ी **(च) आच्छादन** - ढकने **(छ) निविड़** - घनघोर

कहीं गवाक्ष[क] की आकृति के रत्नों के लटकते हुए माला समूह से, कहीं किंकणी छोटी घंटियां और कहीं बड़ी घंटियों के आकार की मालाओं से, कहीं मोतियों की लटकती मालाओं से, कहीं मणियों की मालाओं से, कहीं सोने की मालाओं से, कहीं रत्नमय पद्म[ख] की आकृति वाली मालाओं से सब दिशा विदिशाओं में व्याप्त है।

वे मालाएँ तपे हुए स्वर्ण के लम्बूसग-पेण्डलवाली हैं, सोने के पतरे से मंडित हैं, नाना प्रकार के मणिरत्नों के विविध हार-अर्धहारों से सुशोभित हैं। ये एक दूसरे से कुछ ही दूरी पर अर्थात् पास-पास में हैं। ये पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण से आने वाली वायु से मंद-मंद रूप से हिलती रहती हैं, कम्पित होती रहती हैं। इस प्रकार हिलने और कम्पित होने से लम्बी-लम्बी फैलती रहती हैं और परस्पर टकराने से शब्दायमान[ग] होती रहती हैं। उन मालाओं से निकले हुए शब्द जोरदार होने पर भी मनोज्ञ, मनोहर, श्रोताओं के कान और मन को मंत्रमुग्ध बनाने वाले होते हैं। ये मालाएँ मनोज्ञ शब्दों से सब दिशाओं और विदिशाओं को आपूरित[घ] करती हुई श्री से अतीव सुशोभित हो रही हैं।

इस पद्मवर वेदिका के अलग-अलग स्थानों पर अनेक जगह कहीं अश्व के जोड़े, हरित के जोड़े, नर, किन्नर किंपुरुष महोरग[ङ] गंधर्व तथा बैल के जोड़े के चित्र रत्नों से अंकित हैं, जो दर्शकों का मन मंत्रमुग्ध करने वाले हैं। स्थान-स्थान पर कहीं एक पंक्ति घोड़े की, हाथी की, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व तथा बैलों की एक पंक्ति, कहीं दो-दो पंक्ति, कहीं इन्हीं के स्त्री-पुरुष रूप युगल जोड़ी के चित्र नेत्रों को आकृष्ट करने वाले हैं।

उस पद्मवर वेदिका में स्थान-स्थान पर बहुत सी पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, आम्रलता, बांसतीलता, अतिमुक्तकलता, कुंदलता, श्यामलता हमेशा फली-फूली विशिष्ट शोभा से युक्त रहती हैं। ये लताएं रत्नमय, चिकनी, मृदु, घिसी हुई, रज रहित, निर्मल, निष्पंक[च], निष्कलंक[छ] छवि वाली हैं। इनकी किरणें प्रसन्नता पैदा करने वाली एवं अतीव नयनाभिराम[ज] हैं। वहाँ पर स्थान-स्थान पर रत्नों के स्वस्तिक अपनी आभा को प्रसृत कर रहे हैं।

इस पद्मवरवेदिका में स्थान-स्थान पर वेदिकाओं (बैठने योग्य

(क) गवाक्ष - खिड़कियां **(ख) पद्म** - कमल **(ग) शब्दायमान** - शब्द गुञ्जित करना **(घ) आपूरित** - भरती हुई **(ङ) किन्नर, किंपुरुष, महोरग** - देवों के नाम, जाति **(च) निष्पंक** - कीचड़ रहित **(छ) निष्कलंक** - दाग रहित **(ज) नयनाभिराम** - नेत्रों को सुन्दर लगने वाले

मत्तवारणरूप स्थानों) में, वेदिका के आजू-बाजू में, दो वेदिकाओं के बीच के स्थानों में, स्तम्भों के आस-पास, स्तम्भों के ऊपरी भाग पर, दो स्तम्भों के बीच के अंतरों में, दो पाटियों को जोड़ने वाली सूचियों पर, सूचियों के मुखों पर, सूचियों के नीचे और ऊपर, दो सूचियों के अंतरों में, वेदिका के पक्षों में, पक्षों के एक देश में, दो पक्षों के अन्तराल में, बहुत सारे उत्पल-कमल, पद्म-सूर्य विकासी कमल, कुमुद-चन्द्र विकासी कमल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, श्वेत कमल, महा श्वेत कमल, शत पत्र, सहस्रपत्र आदि विविध कमल विद्यमान हैं। रत्नों से निर्मित ये कमल वर्षा में लगाने वाली बड़ी छतरियों के आकार के हैं। इस कारण इस वेदिका को पद्मवर वेदिका कहते हैं। यह वेदिका हमेशा विद्यमान रहती है[94]।

वनखण्ड का वर्णन

इस वेदिका के बाहर एक विशाल वनखण्ड है। उस वनखण्ड का चक्रवाल (गोल-विस्तार) विष्कम्भ देशोन[क] दो योजन है। उसका परिक्षेप[ख] पद्मवर वेदिका के परिक्षेप जितना है। वह वनखण्ड खूब हरा-भरा होने से तथा छाया प्रधान होने से काला है और काला ही दिखलाई देता है, उस वनखण्ड के वृक्षों के मूल बहुत दूर जमीन में भीतर गये हुए हैं। वे वृक्ष प्रशस्त[ग] कंद वाले, प्रशस्त स्कन्ध वाले, प्रशस्त छाल वाले, प्रशस्त शाखा वाले, प्रशस्त कोंपल[घ] वाले, प्रशस्त पत्र वाले, प्रशस्त फल-फूल और बीज वाले हैं। ये सब वनखण्ड[ङ] के वृक्ष समस्त दिशाओं और विदिशाओं में अपनी-अपनी शाखाओं और प्रशाखाओं द्वारा इस तरह फैले हैं कि वे देखने वाले को गोल-गोल प्रतीत होते हैं। उनके मूल स्कन्ध, छाल आदि बड़े ही मनोरम और सुहावने लगते हैं। ये वृक्ष एक-एक स्कन्ध[च] वाले हैं। इनका गोल स्कन्ध इतना विशाल है कि पुरुष भी अपनी फैलाई हुई बाहुओं में उसे ग्रहण नहीं कर सकता। इन वृक्षों के सघन पत्ते आपस में इस तरह सटे हुए हैं कि उनमें छिद्र दिखता ही नहीं है। इनके पत्ते वायु से नीचे नहीं गिरते। इनमें ईति[छ]-रोग नहीं होता। जब इन वृक्षों के पत्ते सफेद पड़ जाते हैं, सूख जाते हैं, तब ये पत्ते हवा से गिरा दिये जाते हैं और अन्यत्र डाल

(क) विष्कम्भ देशोन - चौड़ाई कुछ कम **(ख) परिक्षेप** - घेरा **(ग) प्रशस्त** - श्रेष्ठ **(घ) कोंपल** - नये पत्ते **(ङ) वनखण्ड** - एक सरीखे वृक्ष जहाँ हो वह वन और अनेक जाति के उत्तम वृक्ष जहाँ हो वह वनखण्ड **(च) स्कन्ध** - तना **(छ) ईति** - सात प्रकार का भय 1. स्वचक्र भय 2. परचक्र भय 3. अतिवृष्टि 4. अनावृष्टि 5. चूहे का भय 6. टिड्डी का भय 7. तोते का भय

दिये जाते हैं। ये पत्ते इतने सघन होते हैं कि पत्तों के झुरमुट से अंधकार हो जाता है अतएव इनके मध्य भाग नजर ही नहीं आते। दर्शकों को ये पत्ते अतीव रमणीय लगते हैं। इनके अग्र शिखर निकलने वाले पल्लवों और कोमल उज्ज्वल, कम्पित किशलयों[क] से सुशोभित हैं।

ये वृक्ष सदा फूले-फले हरे-भरे विकसित, सुगन्धित, फूलों-फलों के गुच्छों से लदे हुए, झुके हुए, मंजरियों से अलंकृत नयनाभिराम[ख] लगते हैं।

इन वृक्षों पर सदैव पक्षी चहचहाहट करते हैं। इन पर तोते, मयूर, मैना, कोयल, चक्रवाक[ग], कलहंस[घ], सारस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े अपने मधुर चहचहाहट से दूर-दूर तक के वातावरण को अभिगुञ्जित[ङ] करते रहते हैं। मधु संचय करने वाले भ्रमर और भ्रमरियों का समूह आ-आकर मधुपान[च] करके पराग पान में उन्मत्त होकर अपने मधुर गुंजारव[छ] से वृक्षों को गुंजाते रहते हैं। इन वृक्षों के पुष्प और फल इन्हीं के भीतर छिपे रहते हैं। ये वृक्ष बाहर से पत्रों और पुष्पों से आच्छादित[ज] रहते हैं। ये वृक्ष सब प्रकार के रोगों से रहित, कांटों से रहित, स्वादिष्ट फूलों सहित और मुलायम स्पर्श वाले होते हैं। इन वृक्षों के सन्निकट नाना प्रकार के गुच्छे, गुल्य और लता मण्डल सुशोभित रहते हैं। इन पर अनेक प्रकार की ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। इन वृक्षों के सिंचन के लिए चौकोर बावड़ियों में, गोल-पुष्करिणियों[झ] में लम्बी दीर्घिकाओं[ञ] में सुन्दर जल गृह बने हुए हैं। ये वृक्ष ऐसी मनोहर सुरभि फैलाते हैं कि उनकी गन्ध सूंघने वाले को अतृप्त बनाये रखती है। अनेक गाड़ियां, रथ, यान, युग्य (गोल्लदेश में प्रसिद्ध जम्पान) शिविका, स्यन्दमानिकाएं[ट], उनके नीचे अधिक छाया होने से छोड़ी जाती थी। वह वनखण्ड, सुरम्य, प्रसन्नता पैदा करने वाला, श्लक्ष्ण[ठ], स्निग्ध, घृष्ट[ड], मृष्ट[ढ], नीरज[ण], कीचड़ रहित, कान्तिमय, प्रभामय, किरणों सहित, उद्योत करने वाला, दर्शनीय, मनोज्ञ, मनोरम, मन को हरण करने वाला है।

इस वनखण्ड के अन्दर अत्यन्त रमणीय सम भूमि भाग है। वह भूमि भाग अत्यन्त समतल है।

(क) किशलय - कोमल पत्ते **(ख) नयनाभिराम** - नेत्रों को अच्छा लगने वाला **(ग) चक्रवाक** - चकवा **(घ) कलहंस** - सुन्दर हंस **(ङ) अभिगुञ्जित** - गुंजायमान **(च) मधुपान** - मीठा (शहद) पीना **(छ) गुंजारव** - आवाज **(ज) आच्छादित** - ढके हुए **(झ) पुष्करणियों** - गोलाकार बावड़ियों **(ञ) दीर्घिकाओं** - लम्बी बावड़ियों **(ट) स्यन्दमानिका** - पुरुष के लम्बाई वाली पालकी **(ठ) श्लक्ष्ण** - मनोहर, चिकना **(ड) घृष्ट** - घिसा हुआ **(ढ) मृष्ट** - घिसकर साफ किया हुआ **(ण) नीरज** - रज-रहित

तृणों और मणियों का वर्णन

वह वनखण्ड अनेक प्रकार की मणियों और लताओं के चित्रों से युक्त अतीव-अतीव शोभायमान लगता है। वे मणियाँ पंचवर्ण की हैं।

वहाँ लगी हुई पाँच रंगों की मणियों का रंग अतीव आकर्षक और नयनाभिराम है। इन मणियों से निकलने वाली सुगन्ध, अगर, तगर, केवड़ा, इलायची, चन्दन, भरवा, जूही, चम्पक, मोगरा और कपूर आदि से भी बहुत अधिक मनोज्ञ, मन एवं नाक को तृप्त करने वाली और इन्द्रियों को सुखद प्रतीत होती है।

इन मणियों का स्पर्श रूई, बूर वनस्पति, शिरोष के पुष्प, नवजात कुमुद आदि के पत्रों की राशि से भी कोमल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम और मनोहर है।

तृणों और मणियों के शब्द

उन तृणों और मणियों के शब्द मन को मंत्रमुग्ध करने वाले हैं। इसको तीन उपमानों से उपमित किया है। पहला उपमान- जैसे कोई पालखी, शिविका या संग्राम रथ, जिसमें विविध प्रकार के शस्त्र अशस्त्र सजे हुए हों, जिनके चक्रों पर लोहे की पट्टियां जड़ी हुई हों, जो श्रेष्ठ घोड़ों तथा सारथी से युक्त हों, जिसमें छत्र, ध्वजा, दोनों ओर बड़े-बड़े घण्टे हों तथा नन्दिघोष बारह प्रकार के वाद्यों का निनाद[क] हो रहा हो, ऐसा रथ या पालकी जब राजांगण[ख] में, अन्त:पुर में या मणियों से जड़े हुए आंगन में वेग से चलता है, उससे भी अधिक इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और मनोहर उन तृण और मणियों के शब्द होते हैं।

दूसरा उपमान - प्रात:काल अथवा संध्या के समय वैतालिका-मंगलपीढ़िका वीणा जो ताल के अभाव में बजाई जाती है, जब गान्धार[ग] स्वर की उत्तरमन्दा नामक सप्त भी मूर्च्छना से युक्त होती है, जब उस वीणा का कुशल वादक उस वीणा को अपनी गोद में अच्छे ढंग से स्थापित कर चन्दन के सार से निर्मित वादन दण्ड से बजाता है। तब उस वीणा से कर्ण एवं मन को तृप्त करने वाले शब्द निकलते हैं, उससे भी इष्टतर[घ] शब्द तृण एवं मणियों के होते हैं।

(क) निनाद - आवाज **(ख) राजांगण** - राजा का आंगन **(ग) गान्धार** - नाभि से उठने वाला, कण्ठ तथा शीर्ष से समाहत तथा नाना प्रकार की गन्धों को धारण करने वाला स्वर **(घ) इष्टतर** - मन को अच्छे लगने वाले

गान्धार स्वर की मूर्च्छनाएं होती हैं -

नंदीय खुट्टिमा पूरिमा सा चोत्थी असुद्धगन्धारा
उत्तरगन्धारा विहवइ सा पंचमी कुच्छा।। 1।।
सुहुमुत्तर आयामा छट्टी सा नियमसो उ बोद्धव्वा।। 2।।

नन्दी, क्षुद्रा, पूर्णा, अशुद्धगान्धारा, उत्तरगान्धारा, सूक्ष्मोत्तर आयामा और उत्तरमन्दा ये सात मूर्च्छनाएं हैं जो कि अन्य अन्य से विशिष्टतर हैं, गाने वाले और सुनने वाले को मूर्च्छित कर देती हैं। इनके विषय में कहा भी है -

अन्नन्नसरविसेसं उप्पायंतस्स मुच्छणा मणिया
कन्ता वि मुच्छिओ इव कुणए मुच्छंव सोवेति।।

गान्धार स्वर के अन्तर्गत इन सात मूर्च्छनाओं में से जब उत्तरमन्दा नामक मूर्च्छना अतिप्रकर्ष[क] को प्राप्त होती है, तब वह श्रोताओं को मूर्च्छित सा बना देती है। इतना ही नहीं गायक भी मूर्च्छित सा बन जाता है।

इस उत्तरमूर्च्छा के शब्द से भी उन तृणों और मणियों का शब्द अधिक इष्ट, कान्त, मनोज्ञ और मनोरम होता है।

तृतीय उपमान :- जैसे किन्नर[ख], किंपुरुष[ग], महोरग[घ] और गन्धर्व[ङ] जो कि भद्रशाल वन[च], नन्दन वन[छ], सौमनस वन[ज] और पण्डक वन[झ] में स्थित हो अथवा हिमवान् पर्वत, मलय पर्वत या मेरुपर्वत की गुफा में बैठे हों, एक स्थान पर एकत्रित हुए हों, एक-दूसरे के सन्मुख बैठे हों, एक-दूसरे के समीप बैठे हों, प्रमुदित और क्रीड़ा करने में निमग्न हों, गीत में जिनकी रति हो, गन्धर्व नाट्य आदि करने से जिनका मन हर्षित हो रहा हो उन गन्धर्वादि के आठ प्रकार के गेय को, रुचिकर अन्त वाले गेय को, सात स्वरों से युक्त गेय को, आठ रसों से युक्त गेय को, छह दोषों से रहित, ग्यारह अलंकारों से युक्त, आठ गुणों से युक्त, बांसुरी की सुरीली आवाज से गाये गये गेय को, राग से अनुरक्त उर-कण्ठ-शिर ऐसे त्रिस्थान शुद्ध गेय को (अर्थात् उर कण्ठ श्लेष्म वर्जित तथा शिर

(क) अतिप्रकर्ष - अति उत्कृष्ट **(ख) किन्नर** - व्यन्तर देवता की एक जाति **(ग) किंपुरुष** - व्यन्तर देवों की एक जाति **(घ) महोरग** - वाण व्यन्तर देवों की एक जाति **(ङ) गन्धर्व** - गीत-प्रिय व्यन्तर देवों की एक जाति **(च) भद्रशाल वन** - सुमेरु पर्वत पर उसके भूमिभाग पर भद्रशाल वन है **(छ) नन्दन वन** - भद्रशाल वन के भूमिभाग से 500 योजन ऊपर जाने पर आता है **(ज) सौमनस वन** - नन्दनवन के भूमिभाग से 62500 योजन ऊपर जाने पर आता है **(झ) पण्डक वन** - सौमनस वन के भूमि भाग से 36000 योजन ऊपर जाने पर आता है।

अव्याकुलित हो) मधुर, सम, सुललित, एक तरफ बांसुरी और दूसरी तरफ वीणा बजाने पर दोनों के मेल के साथ गाया गया गेय[क], तालयुक्त हाथ की तालियों से मेल खाता हुआ, लय युक्त, बांसुरी तंत्री आदि के पूर्वगहीन स्वर के अनुसार गाया जाने वाला, मनोहर, मृदु और रिभित तंत्री आदि के स्वर से मेल खाते हुए, पद संचार वाले, श्रोताओं को आनन्द देने वाले, अंगों के सुन्दर झुकाव वाले, श्रेष्ठ सुन्दर ऐसे दिव्य गीतों को गाने वाले, उन किन्नरों[ख] आदि के मुख से जो शब्द निकलते हैं, वैसे ही मधुरतम शब्द तृणों और मणियों के कम्पन से निकलते हैं।

उपर्युक्त वर्णित गेय के सन्दर्भ में इस प्रकार का वर्णन मिलता है :-

गेय के आठ प्रकार बतलाये हैं, यथा- 1. गद्य - जो स्वर संचार से गाया जाता है 2. पद्य - जो छन्दादि रूप हो 3. कथ्य - कथ्यात्मक[ग] गीत 4. पदबद्ध - जो एकाक्षरादि रूप हो यथा 'ते' 5. पादबद्ध - श्लोक का चतुर्थ भाग रूप हो 6. उत्क्षिप्त - जो पहले आरम्भ किया हुआ हो 7. प्रवर्तक - प्रथम आरम्भ से ऊपर आक्षेप पूर्वक होने वाला 8. मन्दाक - मध्य भाग में सकल मूर्च्छनादि गुणोपेत[घ] तथा मन्द मन्द स्वर से संचरित हो। यह आठ प्रकार का गेय रोचित-अवसान वाला हो अर्थात् जिस गीत का अन्त रुचिकर ढंग से शनैः शनैः होता है तथा जो सप्त स्वरों से युक्त हो। गेय के सात स्वर इस प्रकार हैं :-

सज्जे रिसह गन्धारे मज्झिमे पंचमे सरे।
धेवइ चेव नेसाए सरा सत्त वियाहिया।।

षडज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और नैषाद ये सात स्वर हैं[95]। ये सात स्वर पुरुष के या स्त्री के नाभि देश से निकलते हैं। कहा भी है - **'सत्तसरा नाभिओ।'**

आठ रस :- वह गेय शृंगार आदि आठ रसों से युक्त हो।

षट्दोष विप्रयुक्त :- छः दोष रहित गेय होना चाहिए। वे छह दोष इस प्रकार है :-

भीयं दुयमुप्पिंत्थमुत्तालं च कमसो मुणेयव्वं।
कागस्सरमणुणासं छद्दोसा होंति गेयस्स।।

भीत, द्रुत-जल्दी, उप्पिच्छ-आकुलतायुक्त, काकस्वर[ङ], अनुनास-

(क) **गेय** - गाने योग्य गीत आदि (ख) **किन्नर** - एक जाति के व्यन्तर देव (ग) **कथ्यात्मक** - कथन करने वाला (घ) **गुणोपेत** - गुणों से युक्त (ङ) **काकस्वर** - कौवे जैसा स्वर

नाक से गाना ये गेय के छह दोष हैं।

एकादश[क] गुण अलंकार :- चौदह पूर्वों के अंतर्गत स्वर - प्राभृत में गेय के ग्यारह गुणों का विस्तार से वर्णन है।

गेय के आठ गुण :-

पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहेव अविघुट्ठं।
महुरं समं सुललियं अट्ठगुणा होंति गेयस्स।।

1. पूर्ण- जो स्वर कलाओं से परिपूर्ण हो, 2. रक्त- जो राग से अनुरक्त[ख] होकर गाया जाये, 3. अलंकृत- परिवेश रूप स्वर से जो गाया जाये, 4. व्यक्त- जिसमें अक्षर और स्वर स्पष्ट रूप से गाया जाये, 5. अविघुष्ट- जो विस्वर[ग] और आक्रोशयुक्त[घ] न हो, 6. मधुर- जो मधुर स्वर से गाया जाये, 7. सम- जो ताल, वंश, स्वर आदि से मेल खाता हुआ गाया जावे, 8. सुललित- जो श्रेष्ठ घोलना प्रकार से श्रोतेन्द्रिय[ङ] को सुखद लगे वैसा गाया जाये।

उपर्युक्त विशेषणों सहित किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व प्रमुदित होकर गाते हैं तब उनसे जो शब्द निकलता है, ऐसा मनोहर शब्द उन तृणों और मणियों का होता है[96]।

बावड़ियों का वर्णन :- उस वनखण्ड के मध्यभाग में स्थान-स्थान पर बहुत सी छोटी-छोटी चौकोन बावड़ियां हैं, गोल-गोल अथवा कमल वाली पुष्करिणियां हैं, जगह-जगह पर नहरों वाली दीर्घिकाएं हैं, टेढ़ी-मेढ़ी गुञ्जालिकाएं हैं, जगह-जगह सरोवरों की पक्तियां हैं, अनेक जगह सरसर पंक्तियां जिन तालाबों में कुएं का पानी नालियों द्वारा लाया जाता है और बहुत से कुओं की पंक्तियां हैं। वे स्वच्छ और मृदु पुद्गलों से बनी हैं। इनके तीर सम हैं तथा किनारे चाँदी के बने हैं। इनके किनारों पर हीरे के पत्थर लगे हैं। इनका तला तपे हुए स्वर्ण का बना है। इनके तटवर्ती अति उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि और स्फटिक मणि के बने हैं। मक्खन के समान सुकोमल तल हैं। स्वर्ण और शुद्ध चाँदी की रेत है। ये जलाशय सुखपूर्वक प्रवेश और निकलने योग्य हैं। इनके मजबूत घाट नाना प्रकार की मणियों के बने हैं। यहाँ बने कुएँ तथा बावड़ियाँ चौकोन हैं। इनका जल नीचे नीचे गहरा है। ये अगाध शीतल जल से भरी हैं। इनमें पद्मिनी[च] के पत्ते, कन्द और पद्मनाल ये जल से ढके हैं। इनमें बहुत सारे

(क) एकादश - ग्यारह **(ख) अनुरक्त** - युक्त **(ग) विस्वर** - विकृत स्वर **(घ) आक्रोशयुक्त** - क्रोधादि से युक्त **(ङ) श्रोतेन्द्रिय** - कान **(च) पद्मिनी** - कमलिनी

कमल खिले रहते हैं और भ्रमर इनका रस पान करते रहते हैं। ये सब जलाशय स्वच्छ और निर्मल जल से भरे हैं। इनके अन्दर बहुत सारे मत्स्य[क] और कच्छप[ख] इधर-उधर घूमते रहते हैं।

इन जलाशयों पर अनेक पक्षियों के जोड़े भ्रमण करते रहते हैं। इन जलाशयों में से प्रत्येक जलाशय चहुँओर वनखण्ड से घिरे हुए हैं और प्रत्येक जलाशय पद्मवर वेदिका से युक्त है। इन जलाशयों के पानी का स्वाद, आसव, वारुण समुद्र, दूध, घी, इक्षु, अमृत और स्वाभाविक पानी जैसा है। ये सब जलाशय प्रसन्नता पैदा करने वाले, चित्ताकर्षक[ग], रमणीय और दर्शनीय हैं।

त्रिसोपान का वर्णन

इन छोटी-छोटी बावड़ियों यावत् कुओं में स्थान-स्थान पर विशिष्ट त्रिसोपान (तीन सीढ़ियां) बनी हुई हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है - उनकी नींव हीरे से बनी है, रिष्ट रत्न के पाये, वेडूर्य रत्न के स्तम्भ, सोने-चाँदी के पटिये, वज्रमय संधियाँ, लोहिताक्ष रत्नों की कीलें हैं तथा उतरने और चढ़ने के लिये आजू-बाजू मणियों के दण्ड समान आधार हैं, जिन्हें पकड़कर आसानी से उतरा-चढ़ा जा सकता है।

तोरण का वर्णन

उन विशिष्ट त्रिसोपानों के आगे प्रत्येक के तोरण बने हुए हैं। वे तोरण नाना प्रकार की मणियों से बने हुए हैं। वे तोरण नाना मणियों से बने स्तम्भों पर टिके हैं, अनेक प्रकार की रचनाओं से युक्त मोती उनके बीच-बीच में लगे हुए हैं। उन तोरणों पर नाना प्रकार के तारे स्वचित हैं। उन तोरणों में वृक[घ], घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, मृग, अष्टापद, हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्र बने हुए हैं। इन तोरणों के स्तम्भों पर हीरक की वेदिकाएं हैं, इस कारण ये तोरण बहुत ही सुन्दर लगते हैं। ये तोरण अत्यन्त दैदीप्यमान रहते हैं, जो दर्शकों का मन मंत्रमुग्ध करते रहते हैं।

इन तोरणों पर 1. स्वस्तिक 2. श्रीवत्स 3. नंदिकावर्त 4. वर्धमान 5. भद्रासन 6. कलश 7. मत्स्य और 8. दर्पण ये आठ मंगल रत्नों से

(क) मत्स्य - मछली **(ख) कच्छप** - कछुआ **(ग) चित्ताकर्षक** - चित्त को आकृष्ट करने वाले **(घ) वृक** - भेड़िया **(ङ) अभिमण्डित** - सजे हुए (घ) मृदु - कोमल

अभिमण्डित[ङ] रहते हैं।

इन तोरणों के उर्ध्व भाग में कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजाएँ लहराती रहती हैं। ये ध्वजाएँ स्वच्छ एवं मृदु[क] हैं। वज्रदण्ड के ऊपर पट्ट चाँदी का है, इन ध्वजाओं के दण्ड हीरे के हैं। इनकी गंध कमल के समान है। ये अतीव सुरम्य, सुन्दर, दर्शनीय हैं।

इन तोरणों के ऊपर एक छत्र के ऊपर दूसरा छत्र, दूसरे पर तीसरा छत्र ऐसे अनेक छत्र हैं। एक पताका पर दूसरी, दूसरी पर तीसरी पताका, इस प्रकार अनेक पताकाएं हैं। इन तोरणों पर अनेक घण्टायुगल[ख], अनेक चामर युगल[ग], अनेक रत्नमय कमलों के समूह हैं, जो सहसा दर्शकों की दृष्टि का हरण कर लेते हैं[97]।

उत्पात पर्वत आदि का वर्णन

इन बावड़ियों यावत् कुएँ की पंक्तियों में अनेक स्थानों पर बहुत से उत्पात पर्वत हैं, जहाँ व्यन्तर देव-देवियाँ आकर क्रीड़ा निमित्त उत्तर वैक्रिय की रचना करते हैं। बहुत से नियति पर्वत हैं, जहाँ वाणव्यन्तर देव देवियाँ नियत रूप से भोग भोगते हैं, जगती पर्वत है, लकड़ी के बने हुए जैसे दारू पर्वत हैं, स्फटिक के मण्डप, मंच, माले, महल हैं जो कोई तो ऊँचे, कोई छोटे, कोई छोटे-लम्बे हैं, वहाँ बहुत झूले हैं जो रत्नमय, स्वच्छ और मन को लुभावने लगते हैं। इन झूलों में बहुत से हंसासन-जिस आसन के नीचे भाग में हंस का चित्र हो, क्रौंचासन, गरुड़ासन, उन्नत आसन, प्रणत आसन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्षी आसन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिश स्वस्तिकासन हैं जो कि रत्नमय, स्वच्छ, मृदु, स्निग्ध, घृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पंक, अप्रतिहत[घ] कांतिवाले, प्रभामय, किरणों वाले, उद्योत वाले मनहर चित्ताकर्षक हैं।

उस वनखण्ड के स्थान-स्थान पर अनेक भागों में बहुत से आलिहार-आली नामक वनस्पति प्रधान घर, मालिघर- माली नामक वनस्पति प्रधान घर, कदलीघर[ङ], लताघर, ठहरने की धर्मशाला के समान हैं। वहाँ नाटकघर, स्नानघर, शृंगारघर, भौंयरे, मोहनघर, रतिक्रीड़ार्थघर, शालाघर, जालिप्रधान घर, फूल प्रधान घर, चित्र प्रधान घर, गीत-नृत्य घर, काँच प्रधान घर हैं। ये

(क) मृदु - कोमल **(ख) घण्टायुगल** - घण्टों की जोड़ी **(ग) चामर युगल** - दो चामर **(घ) अप्रतिहत** - निरन्तर **(ङ) कदलीघर** - केले से बना घर

सर्वरत्नमय, स्वच्छ और अतीव सुन्दर हैं। इन सभी घरों में हंसासन यावत् दिशास्वास्तिक आसन रखे हुए हैं जो सर्व रत्नमय यावत् बहुत सुन्दर हैं।

उस वनखण्ड में स्थान-स्थान पर चमेली के फूल से लगे मंडप-कुंज, जूही मण्डप, मल्लिका मण्डप, नवमालिका मण्डप, वासन्तीलता मण्डप, दधिवासुका नामक वनस्पति के मण्डप, सूरिल्ली नामक वनस्पति के मण्डप, नागवल्ली के मण्डप, द्राक्षा मण्डप[क], नागलता मण्डप, अतिमुक्तक मण्डप, अप्फोया वनस्पति विशेष के मण्डप, मालुका मण्डप (एक गुठली वाले फलों के वृक्ष) और श्यामलता मण्डप हैं। ये नित्य कुसुमित[ख], मुकुलित[ग], पल्लवित रहते हैं। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ, अतीव दर्शनीय हैं।

इन मण्डपों में बहुत से पृथ्वी शिलापट्टक हैं, जो कि हंसासन-हंस के समान आकृति वाले, क्रौंचासन, गरूड़ासन, उन्नतासन[घ], प्रणतासन[ङ], भद्रासन, दीर्घासन[च], पक्ष्यासन[छ], मकरासन[ज], वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन, दिक्स्वस्तिकासन के समान आकृति वाले हैं। वहाँ अनेक शिलापट्टक चिह्न, नाम, शयन तथा उपासन के नाम वाले हैं अर्थात् इन्हीं के समान आकृति वाले हैं। उनका स्पर्श रूई, बूर नामक वनस्पति, मक्खन, हँसतूल के समान मुलायम मृदु है। वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ और सुन्दर हैं।

वहाँ बहुत से भवनपति देव-देवियाँ सुखपूर्वक विश्राम करते हैं, लेटते हैं, खड़े रहते हैं, बैठते हैं, करवट लेते हैं, रमण करते हैं, इच्छानुसार आचरण करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, रतिक्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार वे देव और देवियाँ पूर्वभव में किये हुए धर्मानुष्ठानों का, तपश्चरण आदि शुभ पराक्रमों का, अच्छे और कल्याणकारी कर्मों के फल विपाक का अनुभव करते हुए विचरण करते हैं[98]।

तिगिंच्छकूट पर्वत

इस प्रकार वह तिंगिच्छकूट पर्वत एक पद्मवर वेदिका एवं वनखण्ड से घिरा हुआ है। इस तिंगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत का ऊपरी भाग बहुत ही सम एवं रमणीय है। उस अत्यन्त सम एवं रमणीय ऊपरी भूमि भाग के ठीक बीचों

(क) द्राक्षा मण्डप - किसमिस से बना मण्डप **(ख) कुसुमित** - फूलों से युक्त **(ग) मुकुलित** - खिली हुई **(घ) उन्नतासन** - ऊँचा आसन **(ङ) प्रणतासन** - झुका हुआ आसन **(च) दीर्घासन** - बड़ा आसन **(छ) पक्ष्यासन** - पक्षी की आकृति का आसन **(ज) मकरासन** - मगर की आकृति का आसन

बीच एक महान प्रसादावतंसक श्रेष्ठ महल है। उसकी ऊँचाई 250 योजन है और उसका विष्कम्भ[क] 125 योजन है। यह सर्वश्रेष्ठ प्रासाद बादलों की तरह ऊँचा और अपनी चमक-दमक के कारण हँसता हुआ सा प्रतीत होता है। वह प्रासाद[ख] कान्ति से श्वेत और प्रभासित है। मणि, स्वर्ण और रत्नों की कारीगरी से विचित्र है। उसका ऊपरी भाग सुन्दर है, उस पर हाथी, घोड़े, बैल आदि के चित्र हैं[99]।

भवनद्वार के थोकड़े में इस महल का वर्णन इस प्रकार भी मिलता है :-

यह महल 33 मंजिला है। यह महल स्वच्छ, सुहाला, मनोहर, घिसकर सुन्दर बना हुआ, साफ किया हुआ, रज रहित[ग], निर्मल, कीचड़ रहित, चिक्कण[घ] छाया सहित, निरावरण कान्ति वाला, प्रकाश युक्त, शोभा सहित, लक्ष्मीयुक्त, उद्योतकारी, चित्त को प्रसन्न करने वाला, देखने योग्य, अत्यन्त रूपवान्, रूप के प्रतिबिम्ब सहित है। उस महल के 33 मंजिलों में एक-एक भद्रासन है। बीच के खण्ड में परिवार सहित सिंहासन है। जब भवनपति देव मनुष्य लोक में आते हैं तो यहाँ पर उत्तरवैक्रिय रूप बनाकर आते हैं[100]।

इस प्रासाद के सबसे ऊपर की भूमि पर अट्टालिका है, वहाँ आठ योजन की मणिपीठिका है। इस प्रासाद के ठीक मध्य भाग में असुरेन्द्र असुरराज चमर का सिंहासन है। इस सिंहासन के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में तथा उत्तर पूर्व में चमरेन्द्र के 64 हजार सामानिक देवों के 64 हजार भद्रासन हैं। पूर्व में पाँच पटरानियों के 5 भद्रासन सपरिवार हैं। दक्षिण पूर्व में आभ्यन्तर परिषद के 24 हजार देवों के 24 हजार, दक्षिण में मध्यम परिषद के 28 हजार देवों के 28 हजार और दक्षिण-पश्चिम में बाह्य परिषद के 32 हजार देवों के 32 हजार भद्रासन हैं। पश्चिम में 7 सेनाधिपतियों के सात और चारों दिशाओं में आत्मरक्षक देवों के 64-64 हजार भद्रासन हैं[101]।

चमरचंचा राजधानी

उस तिंगिच्छकूट के दक्षिण की ओर अरुणोदय समुद्र में छह सौ पचपन करोड, पैंतीस लाख, पचास हजार योजन तिरछा जाने के बाद नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी[ङ] का 40 हजार योजन भाग अवगाहन करने पर यहाँ असुरराज असुरेन्द्र चमर की चमरचंचा नामक राजधानी है। उस राजधानी का आयाम एवं

(क) विष्कम्भ - चौड़ाई **(ख) प्रासाद** - महल **(ग) रज-रहित** - धूल रहित **(घ) चिक्कण** - स्निग्ध, चिकना **(ङ) रत्नप्रभा पृथ्वी** - पहली नरक

विष्कम्य (लम्बाई और चौड़ाई) एक लाख योजन है। वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है। उसका प्राकार-कोट 150 योजन ऊँचा है। उसके मूल का विष्कम्य 50 योजन है। उसके ऊपरी भाग का विष्कम्य साढ़े तेरह योजन है। उसके कंगूरों की लम्बाई आधा योजन और विष्कम्य एक कोस है। कंगूरों की ऊँचाई आधे योजन से कुछ कम है। उसकी एक-एक भुजा में पाँच-पाँच सौ दरवाजे हैं। उसकी ऊँचाई 250 योजन है। राजधानी के मध्य भाग में ऊपरी तल (चबूतरे) की लम्बाई-चौड़ाई 16 हजार योजन है। उसका घेरा 50597 योजन से कुछ विशेष-ऊन[क] है[102]।

इस प्रकार उसके ऊपर 341 महलों का झूमका है। बीच में इन्द्र का महल है। वह महल 250 योजन ऊँचा है। 125 योजन चौड़ा है। इसके चारों तरफ चार महल हैं। वे महल 125 योजन ऊँचे और 62.5 योजन चौड़े हैं। उनके चारों तरफ 16 महल हैं। वे लम्बाई और चौड़ाई में उनसे आधे परिमाण वाले हैं। इस प्रकार उनके चारों तरफ 64 महल हैं, उनसे आधे परिमाण वाले हैं। उनके चारों तरफ 256 महल हैं, उनसे आधे परिमाण वाले हैं। इस प्रकार 341 महल का झूमका है, बीच में इन्द्र का महल है। आसपास दूसरे देवों के महल हैं। वहाँ बाग, बगीचा, तालाब, कुआँ, सरोवर, पुष्करिणी[ख], सिद्धायतन ध्वजा पताका, तोरण, स्तम्भ आदि हैं। वहाँ भवनपति देव पाँच इन्द्रियों के सुख एवं पूर्व पुण्य को भोगते हैं।

चमरचंचा राजधानी से नेऋत्य कोण में 655 करोड़ 35 लाख 50 हजार योजन आगे जाने पर चमरेन्द्र जी का आवास आता है। वह आवास चौरासी हजार योजन लम्बा चौड़ा है। अवशिष्ट समस्त वर्णन चमरचंचा राजधानी जैसा है, किंतु फर्क इतना है कि वहाँ पाँच सभा नहीं है।

भवनपति देवों के भवन और आवासों में यह अंतर है कि भवन बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है।

शरीर प्रमाण बड़े मणि तथा रत्नों के दीपकों से चारों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले मंडप आवास कहलाते हैं। भवनपति देव भवनों में रहते हैं। उनके क्रीड़ा करने के स्थानों को आवास कहते हैं। उनमें वे जाते हैं, उठते-बैठते हैं, क्रीड़ा करते हैं।

(क) विशेष-ऊन - कुछ कम **(ख) पुष्करिणी** - बावड़ी

नैऋत्य कोण की तरह चारों कोनों में चार आवास हैं। वे चारों आवास चम्पक वन, अशोक वन, सप्तपर्ण वन और आम्र वन से घिरे हैं।

अहो भगवन्! वे आवास क्यों कहलाते हैं?

हे गौतम! जैसे कोई मनुष्य बगीचे में जाता है, वहाँ बैठता है, उठता है, क्रीड़ा कल्लोल करता है, किंतु वहाँ निवास नहीं करता, इसी तरह चमरेन्द्र जी आदि देव वहाँ जाते हैं, बैठते हैं, उठते हैं, क्रीड़ा कल्लोल आदि करते हैं, किंतु वहाँ निवास नहीं करते। वे अपनी राजधानी में रहते हैं।

अब राजधानी का विशेष वर्णन किया जाता है- राजधानी के बीच में 16 हजार योजन का एक चबूतरा है, उसके ऊपर 341 महलों का झूमका है। वहाँ पाँच सभा है, यथा-

1. सुधर्मा सभा 2. उपपात सभा 3. अलंकार सभा 4. अभिषेक सभा 5. व्यवसाय सभा

सुधर्मा सभा उत्तरपूर्व में है। सुधर्मा सभा के तीन दरवाजे हैं- पूर्व, पश्चिम और उत्तर में। उसके आगे एक मुख्य मण्डप है। सुधर्मा सभा के चारों दिशाओं में छह-छह हजार छोटे चबूतरे हैं। वहाँ माणवक स्तम्भ हैं, वह 36 हजार योजन ऊँचा है। सुधर्मा सभा में सिंहासन है। माणवक स्तम्भ से पश्चिम दिशा में एक बड़ी देव शय्या है। उस देव शय्या से ईशान कोण में महेन्द्र ध्वजा है। महेन्द्र ध्वजा से पश्चिम दिशा में चौपाल आयुधशाला है। परिवार सहित सिंहासन है[103]।

उपपात सभा में उत्पन्न होने की शय्या है। वहाँ तत्काल उत्पन्न हुए इन्द्र को यह संकल्प उत्पन्न होता है कि मुझे पहले क्या और पीछे क्या करना है? मेरा जीताचार क्या है?

अलंकार सभा में राज महोत्सव की सामग्री है। यहाँ इन्द्र को वस्त्राभूषणों से अलंकृत[क] किया जाता है। अभिषेक सभा में इन्द्र का राज महोत्सव अभिषेक किया जाता है। यह अभिषेक सामानिक देवों द्वारा बड़ी ऋद्धि से किया जाता है। व्यवसाय सभा में पुस्तक रत्न है। यहाँ पुस्तक का वाचन किया जाता है।

सिद्धायतन में सिद्ध भगवन के गुणों का स्मरण तथा भाव वन्दन-पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् सामानिक देव अपने परिवार सहित चमरेन्द्र

(क) अलंकृत - सजाया

की सुधर्मा सभा में आते हैं। ईशान कोण में चमरेन्द्र जी का सिंहासन है। इस प्रकार इनका समग्र प्रमाण वैमानिकों से आधा समझना चाहिए[104]।

इस प्रकार चमरेन्द्र जी की ऋद्धि का वर्णन मिलता है। ऐसे ऋद्धि सम्पन्न चमरेन्द्र जी के विषय में अग्निभूति जी की पृच्छा है -

अग्निभूति जी :- भंते! असुरेन्द्र चमर की वैक्रिय[क] करके कितना क्षेत्र भरने की शक्ति है।

भगवान[105] :- जैसे जवान पुरुष जवान स्त्री के हाथ को मजबूती से अंतर रहित पकड़ता है, जैसे गाड़ी के पहिए की धुरी आरों से युक्त होती है, इसी तरह देवता और देवों के वैक्रिय[106] रूपों को करके दक्षिण-दिशा के चमरेन्द्र जी सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर सकते हैं[107]। इसके आगे और तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं।

अग्निभूति जी :- भगवन्! असुरेन्द्र चमर के सामानिक और त्रायस्त्रिंशक देवों के वैक्रिय करने की कितनी शक्ति है?

भगवान :- असुरेन्द्र चमर जितनी।

अग्निभूति जी :- भगवन्! असुरेन्द्र चमर के लोकपाल[ख] और अग्र महिषी[ग] के वैक्रिय करने की कितनी शक्ति है?

भगवान :- उनके वैक्रिय करने की शक्ति भी असुरेन्द्र चमर जितनी है। लेकिन तिरछा संख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं।

इस प्रकार प्रभु द्वारा फरमाये जाने पर श्री अग्निभूति गौतम ने कहा- हे भगवान! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। इस प्रकार कहकर वे श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार[108] करते हैं और वन्दन नमस्कार करके जहाँ तृतीय गौतम - वायुभूति अणगार थे, वहाँ आये और उनके समीपस्थक[घ] पहुँचकर कहने लगे- वायुभूति गौतम! असुरराज चमर महाऋद्धिशाली है। मैंने भगवान से आज जाना कि असुरराज चमर और उसके सामानिक देवों आदि की ऋद्धि बहुत है, इस प्रकार कहते कहते अग्निभूति जी ने असुरराज चमर का समग्र वृत्तान्त जैसा भगवान महावीर से श्रवण किया, वैसा सुना दिया।

(क) वैक्रिय - उत्तर वैक्रिय **(ख) लोकपाल** - दिशा-रक्षक **(ग) अग्र महिषी** - पट्टरानी देवी
(घ) समीपस्थ - पास में

वायुभूति जी का समाधान और क्षमायाचना

इस वृत्तान्त को श्रवण करके वायुभूति को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने मन में चिन्तन किया कि भगवान के समीप जाकर पूछूं कि क्या यह बात सत्य है? ऐसा चिन्तन करके वे तुरन्त वहाँ से उठे और जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ पर आये। भगवान को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछने लगे- भगवन्! द्वितीय[109] गौतम अग्निभूति अणगार ने मुझसे इस प्रकार कहा कि असुरराज चमर इतनी ऋद्धिवाला है, तो उनका यह कथन सत्य है?

भगवान :- हाँ वायुभूते! उनका कथन सत्य है।

वायुभूति गणधर :- हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। यों कहकर वायुभूति अणगार ने श्रमण महावीर को वन्दन नमस्कार किया और जहाँ अग्निभूति अणगार थे, वहाँ आये। आकर अग्निभूति अणगार को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके कहने लगे- आपने असुरराज चमर की ऋद्धि का जो वर्णन फरमाया था, वह एकदम यथार्थ था। परिपूर्ण सत्य था, लेकिन मैंने... उस समय आपके यथार्थ कथन पर भी विश्वास नहीं किया, आपकी बात पर श्रद्धा नहीं की, इस कारण भगवन्! मैं आपसे बारम्बार क्षमायाचना करता हूँ। इस प्रकार वे विनयपूर्वक क्षमायाचना करते हैं।

विनयवान साधक यथार्थ को स्वीकार करने में तनिक मात्र भी संकोच नहीं करता। वह अपनी भूल को स्वीकार करके भूल सुधार का प्रयास करता है। भूल को स्वीकारने वाला महान बन जाता है तो भूल को भूलने वाला शैतान बन जाता है। अपनी गलती को स्वीकारना मोक्ष मार्ग है और गलती को छिपाना संसार-सागर के गोते लगाने का मार्ग है। एक-एक गलती भी स्वीकार करते चले जायें तो जीवन गुणों की माला बन सकता है। गलती को स्वीकार करें ही कैसे? क्योंकि गलती दिखलाई नहीं देती। गलती को देखने के लिए भी विनय और विवेक की आँख चाहिए। जहाँ विनय समाप्त हो जाता है, विवेक पलायन[क] कर जाता है, वहाँ स्वयं की भूल नजर ही नहीं आती और ये भूल, शूल बनकर जीवन को कंटकाकीर्ण[ख] बना देती है। परिवार को तहस नहस कर देती है। प्रेम को कटुता में बदल देती है। गणधर वायुभूति का यह प्रसंग कितना प्रेरणास्पद है

(क) पलायन - भागना **(ख) कंटकाकीर्ण** - कांटों से युक्त

कि उन्होंने अपनी भूल के लिए तुरन्त क्षमायाचना कर ली। काश! ऐसा ही विनय जीवन में आ जाये तो मोक्ष रूपी मंजिल दूर न होगी।

क्षमायाचना का पावन प्रसंग चल रहा है। वायुभूति जी विनयावनत[क] होकर क्षमायाचना करते हैं। अब मन में और कुछ जिज्ञासाएँ प्रादुर्भूत[ख] हुई और अग्निभूति जी के साथ वायुभूति जी भी भगवान महावीर के पास पधार जाते हैं। अब वायुभूति जी अणगार भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करते हैं, वन्दन नमस्कार करके पृच्छा करते हैं- भगवन्! यदि असुरराज चमर इतनी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा शक्ति[ग] से सम्पन्न है, तब हे भगवन्! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि कितनी ऋद्धि वाला है, यावत् वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है[110]?

वायुभूति जी और अग्निभूति जी की जिज्ञासाएँ और समाधान भवनपति देवों सम्बन्धी

भगवान :- वायुभूति गौतम! वैरोचनराज बलि चमरेन्द्र की तरह महान् ऋद्धिशाली है। वह जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन में उत्तर दिशा के असुर कुमार देवों के तीस लाख भवनावास हैं, इन्हीं में वैरोचन राजा बलि निवास करता है। (इनका समग्र वर्णन पूर्ववत् चमरेन्द्र जी की तरह है) ये वैरोचनराज वहाँ पर तीस लाख भवनावासों का, साठ हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, दो लाख चालीस हजार आत्म रक्षक देवों का तथा और बहुत से उत्तर दिशा के असुर कुमार देवों और देवियों का आधिपत्य और अग्रसेरत्व करता हुआ विचरण करता है[111]।

भगवन्! वैरोचनेन्द्र[XXVIII] वैरोचनराज बलि की सुधर्मा सभा कहाँ है?

गौतम! जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्र का उल्लंघन करने पर जैसे चमरेन्द्र की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ

(क) विनयावनत - विनय से झुककर **(ख) प्रादुर्भूत** - पैदा होना **(ग) विकुर्वणा शक्ति** - वैक्रिय करने की शक्ति

भी कहना यावत् अरुणवर द्वीप की बाह्य वेदिका से अरुणवर द्वीप समुद्र में बयालीस हजार योजन अवगाहन करने के बाद वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज बलि का रूचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत है। वह उत्पात पर्वत 1721 योजन ऊँचा है। उसका शेष सभी परिमाण तिंगिच्छकूट पर्वत के समान जानना चाहिए।

तिंगिच्छकूट पर्वत पर स्थित प्रासादावतंसकों[क] का जो परिमाण कहा गया है, वही परिमाण रूचकेन्द्र उत्पात पर्वत स्थित प्रासादावतंसकों का है। प्रासादावतंसकों के मध्य भाग में बलीन्द्र के सिंहासन तथा उसके परिवार के सिंहासनों का वर्णन भी चमरेन्द्र से सम्बन्धित सिंहासनों के समान जानना चाहिए। विशेष अंतर यह है कि बलीन्द्र के सामानिक देवों के सिंहासन साठ हजार हैं, जबकि चमरेन्द्र के सामानिक देवों के सिंहासन 64 हजार हैं तथा आत्मरक्षक देवों के आसन प्रत्येक के सामानिकों के सिंहासनों से चौगुने हैं। जिस प्रकार तिगिंच्छकूट में तिगिंच्छरत्नों की प्रभा वाले उत्पलादि[ख] होने से उसका अन्वर्थक[ग] नाम तिंगिच्छकूट है, उसी प्रकार रूचकेन्द्र में रूचकेन्द्र रत्नों की प्रभा वाले कमलादि होने के कारण उसका अन्वर्थक नाम रूचकेन्द्रकूट कहा है। शेष सभी उसी प्रकार हैं, यावत् वह बलिचंचा राजधानी तथा अन्यों का नित्य आधिपत्य करता हुआ विचरता है। उस रूचकेन्द्र उत्पात पर्वत के उत्तर से छह सौ पचपन करोड़ पैंतालीस लाख पचास हजार योजन तिरछा[घ] जाने पर नीचे रत्न प्रभा पृथ्वी में पूर्ववत् यावत् चालीस हजार योजन जाने के पश्चात् वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज[ङ] बलि की बलिचंचा नामक राजधानी है। उस राजधानी का विष्कम्भ विस्तार एक लाख योजन का है।

बलिचंचा राजधानी का परिमाण कहने के पश्चात् उसके प्राकार[च], द्वार, उपकारिका लयन (द्वार के ऊपर के गृह) प्रासादावतंसक सुधर्मा सभा,

---

(क) प्रासादावतंसक - श्रेष्ठ महल **(ख) उत्पलादि** - नीलकमल आदि **(ग) अन्वर्थक** - सार्थक **(घ) तिरछा** - सीधा **(ङ) वैरोचनराज** - दाक्षिणात्य असुर-कुमारों की अपेक्षा उत्तर दिशावर्ती असुर-कुमारों का रोचन-दीपन कांति अधिक विशिष्ट होती है, इसलिए ये देव वैरोचन कहलाते हैं। वैरोचनों का इन्द्र वैरोचनेन्द्र कहलाता है। इन देवों के निवास, उपपात पर्वत इनके इन्द्र तथा अधीनस्थ देव वर्ग वैरोचननेन्द्र की पाँच आदि सबका वर्णन स्थानांग सूत्र दशम स्थान में है। बलि वैरोचनराज की पाँच अग्र महिषियाँ हैं, शुम्भा, निशुम्भा, रंभा, निरंभा और मदना। इनका वर्णन प्राय: चमरेन्द्र की तरह है। इनकी विकुर्वणा शक्ति सातिरेक जम्बूद्वीप की है क्योंकि औदिच्य इन्द्र होने से चमरेन्द्र की अपेक्षा वैरोचनराज बलि की लब्धि विशिष्टतर होती है। **(च) प्राकार** - परकोटा

सिद्धायतन[क], उपपात सभा[ख], ह्रद[ग], अभिषेक सभा[घ], अलंकारिक सभा[ङ] और व्यवसाय सभा[च] आदि का स्वरूप और प्रमाण नलिपीठ के वर्णन तक कहना चाहिए। उपपात से लेकर यावत् आत्मरक्षक तक सभी बातें पूर्ववत् कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि वैरोचनेन्द्र बलि की स्थिति सागरोपम से कुछ अधिक की है। अवशिष्ट वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए[112]।

इन बलीन्द्र जी की तीन प्रकार की परिषद् हैं :-

1. शमिता 2. चण्डा और 3. जाया। इनकी आभ्यन्तर परिषद में 20 हजार देव हैं। मध्यम परिषद में 24 हजार देव हैं और बाह्य परिषद में 28 हजार देव हैं। इन देवों की स्थिति क्रमशः 3½ जीन पल्योपम, 3 पल्योपम और 2½ पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद में 450 देवियाँ हैं, इनकी स्थिति 2½ पल्योपम की है। मध्यम परिषद में 400 देवियाँ हैं, इनकी स्थिति 2 पल्योपम की है। बाह्य परिषद में 350 देवियाँ हैं, इनकी स्थिति 1½ पल्योपम की है। इनके चार लोकपाल, 33 त्रायस्त्रिंशक देव, 7 अनीका[छ] है। एक-एक अनीका में 76 लाख 20 हजार देव हैं। बलीन्द्र जी के पाँच अग्र महिषियाँ हैं। एक-एक अग्रमहिषी के आठ-आठ हजार देवियों का परिवार है। एक-एक देवी आठ हजार रूप वैक्रिय कर सकती है[113]।

उस वैरोचनराजा बलि की विकुर्वणा शक्ति भी बहुत है, चमरेन्द्र की तरह है, बस विशेषता इतनी है कि बलि अपनी विकुर्वणा शक्ति[ज] से सातिरेक[झ] सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर देता है।

वायुभूति गौतम :- भगवन! वैरोचनेन्द्र बलि के सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल तथा अग्रमहिषियों की ऋद्धि तथा विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! बलि के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल एवं अग्र महिषियों की ऋद्धि एवं विकुर्वणा शक्ति चमरेन्द्र के सामानिक देवों की तरह जानना चाहिए, बस विशेषता इतनी है कि इनकी विकुर्वणा शक्ति सातिरेक जम्बूद्वीप को भरने की है[114], ये इनकी शक्ति मात्र है, लेकिन ऐसा

(क) सिद्धायतन - जहाँ प्रतिमाएं होती हैं **(ख) उपपात सभा** - उत्पन्न होने का स्थान **(ग) ह्रद** - तालाब **(घ) अभिषेक सभा** - अभिषेक करने का स्थान **(ङ) अलंकारिक सभा** - वस्त्राभूषण पहनने का स्थान **(च) व्यवसाय सभा** - पुस्तक-रत्न रखने एवं पढ़ने का स्थान **(छ) अनीका** - सेना **(ज) विकुर्वणा शक्ति** - वैक्रिय करने की शक्ति **(झ) सातिरेक** - कुछ अधिक

प्रयोग कभी होता नहीं है।

तत्पश्चात् वायुभूति जी की पृच्छा होने पर अग्निभूति जी के मन में जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई, तब उन्होंने भगवान को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार की पृच्छा की।

भगवन्! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराजा बलि इस प्रकार की ऋद्धिवाला है तो भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागराज धरण कितनी बड़ी ऋद्धिवाला है? यावत् कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है।

भगवान :- गौतम! जम्बूद्वीप के सुमेरु पर्वत के दक्षिण में एक लाख अस्सी हजार मोटी रत्नप्रभा[क] के एक हजार योजन ऊपर तथा एक हजार योजन नीचे छोड़कर मध्य के एक लाख अठहत्तर हजार योजन में दक्षिणात्य[ख] नागकुमार देवों के 44 लाख भवन हैं। ये भवन बाहर से गोल तथा भीतर से चौरस अतीव सुन्दर हैं। इन्हीं भवनों में दक्षिणायत्य नागकुमार देव रहते हैं, इनका समग्र वर्णन असुर कुमारों के भवनों की तरह ही है। इन्हीं भवनों में नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज धरणेन्द्र निवास करता है, जिसका वर्णन चमरेन्द्रवत् जानना चाहिए। वह धरणेन्द्र[XXIX] वहाँ पर 44 लाख भवनों का, छह हजार सामानिक[ग] देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक[घ] देवों का, चार लोकपालों[ङ] का, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों[च] का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चौबीस हजार आत्मरक्षक देवों का अन्य बहुत से दाक्षिणात्य नागकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य, अग्रसेरत्व करता हुआ विचरण करता है[115]।

उसकी विकुर्वणा शक्ति सम्पूर्ण जम्बूद्वीप और तिरछा संख्यात द्वीप समुद्र भरने की है। यह धरणेन्द्र[छ] की शक्ति मात्र है[116]।

अग्निभूति जी :- भगवन्! दक्षिणाय 3 सुपर्ण कुमारों के इन्द्र- वेणु देवेन्द्र,

---

(क) रत्नप्रभा - प्रथम नारकी **(ख) दक्षिणात्य** - दक्षिण दिशावासी **(ग) सामानिक** - इन्द्र के समान ऋद्धि वाले किंतु इन्द्रपदवी से रहित **(घ) त्रायस्त्रिंशक** - इन्द्र के पूज्य स्थानीय देव **(ङ) लोकपाल** - सीमा रक्षक **(च) अग्रमहिषियों** - प्रधान पट्टरानी देवियों **(छ) धरणेन्द्र** - दाक्षिणात्य नागकुमारों के इन्द्र हैं। इनके निवास लोकपालों का उपपात पर्वत, सात सेनाओं, सात सेनाधिपतियों एवं छह अग्रमहिषियों का वर्णन स्थानांग/प्रज्ञापना में है। नागकुमारेन्द्र धरण की छह अग्रमहिषियों के नाम इस प्रकार हैं - अल्ला, शक्रा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, धन विद्युता।

4 विद्युत्कुमारों के इन्द्र हरिकान्त, 5 अग्निकुमारों के इन्द्र अग्निसिंह (अग्निशिख), 6 द्वीपकुमारों के इन्द्र पूर्णेन्द्र, 7 उदधिकुमारों के इन्द्र जलकान्त, 8 दिशाकुमारों के इन्द्र अभित, 9 वायुकुमारों के इन्द्र वैलम्ब तथा 10 स्तनित कुमारों के इन्द्र घोष कितनी बड़ी ऋद्धिवाले हैं, यावत् कितनी विकुर्वणा कर सकते हैं?

भगवान :- गौतम! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में दाक्षिणात्य सुपर्ण कुमारों के अड़तीस लाख, वायु कुमारों के 50 लाख, द्वीप कुमार से लेकर स्तनिक कुमारों के प्रत्येक के 40-40 लाख भवनावास हैं। जिनका समग्र वर्णन असुरकुमारवत् है। वहाँ पर इनके इन्द्र भी अपने-अपने भवनावासों में रहते हैं। ये वेणुदेवेन्द्र से लेकर घोषइन्द्र अपने 6-6 हजार सामानिक देवों, 24-24 हजार आत्मरक्षक देवों, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों और छह-छह अग्रमहिषियों तथा अन्य बहुत से अपने अपने निकाय के सुपर्ण कुमार यावत् स्तनिक कुमार देव और देवियों का आधिपत्य यावत् अग्रेसरत्व करते हुए रहते हैं। इन सबकी विकुर्वणा शक्ति नागकुमारेन्द्र की तरह कहना चाहिए[117]।

बस इतनी विशेषता जाननी चाहिए कि सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते हैं, नागकुमारों और उदधिकुमारों का रंग शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनित कुमार कसौटी पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्ण रेखा के समान गौरवर्ण के होते हैं।

विद्युतकुमार, अग्निकुमार और द्वीप कुमार तपे हुए सोने के समान किञ्चित रक्त वर्ण के होते हैं। वायुकुमार श्याम प्रियंगु वर्ण के होते हैं।

मुकुट में चिह्न :- असुर कुमार के मुकुट में चूड़ामणि-रत्नमणि का, नागकुमार के मुकुट में फणिधर सर्प का, सुवर्ण कुमार के मुकुट में गरुड़ का, विद्युत्कुमार के मुकुट में शक्रायध का, अग्निकुमार के मुकुट में पूर्ण कलश का, द्वीपकुमार के मुकुट में सिंह का, उदधिकुमार के मुकुट में अश्व का, दिशाकुमार के मुकुट में हाथी का, पवनकुमार के मुकुट में मगरमच्छ का, स्तनित कुमार के मुकुट में शराव[xxx] सम्पुट का चिह्न है[118]।

भगवान द्वारा दाक्षिणात्य भवनवासी इन्द्रों की ऋद्धि का प्रतिपादन करने पर वायुभूति जी के मन में जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई, उन्होंने भगवान को

वन्दन नमस्कार करके पूछा- भगवन्! भवनपतियों के उत्तर दिशावर्ती, 2. नागकुमारों के इन्द्र- भूतानन्द, 3. सुपर्ण कुमारों के इन्द्र- वेणुदालि, 4. विद्युत्कुमारों के इन्द्र- हरिस्सह, 5. अग्निकुमारों के इन्द्र- अग्निमाणव, 6. द्वीपकुमारों के इन्द्र- वशिष्ठ, 7. उदधिकुमारों के इन्द्र- जलप्रभ, 8. दिशाकुमारों के इन्द्र- अमितवाहन, 9. वायुकुमारों के इन्द्र- प्रभंजन, 10. स्तनित कुमारों के इन्द्र- महाघोष ये सभी कितने ऋद्धिशाली हैं? इनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! (वायुभूते!) जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में एक लाख अठहत्तर हजार योजन रत्नप्रभा[क] के मध्य में, 2. नागकुमारों के चालीस लाख, 3. सुवर्णकुमारों के 34 लाख, 4. वायुकुमारों के 46 लाख तथा द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, उदधिकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनित कुमारों और अग्निकुमारों के प्रत्येक के 36-36 लाख भवन हैं। इनमें बहुत से भवनवासी देव-देवियाँ तथा इनके इन्द्र भी रहते हैं।

ये सभी इन्द्र 6-6 हजार सामानिक देवों तथा 24-24 हजार आत्मरक्षक देवों का, तैंतीस तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, 4-4 लोकपालों का, 6-6 अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का आधिपत्य यावत् अग्रेसरत्व करते हुए विचरण करते हैं। इन सभी इन्द्रों का समस्त वर्णन चमरेन्द्र जी की तरह है।

ये सभी विकुर्वणा द्वारा एक जम्बूद्वीप भर सकते हैं, तिरछा संख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं इत्यादि समग्रवर्णन पूर्ववत् है[119]।

विशेष इन शेष 18 इन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव हैं। चौबीस-चौबीस हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन-तीन प्रकार की परिषद है। दक्षिण दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तर-परिषद में साठ-साठ हजार देव हैं। मध्यम परिषद में 70-70 हजार देव हैं और बाह्य परिषद में 80-80 हजार देव हैं। आभ्यन्तर परिषद में 175 देवियाँ हैं, मध्यम परिषद में 150 देवियाँ हैं तथा बाह्य परिषद में 125 देवियाँ हैं।

आभ्यन्तर परिषद के देवों की स्थिति आधा पल्योपम झाझेरी है। मध्यम परिषद के देवों की स्थिति आधा पल्योपम झाझेरी है। बाह्य परिषद

(क) रत्नप्रभा - प्रथम नारकी

के देवों की स्थिति आधा पल्योपम से कुछ कम है। आभ्यन्तर परिषद के देवियों की स्थिति आधा पल्योपम से कुछ कम है। मध्यम परिषद के देवियों की स्थिति पाव पल्योपम झाझेरी है। बाह्य परिषद के देवियों की स्थिति पाव (¼) पल्योपम झाझेरी है।

एक-एक इन्द्र के छह-छह अग्र महिषियाँ हैं। एक-एक अग्रमहिषी के छह-छह हजार देवियों का परिवार है। एक-एक देवी छह-छह हजार रूप वैक्रिय कर सकती है। चार लोकपाल हैं। 33 त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका हैं। एक-एक अनीका में 35 लाख 56 हजार देव हैं।

उत्तर दिशा में नौ इन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव हैं। 24-24 हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन-तीन प्रकार की परिषद है। आभ्यन्तर परिषद में 50 हजार देव व ¾ पाल्योपम की स्थिति है। मध्यम परिषद में 60 हजार देव व ¾ पल्योपम झाझेरी[क] की स्थिति है। बाह्य परिषद में 70 हजार देव व आधा पल्योपम झाझेरी स्थिति है। आभ्यन्तर परिषद में 225 देवियाँ हैं व आधा पल्योपम झाझेरी स्थिति है। मध्यम परिषद में 200 देवियाँ हैं व आधा पल्योपम स्थिति है। बाह्य परिषद में 175 देवियाँ हैं व आधा पल्योपम माहेरी (कुछ कम) स्थिति है। चार लोकपाल देव हैं। 33 त्रायस्त्रिंशक देव हैं। सात अनीका[ख] हैं। एक-एक अनीका में 35 लाख 46 हजार देव हैं[120]।

अग्निभूति और वायुभूति के व्यन्तर-वाणव्यन्तर सम्बन्धी जिज्ञासाएँ और समाधान

इस प्रकार भगवान के श्रीमुख से भवनवासियों का समग्र वर्णन जानने के पश्चात् गणधर श्री अग्निभूति जी भगवान से प्रश्न करते हैं-

भगवन्! दक्षिण दिशा के व्यन्तरों और वाणव्यन्तरों की कितनी ऋद्धि है और उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! (अग्निभूते!) इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण दिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर तथा नीचे सौ-सौ योजन छोड़कर बीच में आठ सौ योजन में, वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात भौमेय-भूमिग्रह के समान लाखों नगरावास हैं।

(क) झाझेरी - कुछ अधिक **(ख) अनीका** - सेना

ये भौमेय-नगर बाहर से गोल और अन्दर से चौरस तथा नीचे कमल की कर्णिका के आकार के हैं। उन नगरावासों के चारों और गहरी लम्बी-चौड़ी खाइयाँ एवं परिखाएँ खुदी हुई हैं, उनका अंतर स्पष्ट प्रतीत होता है। वहाँ पर यथास्थान, प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्धार बने हुए हैं। ये नगरावास विविधयन्त्रों, शतहिनयों, मूसलों एवं मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से घिरे हुए हैं। ये शत्रुओं द्वारा युद्ध न कर सकने योग्य, सदाजयशील, सुरक्षित, अड़तालीस कमरों से रचित, अड़तालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय, मंगलमय, किंकर देवों के दण्डों से उपरक्षित हैं। लिपे-पुते होने के कारण वे नगरावास प्रशस्त रहते हैं। इन नगरावासों पर गोशीर्ष चन्दन और सरस रक्तचन्दन से लिप्त पाँचों अंगुलियों वाले हाथ के छापे लगे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्धार देश के भाग चन्दन के घड़ों से भलीभाँति निर्मित होते हैं। ये नगरावास ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त हैं। वे काले, अगर, उत्तम चीडा, लोबान, गुग्गल आदि के धूप की महकती हुई सौरभ से रमणीय तथा सुगन्धित वस्तुओं की उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित अगरबत्ती की तरह लगते हैं। ये सब रत्नमय हैं। ये जघन्य तो भरत क्षेत्र प्रमाण हैं। 37½ योजन का ऊँचा कोट है। 62½ योजन के ऊँचे महल हैं। 341 महलों का झूमका है। बीच में इन्द्र का महल है। चारों तरफ दूसरे देवों के महल हैं। वे सब ध्वजा, पताका, तोरण आदि से युक्त हैं।

ये महल आसरागण के समूह से व्याप्त, दिव्य वाद्यों की ध्वनि से अभिगुंजित[क], पताकाओं की पंक्ति से मनोहर, सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे, पोछे, रज-रहित[ख], निर्मल, कीचड़ रहित, कांति वाले, चमचमाती किरणों से युक्त, प्रकाशमान, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, मनोहर, अतीव मनोहर होते हैं। इन्हीं नगरावासों में व्यन्तर देवों, देवियों और उनके इन्द्रों के निवास स्थान हैं।

व्यन्तर देव आठ प्रकार के होते हैं, उनके दक्षिण दिशा के इन्द्रों के नाम इस प्रकार हैं-

(क) अभिगुंजित - गुंजायमान **(ख) रज-रहित** - धूल, मिट्टी रहित

क्र.स.	निकाय	दक्षिण इन्द्र	वस्त्र कंवर्ण	ध्वजा चिह्न	देहवर्ण
1	पिशाच	काल	नीला	कदम्ब वृक्ष	श्याम
2	भूत	स्वरूप	नीला	सुलक्ष वृक्ष	कृष्ण
3	यक्ष	पूर्णभद्र	पीला	वट वृक्ष	श्याम
4	राक्षस	भीम	नीला	तापस पात्र	उज्ज्वल
5	किन्नर	किन्नर	पीला	अशोक वृक्ष	श्याम (नील)
6	किंपुरुष	सत्पुरुष	पीला	चम्पक वृक्ष	उज्ज्वल
7	महोरग	अतिकाय	श्याम	नाग वृक्ष	श्याम
8	गान्धर्व	गीतरति	श्याम	तुम्बरू वृक्ष	श्याम

इन व्यन्तरों का एक अवान्तर भेद वाणव्यन्तर भी है जो कि व्यन्तरों[क] के स्थान बताते समय जो सौ योजन ऊपर छोड़ा था, उसमें दस योजन ऊपर तथा दस योजन नीचे छोड़कर मध्य के 80 योजन में वाणव्यन्तर[ख] देव रहते हैं, उनके भी आठ प्रकार इस प्रकार हैं-

क्र.सं.	निकाय	दक्षिण इन्द्र	क्र.सं.	निकाय	दक्षिण इन्द्र
1	अणपन्नी	सन्निहित	5	कंदित	सुवत्स
2	पणपन्नी	धाता	6	महाकंदित	हास्य
3	ऋषिवादी	ऋषि	7	कोहंड	श्वेत
4	भूतवादी	ईश्वर	8	पतंग	पतंग

इनके निवास स्थान व्यन्तर की तरह ही हैं।

ये अत्यन्त चंचल मन वाले, क्रीड़ा करने में तत्पर परिहास[ग] प्रिय होते हैं। गंभीर हास्य, गीत और नृत्य में इनकी अनुरक्ति[घ] रहती है। ये वनमाला, कलंगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणों से सज्जित रहते हैं। सभी ऋतुओं में होने वाले सुगन्धित पुष्पों से सुरचित[ङ], लम्बी, शोभनीय, सुन्दर एवं खिलती हुई विचित्र वनमाला से उनका वक्षस्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामना अनुसार काम भोगों का सेवन करने वाले इच्छानुसार रूप एवं देह[च] के

(क) व्यन्तरों - देवों की एक जाति **(ख) वाणव्यन्तर** - तिरछे लोक में रहने वाले देवों की एक जाति **(ग) परिहास** - हँसी-मजाक **(घ) अनुरक्ति** - अनुराग, रुचि **(ङ) सुरचित** - अच्छी तरह बनी हुई **(च) देह** - शरीर

धारक, नाना प्रकार के वर्णों वाले, श्रेष्ठ, विचित्र, चमकीले वस्त्रों के धारक, विविध देशों की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं। इन्हें प्रमोद, कामक्रीड़ा, कलह, केलि[क] और कोलाहल प्रिय है। इनमें हास्य और विवाद बहुत होता है। इनके हाथों में तलवार, मुद्गर, शक्ति और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मणियों और रत्नों के विविध चिह्न वाले होते हैं। ये महर्द्धिक[ख], महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महासामर्थ्यशाली, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले होते हैं। कड़े और बाजूबन्द[ग] से इनकी भुजाएँ स्तम्भित रहती हैं। अंगद[घ] और कुण्डल इनके गालों का स्पर्श करके रहते हैं। इनके हाथों में विचित्र आभूषण तथा मस्तक में विचित्र मालाएँ होती हैं। ये कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहिने हुए तथा कल्याणकारी माला एवं अनुलेपन[ङ] धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त दैदीप्यमान होते हैं। ये लम्बी वनमालाएँ धारण करते हैं। ये दिव्य वर्ण, गन्ध, स्पर्श, संहनन, संस्थान, आकृति, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, ज्योति, तेज एवं लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए रहते हैं। इनके इन्द्र अपने लाखों भौमेय-नगरावासों का चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत से दक्षिण दिशा के व्यन्तर[च]-वाणव्यन्तर[छ] देव-देवियों का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करते हैं[121]।

ये अपनी विकुर्वणा शक्ति से एक जम्बूद्वीप जितना भर सकते हैं। तिरछा संख्यात द्वीप, समुद्र जितना भर सकते हैं, किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं[122]।

तब भगवान के श्रीमुख से दक्षिण दिशावासी व्यन्तरों और वाणव्यन्तरों का कथन श्रवण करके वायुभूति जी के मन में जिज्ञासा हुई तो वायुभूति जी ने भगवान से पूछा- भगवन्! उत्तर दिशावर्ती[ज] व्यन्तरों और वाणव्यन्तरों की कितनी ऋद्धि है, वे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं?

भगवान ने फरमाया गौतम! उनके नगरावासों आदि का वर्णन तो

(क) केलि - क्रीड़ा, खेलकूद **(ख) महर्द्धिक** - महा ऋद्धि सम्पन्न **(ग) बाजुबन्द** - भुजा पर धारण किया जाने वाला आभूषण **(घ) अंगद** - एक प्रकार का आभूषण **(ङ) अनुलेपन** - लेप **(च) व्यन्तर** - देवों की एक जाति **(छ) वाणव्यन्तर** - तिरछे लोक में रहने वाले देवों की एक जाति **(ज) उत्तर दिशावर्ती** - उत्तर-दिशा में रहने वाले

दक्षिण-दिशावर्ती[क] व्यन्तरों और वाणव्यन्तरों की तरह है। लेकिन उत्तर दिशावर्ती इन्द्रों के नाम इस प्रकार हैं-

व्यन्तर देव

क्र.सं.	निकाय	उत्तर दिशा के इन्द्र
1.	पिशाच	महाकाल
2.	भूत	प्रतिरूप
3.	यक्ष	मणिभद्र
4.	राक्षस	महाभीम
5.	किन्नर	किंपुरुष
6.	किंपुरुष	महापुरुष
7.	महोरग	महाकाय
8.	गान्धर्व	गीतयश

वाणव्यन्तर देव

क्र.सं.	निकाय	उत्तर दिशा के इन्द्र
1.	अणपन्नी	सामान
2.	पणपन्नी	विधाता
3.	ऋषिवादी	ऋषिपाल
4.	भूतवादी	महेश्वर
5.	कंदित	विशाल
6.	महाकंदित	हास्यरति
7.	कोहंड	महाश्वेत
8.	पतंग	पतंगपति[123]

इनकी समस्त ऋद्धि तथा विकुर्वणा शक्ति दक्षिण दिशावर्ती व्यन्तरों एवं वाणव्यन्तरों की तरह जानना[124]।

अग्निभूति जी और वायुभूति जी के ज्योतिष्कों सम्बन्धी जिज्ञासाएँ और समाधान

अब अग्निभूति जी के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो उन्होंने भगवान से पृच्छा की - भगवन्! ज्योतिष्क देव[ख] तथा सूर्य कितनी ऋद्धिवाला है? उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त एवं रमणीय भू-भाग से सात सौ नब्बे योजन की ऊँचाई पर एक सौ दस योजन विस्तृत एवं तिरछे असंख्यात योजन में ज्योतिष्क क्षेत्र हैं, जहाँ ज्योतिष्क देवों के तिरछे असंख्यात लाख ज्योतिष्क विमानावास हैं।

ये विमान अढाईद्वीप में अर्ध कबीट के आकार के और उसके बाहर पक्की ईंट के आकार के हैं। ये पूर्णरूप से स्फटिकमय हैं। वे सामने से

(क) दक्षिण-दिशावर्ती - दक्षिण दिशा में रहने वाले **(ख) ज्योतिष्क देव** - चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा

चारों ओर ऊपर उठे हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत हैं। विविध मणियों, स्वर्ण और रत्नों की छटा से वे चित्र-विचित्र हैं। हवा से उड़ी हुई विजय वैजयन्ती, पताका, छत्र और छत्र से युक्त हैं। वे बहुत ऊँचे, गगनचुम्बी शिखरों वाले हैं। उनकी जालियों के बीच में लगे हुए रत्न ऐसे लगते हैं, मानों पिंजरों से बाहर निकाले गये हों। वे मणियों और रत्नों की स्तूपिकाओं[क] से युक्त हैं। उनमें शतपत्र[ख] और पुण्डरिक कमल खिले हुए हैं। तिलकों तथा रत्नमय अर्धचन्द्रों से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओं से सुशोभित हैं। वे अन्दर और बाहर चिकने हैं। उनके पाथड़े[ग] सोने की रूचिर वाले हैं। वे सुखद स्पर्श वाले, श्रीसम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अतिरमणीय, अतिसुन्दर हैं।

इनमें ज्योतिष्क देव रहते हैं यथा बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध और मंगल ये तपे हुए स्वर्ण के समान वर्ण वाले अर्थात् किञ्चित रक्त वर्ण के हैं। अढाईद्वीप के भीतर ज्योतिष्क क्षेत्र में गति संचार करते हैं तथा गति में रत रहने वाला केतु, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, नाना आकारों वाले, पाँच वर्णों के तारे तथा स्थित-लेश्या वाले, संचार करने वाले, बिना रुके गोलाकार गति करने वाले हैं। प्रत्येक के मुकुट में अपने अपने नाम का चिह्न होता है।

ज्योतिष्क इन्द्र सूर्य भी वहाँ अपने लाखों ज्योतिष्क विमानवासों का, चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य यावत् अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है[125]। उसकी विकुर्वणा शक्ति व्यन्तरों के समान ही है[126]।

तब वायुभूति जी ने भगवान से प्रश्न किया- भगवन्! उत्तर दिशावर्ती ज्योतिष्क देवों और चन्द्र देव की कितनी ऋद्धि है?

भगवान ने फरमाया :- गौतम! इनकी समस्त ऋद्धि दक्षिण-दिशावर्ती ज्योतिष्कों की तरह तथा चन्द्रदेव की ऋद्धि प्राय: सूर्य की तरह है। विकुर्वणा शक्ति भी उतनी ही है[127]।

(क) स्तूपिकाओं - शिखरों, कूटों **(ख) शतपत्र** - सौ पत्ते वाले **(ग) पाथड़े** - प्रस्तर, फर्श

अग्निभूति जी और वायुभूति जी की वैमानिक सम्बन्धी जिज्ञासाएँ और समाधान

तब अग्निभूति जी ने भगवान से प्रश्न किया- भगवन्! देवराज देवेन्द्र शक्र[क] कितनी महान ऋद्धिवाला है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान ने फरमाया :- गौतम! जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भू-भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारक रूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन, बहुत कोटाकोटि[ख] योजन ऊपर दूर जाने पर सौधर्म कल्प[128] (प्रथम देवलोक) कहा गया है।

इस सौधर्म कल्प में सौधर्मक देवों के बत्तीस लाख विमानावास हैं, ये विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के सामन स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाये हुए, रजरहित, निर्मल, पंक रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्री सम्पन्न, उद्योत सहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले दर्शनीय, रमणीय, मनोहर, अप्रतिम सौन्दर्य वाले हैं।

इन विमानों के ठीक बीचोंबीच पाँच अवतंसक[ग] हैं- 1. अशोक अवतंसक 2. सप्रपर्ण अवतंसक 3. चंपक अवतंसक 4. आम्रावतंसक इन चारों के मध्य में 5. पाँचवां सौधर्म अवतंसक है। इन सभी में सौधर्मकल्पवासी देव रहते हैं।

सौधर्म देवलोक के देव मृग के चिह्न युक्त मुकुटवाले शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट के कारण शोभा युक्त, रक्त[घ] आभा युक्त, कमल पत्र के समान गौरवर्ण वाले, श्वेत सुखद वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, उत्तम विक्रिया शक्तिधारी, श्रेष्ठ वस्त्र, गन्ध, माल्य और अनुलेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग[ङ], महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। उनकी भुजाएँ कड़े और बाजूबंद से स्तम्भित रहती हैं। अंगद और कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोलों पर अठखेलियां करते हैं। कानों में कर्णपीठ तथा हाथों में विचित्र आभूषणों को धारण किये हुए हैं। विचित्र पुष्पमालाएँ मस्तक पर शोभायमान हैं। वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहिने हुए

(क) शक्र - पहले देवलोक का इन्द्र **(ख) कोटाकोटि** - करोड़ों-करोड़ **(ग) अवतंसक** - श्रेष्ठ महल **(घ) रक्त** - लाल **(ङ) महानुभाग** - अतीव भाग्यशाली

तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण किये रहते हैं। उनका शरीर तेज से दैदीप्यमान होता है। वे लम्बी वन माला धारण किये होते हैं। वे दिव्य वर्ण, गन्ध, स्पर्श, संहनन, संस्थान, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, ज्योति, तेज एवं लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित करते हुए प्रकाशित करते रहते हैं। यहाँ इन्हीं में सौधर्म देवलोक का इन्द्र-शकेन्द्र निवास करता है। जो वज्रपाणि पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मधवा, पाकशासन, दक्षिणार्धलोकाधिपति कहलाता है। यह बत्तीस लाख विमानों का अधिपति है। ऐरावत हाथी जिसका वाहन है। वह सुरेन्द्र रज रहित, स्वच्छ वस्त्रों का धारक, संयुक्त माला और मुकुट पहनता है, जिसके कपोल नवीन स्वर्णमय, सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से संस्पर्शित होते हैं। वह महर्द्धिक[क] देवराज शक्र बत्तीस लाख विमानावासों का, चौरासी हजार सामानिक देवों[ख] का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक[ग] देवों का, चार लोकपालों[घ] का, सपरिवार आठ अग्रमहिषियों[ङ] का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से सौधर्म कल्पवासी[च] वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है[129]।

यह इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषी विकुर्वणा शक्ति द्वारा दो जम्बूद्वीप जितना क्षेत्र भर सकते हैं तथा तिरछा इन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंशक इन तीन के असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है। लोकपाल और अग्रमहिषी के तिरछा संख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं[130]।

अग्निभूति जी :- भगवन्! यदि देवराज शक्र ऐसी महान ऋद्धिवाला है, इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तो आप देवानुप्रिय का शिष्य 'तिष्यक[छ]' नामक अणगार जो प्रकृति से भद्रयावत् विनीत था, निरन्तर बेले-बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता था, जिसने पूरे आठ वर्ष साधु जीवन का पालन किया। एक मास की संलेखना

(क) महर्द्धिक - महान ऋद्धिशाली **(ख) सामानिक देव** - इन्द्र के समान ऋद्धि वाले किंतु इन्द्र पदवी से रहित **(ग) त्रायस्त्रिंशक** - इन्द्र के पूज्य स्थानीय त्रायस्त्रिंशक जाति के देवता **(घ) लोकपाल** - दिशारक्षक **(ङ) अग्रमहिषियों** - प्रधान पट्टरानी देवियों **(च) सौधर्म कल्पवासी** - प्रथम देवलोक वासी **(छ) तिष्यक** - भगवान महावीर का साधु

कर, साठ भक्त अनशन[क] पालकर, आलोचना प्रतिक्रमण करके काल के अवसर पर काल करके सौधर्म देवलोक में गया। वह वहाँ अपने विमान में, उपपात सभा में देव शय्या में देवदूष्य वस्त्र से ढका हुआ, अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी अवगाहना में शकेन्द्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ। फिर पाँच पर्याप्तियाँ[ख] पूर्ण की और 32 वर्ष का युवक समान हुआ तब सामानिक देवों ने हाथ जोड़कर जय विजय शब्दों से बधाई दी और कहा- आप देवानुप्रिय ने दिव्य देवऋद्धि, द्युति, कान्ति उपलब्ध और प्राप्त की है। और दिव्य देवप्रभाव उपलब्ध और सन्मुख किया है। जैसी दिव्य देवऋद्धि यावत् आपने प्राप्त की वैसे ही शकेन्द्र[ग] ने प्राप्त की है और जैसी शकेन्द्र ने प्राप्त की, वैसी ही आपने भी। इस प्रकार उस तिष्यक देव की देवों ने स्तुति की तो हे भगवन्! वह तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है यावत् कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है?

भगवन् :- गौतम! वह तिष्यक देव महान ऋद्धिवाला है यावत् महान प्रभाव वाला है। वह वहाँ अपने विमान पर चार हजार सामानिक देवों पर, सपरिवार चार अग्रमहिषियों पर, तीन परिषदों पर, सात सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों पर तथा अन्य बहुत से वैमानिक देवों और देवियों पर आधिपत्य, स्वामित्व, नेतृत्व करता हुआ विचरण करता है। इनकी विकुर्वणा शक्ति शकेन्द्र जी के समान है[131]।

तब वायुभूति ने पूछा :- भगवन्! ईशानेन्द्र[घ] जी की कितनी ऋद्धि है? उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान ने फरमाया :- जम्बूद्वीप के सुमेरु पर्वत के उत्तर में रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यधिक सम और रमणीय भू-भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष्कों से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन, बहुत कोटाकोटि योजन दूर जाकर ईशान कल्प[ङ] कहा गया है जो पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है जिसका वर्णन सौधर्म कल्प के समान है। उस ईशान कल्प में ईशान देवों के अट्ठाईस लाख विमानावास हैं। ये विमान सर्वरत्नमय यावत्

(क) साठ भक्त अनशन - एक माह का संथारा **(ख) पर्याप्तियाँ** - शक्ति विशेष **(ग) शकेन्द्र** - पहले देवलोक का इन्द्र **(घ) ईशानेन्द्र** - दूसरे देवलोक का इन्द्र **(ङ) ईशान-कल्प** - दूसरा देवलोक

अतीव मनोहर प्रतिरूप हैं।

इन विमानों के ठीक मध्यदेश भाग में पाँच अवतंसक[क] हैं यथा- 1. अंकावतंसक 2. स्फटिकावतंसक 3. रत्नावतंसक 4. जातरूपावतंसक और इनके मध्य में 5. ईशानावतंसक है। ये अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं।

इस ईशानकल्प में देवेन्द्र ईशान निवास करता है जो शूलपाणि, वृषभवाहन, उत्तरार्द्धलोकाधिपति[ख] अट्ठाईस लाख विमानावासों का अधिपति, रजरहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, अवशिष्ट वर्णन शकेन्द्र की तरह है।

वह ईशानेन्द्र वहाँ अट्ठाईस लाख विमानावासों का, अस्सी हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार आठ अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ईशानकल्पवासी[ग] देवों और देवियों का आधिपत्य अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है। अवशिष्ट वर्णन शकेन्द्रवत है[132]। बस विशेषता इतनी है कि ईशानेन्द्र जी अपने वैक्रियकृत रूपों से दो जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थल को भर देते हैं[133]।

वायुभूति जी :- भगवन्! यदि देवराज ईशानेन्द्र इतनी बड़ी ऋद्धि से युक्त है यावत् वह इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है तो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत तथा निरन्तर तेले की तपस्या में तथा पारणे में आयम्बिल ऐसी कठोर तपश्चर्या से आत्मा को भावित करता हुआ, दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेने वाला आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुरूदत्त पुत्र[घ] अणगार, 6 महीने संयम पाल कर, 15 दिन का संलेखना संथारा कर तीस भक्त अनशन[ङ] छेदकर आलोचना प्रतिक्रमण समाधि मरण मरकर ईशानेन्द्र का सामानिक देव हुआ यावत् तिष्यक के समान महान ऋद्धिवाला हुआ, वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है?

भगवान :- गौतम! सम्पूर्ण व्यक्तव्य तिष्यक की तरह ही है, बस विशेषता

(क) अवतंसक - श्रेष्ठ महल **(ख) उत्तरार्द्धलोकाधिपति** - उत्तरार्ध (एरवत) लोक का अधिपति **(ग) ईशान कल्पवासी** - दूसरे देवलोक में रहने वाले **(घ) कुरूदत्त पुत्र** - एक साधु का नाम **(ङ) तीस भक्त अनशन** - पन्द्रह दिन का संथारा

इतनी है कि वह अपने वैक्रिय कृत रूपों से सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपों से कुछ अधिक स्थल को भर सकता है। ईशानेन्द्र जी के सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषी दो जम्बूद्वीप झाझेरा क्षेत्र भर सकते हैं। सामानिक और त्रायस्त्रिंशक इनकी तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है और लोकपाल तथा अग्रमहिषी की तिरछा संख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, किंतु ऐसा कभी होता नहीं[134]।

तब वायुभूति जी ने पूछा :- भंते सनत्कुमार इन्द्र कितनी ऋद्धिवाला है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान ने फरमाया :- गौतम! सौधर्म कल्प के ऊपर बहुत योजन, अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड़ योजन, अनेक कोटाकोटि योजन ऊपर दूर जाने पर सनत्कुमार नामक कल्प है उसका वर्णन सौधर्म कल्पवत् है। इसी में सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान हैं। ये विमान पूर्णरूप रत्नमय हैं इनका वर्णन सौधर्म के विमानों की तरह है। इनके बीचों बीच पाँच अवतंसक[क] हैं 1. अशोक अवतंसक 2. सप्रपर्णावतंसक 3. चम्पक अवतंसक 4. चूतावतंसक और मध्य में सनत्कुमार-अवतंसक हैं। ये अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ, यावत् प्रतिरूप हैं। इनमें बहुत से सनत्कुमार देव-देवियां[ख] रहते हैं जिनका वर्णन पूर्ववत् ही है। यहीं पर देवराज सनत्कुमार भी निवास करता है जिसका वर्णन शकेन्द्र की तरह है। वह बारह लाख विमानावासों का, बहत्तर हजार सामानिक देवों का, चार लोकपालों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से सौधर्म कल्पवासी वैमानिक देवों तथा देवियों का आधिपत्य यावत् अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है[135]।

इस देवलोक के इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल विकुर्वण करे तो चार जम्बूद्वीप जितना क्षेत्र भर सकते हैं और तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र जितना क्षेत्र भर सकते हैं, लेकिन ऐसा कभी होता ही नहीं है। यह उनकी शक्ति मात्र है[136]।

(क) अवतंसक - श्रेष्ठ महल **(ख) सनत्कुमार देव-देवियां** - तीसरे देवलोक के देव-देवियां

तब वायुभूति जी ने प्रश्न किया :- भगवन्! माहेन्द्र देवलोक[क] का इन्द्र माहेन्द्र कितनी ऋद्धि वाला है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान ने फरमाया :- ईशानकल्प के ठीक ऊपर बहुत कोटाकोटि योजन दूर जाने पर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प है, इसका वर्णन ईशानकल्प की तरह है पर विशेषता इतनी है कि इसके बीच में माहेन्द्र अवतंसक[ख] है, इसमें माहेन्द्र कुमार देव-देवियाँ रहते हैं। इस कल्प में आठ लाख विमान हैं। यहीं देवराज माहेन्द्र[ग] निवास करता है, जो रज रहित स्वच्छ वस्त्र धारक है। अन्य समस्त वर्णन सनत्कुमारेन्द्र की तरह है। यहाँ माहेन्द्र आठ लाख विमानावासों का, सत्तर हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है[137]। इस देवराज माहेन्द्र की तथा सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल की विकुर्वणा शक्ति 4 जम्बूद्वीप झाझेरा तथा तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, किंतु यह शक्ति मात्र है[138]।

इसके बाद वायुभूति जी ने पूछा :- भगवन्! ब्रह्मलोकेन्द्र[घ] कितनी महान ऋद्धि वाला है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान ने फरमाया :- सनत्कुमार और महेन्द्र कल्पों के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में बहुत योजन यावत् ऊपर दूर जाने पर ब्रह्मलोक कल्प[ङ] है, इसका वर्णन सनत्कुमार कल्पवत् है, बस विशेषता इतनी है कि इसमें चार लाख विमानावास हैं। इसके अवतंसक सौधर्म अवतंसक की तरह हैं, बस मध्य में ब्रह्मलोक अवतंसक[च] हैं जहाँ ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहे गये हैं। अवशिष्ट वर्णन सौधर्म कल्पवत् है। इसमें ब्रह्मलोकवासी बहुत से देव-देवियाँ रहते हैं। ब्रह्मलोकावतंसक में देवेन्द्र देवराज ब्रह्म[छ] निवास करता है।

उसका वर्णन सनत्कुमार की तरह है। वह वहाँ चार लाख विमानावासों का, साठ हजार सामानिकों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार

(क) माहेन्द्र देवलोक - चतुर्थ देवलोक **(ख) माहेन्द्र अवतंसक** - माहेन्द्र श्रेष्ठ महल **(ग) देवराज माहेन्द्र** - चतुर्थ देवलोक का इन्द्र **(घ) ब्रह्मलोकेन्द्र** - पाँचवें देवलोक का इन्द्र **(ङ) ब्रह्मलोक कल्प** - पाँचवां देवलोक **(च) ब्रह्मलोक अवतंसक** - ब्रह्मलोक नामक श्रेष्ठ महल **(छ) देवराज ब्रह्म** - पाँचवें देवलोक का इन्द्र

लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ब्रह्मलोक कल्प के देवों का आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है[139]।

ये इन्द्र, सामानिक, लोकपाल और त्रायस्त्रिंशक विकुर्वणा द्वारा 8 जम्बूद्वीप जितना तथा तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति मात्र है, लेकिन ऐसा कभी होता ही नहीं है[140]।

वायुभूति जी :- भगवन्! लांतक-इन्द्र[क] कितनी ऋद्धिवाला है, उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! ब्रह्मलोक कल्प के ठीक ऊपर बहुत कोटाकोटि योजन ऊपर दूर जाने पर लान्तक कल्प[ख] है, उसमें चार अवतंसक ईशानावतंसक की तरह और मध्य में लान्तक अवतंसक[ग] है। अवशिष्ट वर्णन सौधर्मवत्[घ] है। वहाँ पचास हजार विमान हैं। लान्तक अवतंसक में ही देवराज लान्तक निवास करता है, जिसका वर्णन सनत्कुमारेन्द्र[ङ] की तरह है। वह लान्तकेन्द्र वहाँ पर पचास हजार विमानावासों का, पचास हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, दो लाख आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से लान्तक देवों का आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है[141]।

यह लान्तकेन्द्र तथा सामानिक त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल देव अपनी विकुर्वणा शक्ति द्वारा 8 जम्बूद्वीप झाझेरा तथा तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति वाले हैं, लेकिन तीन काल में भी भरते नहीं[142]।

वायुभूति जी :- भगवन्! महाशुक्र विमान[च] के इन्द्र की कितनी ऋद्धि है? उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- लान्तक कल्प के ऊपर समान दिशा और विदिशा में बहुत दूर ऊपर जाने पर महाशुक्र कल्प[छ] है, जिसका वर्णन ब्रह्मलोकवत् है। इसमें चालीस हजार विमान है। इसके पाँच अवतंसक सौधर्म अवतंसक[ज] की तरह

(क) लांतक इन्द्र - छठे देवलोक का इन्द्र **(ख) लान्तक कल्प** - छठा देवलोक **(ग) लान्तक अवतंसक** - लान्तक नामक श्रेष्ठ महल **(घ) सौधर्मवत्** - प्रथम देवलोक की तरह **(ङ) सनत्कुमारेन्द्र** - तीसरे देवलोक का इन्द्र **(च) महाशुक्र विमान** - सातवें देवलोक का विमान **(छ) महाशुक्र कल्प** - सातवें देवलोक का नाम **(ज) सौधर्म अवतंसक** - सौधर्म नामक श्रेष्ठ महल

है परन्तु विशेषता यह है कि मध्य में महाशुक्रावतंसक[क] है। आगे का समग्र वर्णन पूर्ववत् है। इस महाशुक्रावतंसक में देवेन्द्र देवराज महाशुक्र[ख] रहता है, उसकी ऋद्धि सनत्कुमारेन्द्र की तरह है। वह वहाँ पर चालीस हजार विमानावासों का, चालीस हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, एक लाख चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य यावत् अग्रेसरत्व करके रहता है[143]।

इस इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल की विकुर्वणा शक्ति 16 जम्बूद्वीप जितनी तथा तिरछा असंख्यात द्वीप भरने जितनी है, लेकिन कभी भरा नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं[144]।

वायुभूति जी :- भगवन्! सहस्त्रारेन्द्र[ग] कितनी महान् ऋद्धि वाला है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- महाशुक्रकल्प के ऊपर समान दिशा और विदिशा में बहुत दूर ऊपर जाने पर सहस्त्रार नामक कल्प है। यहीं पर देवराज देवेन्द्र सहस्त्रार निवास करता है, उसका वर्णन सनत्कुमारेन्द्र की तरह है। विशेष वह सहस्त्रारेन्द्र वहाँ छह हजार विमानावासों का, तीस हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है[145]।

वहाँ इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल देव 16 जम्बूद्वीप झाझेरा क्षेत्र भर सकते हैं तथा तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है, लेकिन ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं, करेंगे नहीं[146]।

वायुभूति जी :- भगवन्! प्राणत इन्द्र[घ] की कितनी ऋद्धि है? उसकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है?

भगवान :- गौतम! सहस्त्रार कल्प के ऊपर दिशा और विदिशा में बहुत दूर ऊपर जाने पर आनत[ङ], प्राणत[च] नामक दो कल्प जो पूर्व-पश्चिम लम्बा

(क) महाशुक्रावतंसक - महाशुक्र नामक श्रेष्ठ महल **(ख) देवराज महाशुक्र** - सातवें देवलोक का इन्द्र **(ग) सहस्त्रारेन्द्र** - आठवें देवलोक का इन्द्र **(घ) प्राणत-इन्द्र** - दसवें देवलोक का इन्द्र **(ङ) आणत** - नवम देवलोक **(च) प्राणत** - दसम देवलोक

और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, अर्धचन्द्र के आकार में संस्थित, ज्योतिमाला और दीप्तराशि की प्रभा के समान है, शेष वर्णन सनत्कुमार की तरह है। उन कल्पों में आणत और प्राणत देवों के 200-200 विमान हैं। इन विमानावासों और अवतंसकों[क] का वर्णन पूर्ववत् है, सौधर्म कल्पवत है बस मध्य में प्राणतावतंसक[ख] है। इन अवतंसकों में आणत प्राणत देवों के स्थान कहे गये हैं। यहीं देवराज देवेन्द्र प्राणत[ग] निवास करता है जिसका वर्णन सनत्कुमारेन्द्रवत् जानना चाहिए। यहाँ प्राणतेन्द्र चार सौ विमानावासों का, बीस हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, अस्सी हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है[147]।

ये इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल अपनी विकुर्वणा शक्ति द्वारा 32 जम्बूद्वीप और तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति वाले हैं, लेकिन कभी भरा नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं[148]।

वायुभूति जी :- भगवन्! अच्युतेन्द्र जी कितनी महान ऋद्धिवाले हैं? उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है।

भगवान :- आणत प्राणत कल्पों के ऊपर समान दिशा और विदिशा में आरण और अच्युत नामक दो कल्प हैं, ये पूर्व-पश्चिम लम्बे तथा उत्तर-दक्षिण चौड़े हैं। अर्धचन्द्र के आकार में स्थित और सूर्य की तेजोराशि के समान प्रभा वाले हैं। इनकी लम्बाई असंख्यात कोटाकोटि योजन तथा परिधि भी असंख्यात कोटाकोटि योजन की है। ये विमान पूर्णत: रत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए, चिकने, रजरहित, निर्मल, निष्पंक, निरावरण कान्ति युक्त, प्रभामय, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, मनोहर और अतीव सुन्दर हैं। इनके ठीक मध्य देश भाग में पाँच अवतंसक हैं यथा 1. अंकावतंसक 2. स्फटिकावतंसक 3. रत्नावतंसक 4. जातरूपावतंसक 5. अच्युतावतंसक। ये अवतंसक सर्वरत्नमय हैं। यहाँ आरण और अच्युत देव-देवियाँ रहते हैं। यहीं अच्युत-अवतंसक[घ] देवराज देवेन्द्र अच्युत निवास करता है उसका वर्णन प्राणत की तरह समझना

(क) अवतंसकों - श्रेष्ठ महलों **(ख) प्राणतावतंसक** - प्राणत नामक श्रेष्ठ महल **(ग) प्राणत** - दसवाँ देवलोक **(घ) अच्युत अवतंसक** - अच्युत नामक श्रेष्ठ महल

चाहिए। विशेष यह है वह अच्युतेन्द्र 300 विमानों (अरण और अच्युत के), दस हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपतियों का, तीन परिषदों का, 40 हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करते हुए विचरण करता है[149]।

अच्युत, इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल 32 जम्बूद्वीप झाझेरा क्षेत्र भर सकते हैं, तिरछा असंख्यात द्वीप समुद्र भरने की शक्ति है। किंतु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं[150]।

वायुभूति जी :- भगवन्! यह इसी प्रकार है। भगवन्! यह इसी प्रकार है। यों कहकर तृतीय गौतम वायुभूति अणगार श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार करके तप संयम में लीन हो गये।

ईशानेन्द्र जी का आगमन और गौतम स्वामी की पृच्छा

भगवान कुछ दिन वहाँ विराजे और तत्पश्चात् किसी एक दिन भगवान महावीर 'मोका' नगरी के 'नन्दन' नामक उद्यान से निकलकर अन्य जनपदों में विचरण करने लगे और विचरण करते हुए राजगृह पधार गये। परिषद भगवान की वाणी श्रवण करने आई।

उस समय देवेन्द्र देवराज, शूलपाणि- हाथों में शूल त्रिशूल धारण करने वाला, वृषभ (बैल) पर सवारी करने वाला, लोक के उत्तरार्द्ध का स्वामी, अट्ठाईस लाख विमानों का अधिपति, आकाश के समान रज रहित, निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाला, सिर पर माला से सुशोभित मुकुटधारी, नवीन स्वर्ण निर्मित सुन्दर एवं विचित्र, चंचल कुण्डलों से कपोलों को जगमगाता हुआ यावत् दसों दिशाओं को प्रभासित करते हुए ईशानेन्द्र ईशानकल्प[क] में ईशानावतंसक[ख] विमान में (रायप्रश्नीय उपांग में कहे अनुसार अपश्चिम तीर्थंकर भाग-2 में वर्णन है) दिव्य देव ऋद्धि का अनुभव करता हुआ विचरण कर रहा था। उस समय सामानिक आदि देवों के परिवार से घिरे हुए ईशानेन्द्र[ग] ने अवधि ज्ञान द्वारा श्रमण भगवान महावीर को राजगृह में विराजे हुए देखा। जैसे ही भगवान को देखा उसके मन में श्रद्धा का सैलाब उमड़ पड़ा। वे भक्ति से अनुरंजित होकर अपने सिंहासन से नीचे उतरे और वहीं से प्रभु को वन्दन

(क) ईशान-कल्प - दूसरा देवलोक **(ख) ईशानावतंसक** - ईशान नामक श्रेष्ठ महल **(ग) ईशानेन्द्र** - दूसरे देवलोक के इन्द्र का नाम

नमस्कार किया। तत्पश्चात् उनके मन में भगवान के दर्शन करने की उत्कृष्ट भावना जागृत हो गयी। ओह! राजगृह नगर में भरत क्षेत्र के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर विराजमान हैं, उनके दर्शन करने हेतु नेत्र लालायित हो रहे हैं। मुझे प्रभु के सान्निध्य को प्राप्त करना है ऐसा सोचकर उन्होंने अपने आभियोगिक देवों[क] को बुलाया और राजगृह में जहाँ प्रभु विराज रहे थे, वहाँ के एक योजन क्षेत्र को स्वच्छ करने का आदेश दिया तत्पश्चात् अपने सेनाधिपति के द्वारा सभी देव और देवियों को ईशानेन्द्र जी की सेवा में उपस्थित होने की घोषणा घंटी बजाकर करवाई तत्पश्चात् समस्त देव और देवियों से घिरकर एक लाख योजन विस्तृत विमान में बैठकर ईशानेन्द्र भगवान के वंदनार्थ निकला। फिर नन्दीश्वर द्वीप में आकर विश्राम किया। वहाँ से छोटा विमान बनाकर राजगृह में विमान से उतरकर भगवान के समवसरण में प्रवेश किया। तत्पश्चात् भगवान को वन्दन नमस्कार करके पर्युपासना में लीन हुए।

तत्पश्चात् ईशानेन्द्र ने भगवान के समक्ष गौतमादि महर्षियों को दिव्य नाटकीय विधि दिखाने की इच्छा प्रकट की। भगवान मौन रहे। तब ईशानेन्द्र जी ने वैक्रिय लब्धि से दिव्य मण्डप, मणिपीठिका और सिंहासन बनाये। सिंहासन पर बैठकर दायें और बायें हाथ से 108-108 देवकुमार और देवकुमारियां निकाली फिर वाद्यों* और गीतों के साथ बत्तीस प्रकार के नाटक* दिखलाये। तत्पश्चात् अपनी दिव्य ऋद्धि, वैभव, प्रभाव और कान्ति आदि समेटकर पूर्ववत् अकेला हो गया। अब ईशानेन्द्र ने सपरिवार भगवान को वन्दन नमस्कार किया और पुनः अपने स्थान को लौट गया[151]।

तब गौतम स्वामी (इन्द्रभूति गौतम) ने भगवान से प्रश्न किया - अहो भगवन्! देवराज ईशानेन्द्र इतनी महान ऋद्धिवाला है। भगवन्! ईशानेन्द्र ने जो नाटक प्रदर्शन करके ऋद्धि दिखलाई वह कहाँ चली गयी? कहाँ प्रविष्ट हो गयी?

भगवान :- गौतम! ईशानेन्द्र द्वारा प्रदर्शित वह दिव्य देव ऋद्धि शरीर में चली गयी, शरीर में प्रविष्ट हो गयी।

गौतम स्वामी :- भगवन्! ऐसा किस कारण कहा जाता है कि वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य-द्युति शरीर में चली गयी यावत् शरीर में प्रविष्ट हुई?

भगवान :- जैसे शिखराकार[ख] कोई शाला (घर) हो और उसके पास बहुत

(क) आभियोगिक देव - सेवक देव **(ख) शिखराकार** - शिखर के आकार वाला

*** वाद्यों एवं नाटकों का वर्णन प्रथम परिशिष्ट (अ) में देखें**

से मनुष्य खड़े हों, इसी बीच आकाश में बादल छा जाये और बरसात आने की तैयारी हो ऐसी स्थिति में सभी मनुष्य वर्षा से रक्षा के लिए उस घर में प्रविष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार ईशानेन्द्र[क] की वह दिव्य ऋद्धि, देवप्रभाव एवं दिव्य कांति ईशानेन्द्र के शरीर में प्रविष्ट हो गयी।

गौतम स्वामी :- भगवन्! ईशानेन्द्र जी ने ऐसी दिव्य ऋद्धि किस कारण प्राप्त की? ये पूर्वभव में कौन थे? इनका नाम व गोत्र क्या था? यह किस गाँव, नगर यावत् सन्निवेश में रहता था? इसने क्या सुनकर, क्या आहार पानी देकर, क्या रूखा-सूखा खाकर, क्या तप एवं शुभ स्थान आदि करके, क्या शीलव्रतादि या प्रतिलेखन-प्रमार्जन आदि धर्म क्रिया का सम्यक् आचरण करके अथवा किस तथा रूप श्रमण या माहन के पास तीर्थंकर भगवान द्वारा उपदिष्ट एक भी वचन सुनकर तथा हृदय में धारण करके पुष्यपुंज का उपार्जन किया, जिससे पुण्य प्रताप से देवराज ईशानेन्द्र को वह दिव्य ऋद्धि यावत् उपलब्ध हुई है?

भगवान :- गौतम! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नगरी थी। वह नगरी धन धान्य से समृद्ध थी। उस नगरी में तामली नामक मौर्यपुत्र[XXXI] (मौर्यवंश में उत्पन्न) गृहस्थ रहता था। वह धनाढ्य, तेजस्वी और दबंग था।

एक बार वह पिछली रात्रि के समय कुटुम्बजागरिका कर रहा था, तब उसके मन में ऐसे अध्यवसाय उत्पन्न हुए, ऐसा संकल्प जगा कि मैंने पूर्व में दानादि दिया, सम्यक् तप में पराक्रम किया इसी कारण शुभ और कल्याणकारी कर्मों का फल अभी विद्यमान है, जिसके कारण मैं चाँदी, सोना, धन, धान्य, परिवार और पशुधन से वृद्धि प्राप्त कर रहा हूँ। मेरे पास में विपुल धन, कनक[ख], रत्न, मणि, मोती, शंख, चन्द्रकांत आदि पर्वतीय मणियाँ मूंगा, रक्तरत्न[ग], माणिक्य आदि सारभूत धन अधिकाधिक बढ़ता ही जा रहा है। इस प्रकार पूर्वोपार्जित दान, तपादि रूप शुभ कर्मों का फल भोगकर मैं एकान्त रूप से क्या इनका क्षय होता देखता रहूँ? क्या भविष्यकालीन लाभ कमाने के लिए उदासीन रहूँ? नहीं... नहीं... भविष्य के लिए लाभ कमाना चाहिए। मुझे इस विषय में उदासीन रहना ठीक नहीं है अत: जब तक मेरे यहाँ सोना, चाँदी आदि विपुल सारभूत पदार्थों की सुख

(क) ईशानेन्द्र - दूसरे देवलोक का इन्द्र **(ख) कनक** - सोना, स्वर्ण **(ग) रक्तरत्न** - लाल रत्न

सामग्री बढ़ रही है, जब तक मेरे मित्र, ज्ञातिजन[क], स्वगोत्रीय कुटुम्बीजन, ननिहाल पक्षीय, ददिहाल पक्षीय, परिजन, दास-दासी मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी मानते हैं, मेरा सत्कार करते हैं, मुझे कल्याण रूप, मंगल रूप, देवरूप, समझदार या अनुभवी मानकर विनयपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, तब तक मुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिए। अतएव मेरे लिये श्रेयस्कर है कि रात्रि व्यतीत होने पर, सूर्योदय होने पर मैं अपने हाथ से स्वयं काष्ठ पात्र[ख] बनवाऊँ और पर्याप्त मात्रा में विपुल, अशन, पान, खादिम और पर्याप्त मात्रा में स्वादिम रूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाकर अपने मित्र, जाति, स्वजन-सम्बन्धी और परिजनों के समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र[ग] को समस्त कुटुम्ब का दायित्व सौंपकर स्वयं काष्ठपात्र लेकर एवं मुण्डित होकर प्रणामा[XXXII] नामक प्रव्रज्या अंगीकार करूँ। प्रव्रजित होकर मैं इस प्रकार का अभिग्रह धारण करूँ कि जीवन भर बेले-बेले का तप करूँगा। सूर्य की ओर दोनों भुजाएँ ऊँची करके आतपना लेता रहूँगा। पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरकर स्वयं काष्ठ पात्र हाथ में लेकर ताम्रलिप्ती नगरी के ऊँच, नीच और मध्यम कुलों से गृह समुदाय में भिक्षाचारी[घ] के लिए पर्यटन करके भिक्षाविधि द्वारा शुद्ध ओदन (पक्के) चावल लाऊँगा, उनको 21 बार धोकर खाऊँगा, इस प्रकार तामली गृहपति ने शुभ विचार किया।

इस प्रकार विचार करने के पश्चात् तामली ने पानी से हाथ धोये और चुल्लू में पानी लेकर शीघ्र कुल्ला किया, मुख साफ करके स्वच्छ हुआ। फिर आये हुए उन सब मित्र जाति, स्वजन-परिजनादि का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला, अलंकार आदि से सत्कार सम्मान किया, फिर उन्हीं मित्र स्वजन आदि के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपा और उन्हीं मित्र-स्वजनादि तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर, मुण्डित होकर 'प्रणामा' प्रव्रज्या अंगीकार की।

प्रणामा प्रव्रज्या में प्रव्रजित होकर तामली ने इस प्रकार अभिग्रह ग्रहण किया कि आज से मैं आजीवन निरन्तर बेले-बेले तप करूँगा यावत् पूर्व संकल्पित भिक्षाविधि के अनुसार केवल पके हुए चावल (भात) लाकर उन्हें

(क) ज्ञातिजन - स्व जाति के लोग **(ख) काष्ठ पात्र** - लकड़ी का पात्र **(ग) ज्येष्ठ पुत्र** - बड़ा लड़का **(घ) भिक्षाचारी** - भिक्षा

21 बार पानी में धोकर उनका आहार करूँगा। इस प्रकार अभिग्रह धारण कर वह तामली तापस यावज्जीवन[क] निरन्तर बेले-बेले तप करके दोनों भुजाएँ ऊँची करके आतापना भूमि में सूर्य के सम्मुख आतापना लेता हुआ विचरण करने लगा। बेले के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरकर, स्वयं काष्ठ पात्र लेकर ताम्रलिप्ती नगरी[ख] में ऊँच, नीच और मध्यम कुलों में गृह समुदाय से भिक्षा के लिए घूमता था। भिक्षा में केवल भात लाता और उन्हें 21 बार पानी से धोकर आहार करता था।

गौतम स्वामी :- भगवन्! तामली द्वारा ग्रहण की हुई प्रव्रज्या प्रणामा क्यों कहलाती है?

भगवान :- गौतम! प्रणामा प्रव्रज्या में प्रव्रजित होने पर वह व्यक्ति जिसे जहाँ देखता है, उसे वहीं प्रणाम करता है। जैसे इन्द्र, स्कन्द, महादेव, शिव, वैश्रमण, पार्वती, चण्डिका, राजा, युवराज, तलवर[ग], माडम्बिक[घ], कौटुम्बिक[ङ], श्रेष्ठी[च] एवं सार्थवाह-बनजारे को अथवा कौआ, कुत्ता, चाण्डाल आदि सबको प्रणाम करता है। इस कारण हे गौतम! इस प्रव्रज्या का नाम प्रणामा प्रव्रज्या है[152]।

इस प्रकार गौतम! प्रणामा प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् लम्बे समय तक उसका वहन करने से वह मौर्यपुत्र तामली तापस उस उदार विपुल तप से अत्यन्त शुष्क और रुक्ष शरीर वाला हो गया, यहाँ तक कि वह इतना दुर्बल हो गया कि उसकी समस्त नाड़ियों का जाल बाहर दिखाई देने लगा।

तब एक दिन पिछली रात्रि के समय अनित्य जागरिका करते हुए, संसार, शरीर आदि की क्षणभंगुरता का विचार करते हुए उस बाल तपस्वी तामली को इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इस उदार, विपुल यावत् उदग्र, उदात्त, उत्तम और महाप्रभावशाली तप: कर्म करने से शुष्क, रुक्ष हो गया हूँ। मैं... मैं इतना कृश हो गया हूँ कि नाड़ियों का जाल बाहर दिखाई देने लग गया है। इसलिए जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम

(क) यावज्जीवन - जीवन पर्यन्त के लिए **(ख) ताम्रलिप्ती नगरी** - बंग देश की एक नगरी जहाँ पर तामली तापस का जन्म हुआ **(ग) तलवर** - राजा की प्रसन्नता से पारितोषिक प्राप्त किया हुआ रत्नभूषित सुवर्ण पद मस्तक पर धारण करने वाला धनवान गृहस्थ **(घ) माडम्बिक** - चारों ओर ग्राम-नगरादि से शून्य मडम्ब और उसका अधिराज माडम्बिक **(ङ) कौटुम्बिक** - सेवक **(च) श्रेष्ठी** - सेठ

है, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि प्रात:काल सूर्योदय होने पर ताम्रलिप्ती नगरी में जाऊँ। वहाँ जाकर जिनको गृहस्थावस्था में जानता हूँ, जो व्रतों में स्थित हैं, जो गृहस्थ के परिचित या तापस जीवन में परिचित हैं और समकालीन दीक्षा पर्याय से युक्त हैं, उन सभी से विचार विनिमय करूँ। विचार-विनिमय करके ताम्रलिप्ति नगरी के बीचों बीच निकलकर खड़ाऊँ, कुण्डी आदि उपकरणों तथा काष्ठपात्र को एकान्त में रखकर ताम्रलिप्ती नगरी के ईशान कोण में जाकर अपने शरीर प्रमाण स्थान का निरीक्षण करके, क्षेत्र मर्यादा करके, संलेखना तप से आत्मा को भावित कर, आहार पानी का सर्वथा त्याग करके पादपोगमन अनशन अंगीकार करूँ[153]।

उस काल उस समय उत्तर दिशा के असुरेन्द्र असुरकुमार राज बलि की बलिचंचा राजधानी इन्द्र विहीन[क] और पुरोहित विहीन[ख] थी। तब बलिचंचा निवासी बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने तामली बाल तपस्वी को अवधिज्ञान से देखा, देखकर उन्होंने विचार-विमर्श के लिए एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा- देवानुप्रियो! आपको मालूम ही है कि बलिचंचा राजधानी इस समय इन्द्र रहित और पुरोहित रहित है। देवानुप्रियो! हम सब अब तक इन्द्राधीन रहे हैं। अतएव यहाँ इन्द्र होना चाहिए, इसके लिये हम सब एक प्रयास करें। अभी भारतवर्ष में तामली बाल तपस्वी ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर ईशान कोण[ग] में शरीर परिमित स्थान का आलेखन[घ] करके, संलेखणा कर, सर्वथा आहार का त्याग करके, पादपोगमन[ङ] अनशन स्वीकार करके विचरण कर रहा है। इसलिए देवानुप्रियो! हमारे लिए श्रेयस्कर है कि तामली तापस को बलिचंचा राजधानी के इन्द्र रूप में आकर रहने का संकल्प करवायें। ऐसा विचार करके परस्पर एक-दूसरे से इस बात के लिए वचनबद्ध हुए और बलिचंचा राजधानी के बीचों बीच होकर निकले और रूचकेन्द्र उत्पात पर्वत पर आकर वैक्रिय समुद्रघात किया, उत्तर वैक्रिय रूपों की विकुर्वणा की फिर उत्कृष्ट, त्वरित[च], चपल, चण्ड[छ], जयिनी, निपुण, सिंहसदृश शीघ्र, दिव्य, उद्धत, देवगति से तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों के मध्य होते हुए जम्बूद्वीप

(क) इन्द्र-विहीन - इन्द्र से रहित **(ख) पुरोहित विहीन** - पुरोहित रहित **(ग) ईशान कोण** - पूर्व-उत्तर का कोना **(घ) आलेखन** - प्रतिलेखन, देखना **(ङ) पादपोगमन** - टूटे वृक्ष की तरह निष्चेष्ट होकर संथारा ग्रहण करना **(च) त्वरित** - शीघ्र **(छ) चण्ड** - तेज

के आकाश में चारों दिशाओं में, चारों विदिशाओं में खड़े होकर दिव्य देवऋद्धि, देवद्युति, देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार की नारक विधि दिखलाई।

इसके पश्चात् तामली तापस की दाहिनी ओर से तीन बार प्रदक्षिणा की, उसे वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार बोले- हे देवानुप्रिय! हम बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत से असुर कुमार देव और देवी वृन्द आपको वन्दन नमस्कार करके यावत् आपकी पर्युपासना करते हैं। हे देवानुप्रिय! हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित विहीन है, और हे देवानुप्रिय! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले हैं, इसलिये आप बलिचंचा राजधानी के अधिपति पद[क] का आदर करें, उसके स्वामित्व को स्वीकार करें, उसका मन में भली भाँति स्मरण करें, उसके लिये आप मन में निश्चय करें और बलिचंचा राजधानी के इन्द्र पद के लिये निदान करें। ऐसा करने पर आप काल के अवसर पर मृत्यु प्राप्त करके बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न होंगे फिर हमारे इन्द्र बन जायेंगे और हमारे साथ दिव्य कामभोगों को भोगते हुए विचरण करेंगे।

इस प्रकार बलिचंचा राजधानी के बहुत से देवों और देवियों के कथन को तामली बाल तपस्वी ने स्वीकार नहीं किया, आदर नहीं किया, बल्कि मौन रहा।

तब उन देवों और देवियों ने दूसरी बार, तीसरी बार भी यही कहा, लेकिन तामली तापस उस कथन को स्वीकार न करके मौन रहा।

इस प्रकार तामली तापस* ने उन देव और देवियों के कथन का आदर नहीं किया, उसे स्वीकार नहीं किया तो वे देव और देवी जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में लौट गये।

उस समय ईशान देवलोक भी इन्द्र विहीन और पुरोहित रहित था। उस समय तामली तापस[XXXIII] पूरे साठ हजार वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके दो माह की संलेखणा और दो मास का अनशन[ख] पालकर काल के समय काल करके ईशान देवलोक के इन्द्र की अनुपस्थिति (विरह काल) में ईशानावतंसक विमान में ईशान देवलोक के इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ[154]।

(क) अधिपति पद - इन्द्र पद **(ख) दो मास का अनशन** - दो महीने का संथारा

*** तामली तापस को देवों ने पुरोहित बनने की विनती नहीं की, क्योंकि इन्द्र के अभाव में शांतिकर्मकर्ता पुरोहित नहीं हो सकता।**

देवों द्वारा आशातना की क्षमायाचना

उस समय बलिचंचा राजधानी निवासी बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों ने जब यह जाना कि तामली बाल तपस्वी कालधर्म को प्राप्त हो गया है और ईशान देवलोक में वहाँ इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ है तो यह जानकर वे क्रोध से आग बबूला हो गये और उसी क्रोधावेश में बलिचंचा राजधानी से निकलकर जहाँ तामली बाल तपस्वी का मृत शरीर पड़ा था, वहाँ आये। उन्होंने बाल तपस्वी के मृत शरीर के बायें पैर को रस्सी से बांधा फिर तीन बार उसके मुँह पर थूका, तत्पश्चात् ताम्रलिप्ती नगरी के त्रिकोण मार्गों, चौकों, प्रांगणों[क], चतुर्मुख मार्गों[ख] तथा महामार्गों में उसके शव को घसीटा, इधर-उधर खींचा तथा जोर-जोर से चिल्लाकर उद्घोषणा की 'स्वयमेव तापस वेष पहनकर प्रणामा प्रव्रज्या अंगीकार करने वाला यहाँ तामली बाल तपस्वी हमारे सामने क्या है तथा ईशान कल्प में उत्पन्न देवराज देवेन्द्र भी हमारे सामने कौन है।' यों कहकर वे बाल तपस्वी के मृत शरीर की हीलना निन्दा कोसना, गर्हा करना, अवमानना, तर्जना और ताड़ना मारपीट करते हैं। उसकी खूब बुरी हालत कर उसे उठा उठाकर खूब पटकते हैं, इधर उधर घसीटते हैं और उसे एकान्त स्थान में डालकर बलिचंचा राजधानी लौट जाते हैं।

इस दृश्य को ईशानकल्पवासी[ग] बहुत से देव और देवियां देख रही थी। इस दृश्य को देखकर वे क्रोध से दाँत पीसते हुए जहाँ देवराज ईशान[घ] था वहाँ पहुँचे। ईशानेन्द्र को जय-विजय शब्दों से बधाया और फिर वे इस प्रकार बोले- हे देवानुप्रियो! बलिचंचा राजधानी निवासी बहुत से असुर कुमार देव और देवीगण ने आप देवानुप्रिय को काल धर्म प्राप्त हुआ तथा ईशानेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुए देखकर आपके मृत शरीर को मनचाहा आढ़ा-टेढ़ा घसीटकर एकान्त में डाल दिया है और उसके बाद पुन: बलिचंचा चले गये।

इस बात को श्रवण करके ईशानेन्द्र क्रोध से आग बबूला हो उठा और वहीं देवशय्या पर स्थित ललाट में तीन सल डालकर, भ्रकुटि तानकर, बलिचंचा राजधानी को नीचे ठीक सामने होकर एकटक दृष्टि से देखा, तब उसे कोपयुक्त दृष्टि से देखने मात्र से बलिचंचा राजधानी जलते हुए अंगारों के समान, अग्नि कणों के समान, तपी हुई राख के समान, तपती हुई बालू सरीखी जलने लगी।

(क) प्रांगण - आंगन, सड़क का **(ख) चतुर्मुख** - चारों ओर जाने वाले रास्ते **(ग) ईशान कल्पवासी** - दूसरे देवलोक में रहने वाले **(घ) देवराज ईशान** - दूसरे देवलोक का इन्द्र

जब वहाँ के असुरकुमार देव और देवियों ने उस बलिचंचा राजधानी को अग्नि की लपटों सरीखा जलते हुए देखा तो अत्यन्त भयभीत होकर काँपने लगे, उद्विग्न हो गये, भय के मारे चारों ओर इधर-उधर भागने लगे, एक दूसरे से चिपटने लगे। तब बहुत से देव-देवियों को पता लग गया कि ईशानेन्द्र के कुपित होने से यह स्थिति हुई है। ऐसा ज्ञात होने पर सब असुर देवगण ईशानेन्द्र की उस दिव्य ऋद्धि, द्युति, प्रभाव और तेजोलेश्या को सहन न करने के कारण देवराज ईषान के चारों दिशाओं में, चारों विदिशाओं में ठीक सामने खड़े होकर, ऊपर की ओर मुख करके दोनों हाथों को जोड़कर ईशानेन्द्र की जय विजय शब्दों से बधाई देने लगे, अभिनन्दन करने लगे और इस प्रकार कहने लगे- अहो धन्य है! आप देवानुप्रिय ने दिव्य देव ऋद्धि प्राप्त की, उपलब्ध की, सम्मुख की है। हमने आपकी इस दिव्य देव ऋद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव देख लिया है। अत: देवानुप्रिय! हम आपसे क्षमा मांगते हैं। आप हमें क्षमा करें। आप देवानुप्रिय हमें क्षमा करने योग्य हैं। हम भविष्य में फिर कभी इस प्रकार नहीं करेंगे। इस प्रकार निवेदन करके उन्होंने ईशानेन्द्र से अपने अपराध के लिये विनयपूर्वक अच्छी तरह बार-बार क्षमा मांगी।

इस तरह क्षमायाचना करने पर ईशानेन्द्र ने उस दिव्य देवऋद्धि को यावत् छोड़ी हुई तेजोलेश्या को पुन: समेट लिया[155]।

श्री गौतम - पृच्छा :- हे गौतम! तब से बलिचंचा राजधानी निवासी वे बहुत से असुर देव और देवीवृन्द देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं यावत् उनकी पर्युपासना करते हैं और तभी से देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा तथा सेवा में, आदेश और निर्देश में रहते हैं।

हे गौतम! देवराज देवेन्द्र ईशान ने वह दिव्य ऋद्धि इस प्रकार प्राप्त की है।

गौतम स्वामी :- भगवन्! ईशानेन्द्र की स्थिति कितने काल की है?

भगवान :- गौतम! दो सागरोपम से कुछ अधिक की है।

गौतम स्वामी :- देवराज ईशान आयु क्षय होने पर कहाँ जायेंगे? कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान :- महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धावस्था को प्राप्त करेंगे।

गौतम स्वामी :- भगवन्! क्या देवराज शक्र[क] के विमानों से देवराज ईशान[ख] के विमान कुछ उच्चतर, उन्नततर हैं और शकेन्द्र के विमान कुछ नीचे तथा निम्नतर हैं?

(क) देवराज शक्र - पहले देवलोक का इन्द्र **(ख) देवराज ईशान** - दूसरे देवलोक का इन्द्र

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- भगवन्! ऐसा किस कारण कहा जाता है?

भगवान :- गौतम! जैसे हथेली का एक भाग कुछ ऊँचा और उन्नततर[क] होता है तथा एक भाग कुछ नीचा और निम्नतर होता है, इसी तरह शकेन्द्र[ख] और ईशानेन्द्र[ग] के विमानों के सम्बन्ध में समझना चाहिए[156]। इस कारण ऐसा कहा जाता है।

गौतम स्वामी :- क्या देवराज शक्र, देवराज ईशान के पास जाते हैं?

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- भगवन्! जब शकेन्द्र ईशानेन्द्र के पास जाता है तो क्या वह आदर करता हुआ जाता है या अनादर करता हुआ जाता है।

भगवान :- गौतम! वह शकेन्द्र, ईशानेन्द्र का आदर करता हुआ जाता है, अनादर करता हुआ नहीं जाता।

गौतम स्वामी :- भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशान, क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के पास प्रकट होने में समर्थ है?

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- जब ईशानेन्द्र[XXXIV] शकेन्द्र के पास जाता है तब वह आदर करता हुआ भी जा सकता है और अनादर करता हुआ भी जा सकता है?

भगवान :- गौतम! आदर करता हुआ ही जाता है, अनादर करता हुआ नहीं।

गौतम स्वामी :- भगवन्! देवराज देवेन्द्र शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के समक्ष चारों दिशाओं, चारों विदिशाओं में देखने में समर्थ हैं?

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- भगवन्! क्या देवेन्द्र देवराज शकेन्द्र और देवेन्द्र देवराज ईशान के बीच कभी करने योग्य किसी कार्य के लिए बातचीत होती है?

(क) ऊँचा और उन्नततर - यहाँ उच्चता और उन्नतता के दो अर्थ हैं 1. प्रमाण की अपेक्षा अथवा प्रासाद की अपेक्षा विमानों की उच्चता 2. शोभाधिक आदि गुणों की अपेक्षा अथवा प्रासाद पीठ की अपेक्षा उन्नतता समझनी चाहिए तथा इन दोनों के विपरीत नीचत्व और निम्नत्व समझना चाहिए। यों तो दोनों इन्द्रों के विमानों की ऊँचाई 500 योजन कही है, वह सामान्यापेक्षा समझना चाहिए। **(ख) शकेन्द्र** - पहले देवलोक का इन्द्र **(ग) ईशानेन्द्र** - दूसरे देवलोक का इन्द्र

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- भगवन्! तब वे कैसे बातचीत करते हैं?

भगवान :- गौतम! जब देवराज देवेन्द्र ईशान* को शकेन्द्र जी को पुकारना होता है तब वे बोलते हैं- इति भो! (अरे!) शक्र[157]! देवेन्द्र देवराज दक्षिणार्ध लोकाधिपति[क]!

जब शकेन्द्र जी को ईशानेन्द्र जी को पुकारना होता है तब वे ऐसा बोलते हैं- इति भो! (अरे) ईशान! देवेन्द्र! देवराज! उत्तरार्ध लोकाधिपति[ख]!

गौतम स्वामी :- क्या देवेन्द्र शक्र और देवराज देवेन्द्र ईशान दोनों में विवाद उत्पन्न होता है?

भगवान :- हाँ गौतम!

गौतम स्वामी :- जब इन दोनों इन्द्रों में विवाद उत्पन्न होता है, तब वे क्या करते हैं?

भगवान :- गौतम! जब इन दोनों इन्द्रों में विवाद उत्पन्न होता है तब ये दोनों इन्द्र देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारेन्द्र[ग] का मन में स्मरण करते हैं। शकेन्द्र जी और ईशानेन्द्र जी के स्मरण करने पर शीघ्र ही सनत्कुमारेन्द्र इन दोनों के सम्मुख प्रकट होते हैं। फिर इन दोनों के विवाद का निपटारा सनत्कुमारेन्द्र जी करते हैं। जो भी निपटारा सनत्कुमारेन्द्र जी कर देते हैं, उसको ये दोनों मानते हैं। ये दोनों इन्द्र (शकेन्द्र और ईशानेन्द्र) सन्तकुमारेन्द्र की आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में रहते हैं।

गौतम स्वामी :- भगवन्! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार क्या भव सिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक? सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि? परित्त संसारी हैं या अनन्त संसारी? सुलभबोधि हैं या दुर्लभ बोधि? आराधक हैं या विराधक? चरम हैं अथवा अचरम?

भगवान :- गौतम! देवेन्द्र, देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक[घ] हैं, अभवसिद्धिक[ङ] नहीं। सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं, परित्त संसारी[च] हैं

(क) दक्षिणार्ध लोकाधिपति - दक्षिणार्ध लोक का अधिपति **(ख) उत्तरार्ध लोकाधिपति** - उत्तरार्ध लोक का स्वामी **(ग) सनत्कुमारेन्द्र** - तीसरे देवलोक का इन्द्र **(घ) भवसिद्धिक** - भव्य, मोक्ष जाने की योग्यता वाला **(ङ) अभवसिद्धिक** - अभव्य, मोक्ष नहीं जाने वाला **(च) परित्तसंसारी** - संसार परिमित करने वाला

*** इनकी सेना तथा सेनापति का वर्णन परिशिष्ट प्रथम (क) में देखें**

अनन्त संसारी नहीं, सुलभबोधि[क] हैं दुर्लभबोधि नही, आराधक[ख] हैं विराधक नहीं, चरम हैं अचरम नहीं।

गौतम स्वामी :- भगवन्! किस कारण ऐसा कहते हैं?

भगवान :- गौतम! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावक, श्राविकाओं का हितकामी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पा करने वाला, कल्याण, मोक्ष का इच्छुक है। वह श्रमण-श्रमणियों, श्रावक-श्राविकाओं का हित, सुख चाहने वाला और कल्याण चाहने वाला है, इसी कारण गौतम! वह भवसिद्धिक यावत् चरम[ग] है।

गौतम स्वामी :- भगवन्! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की आयु कितनी है?

भगवान :- गौतम! सात सागरोपम की।

गौतम स्वामी :- भगवन्! वह उस देवलोक से आयु पूर्ण होने के बाद कहाँ जायेगा?

भगवान :- गौतम! महाविदेह में जन्म लेकर सिद्धावस्था को प्राप्त करेगा[158]।

गौतम स्वामी :- भगवन्! यह इसी प्रकार है। भगवन्! यह इसी प्रकार है[159]।

चातुर्मास :- वाणिज्यग्राम

इस प्रकार प्रश्नों का समाधान भगवान ने फरमाया। तत्पश्चात् किसी दिन भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाणिज्यग्राम पधारे[160]। चातुर्मास की घड़ियाँ भी समीप आने लगी, भगवान ने यह चातुर्मास वाणिज्यग्राम में करने का निश्चय किया।

वाणिज्यग्राम में अतीव उत्साह छाया है। भगवान वर्षावास वाणिज्यग्राम में कर रहे हैं[161]। यह जानकर भव्यों का मन कुलाँचे भरने लगा। अनेक भव्यजन त्याग-वैराग्य से आत्मा को सजाने आतुर[घ] हो गये।

समय अपनी गति से गतिमान था। समय की सूक्ष्मता... इतनी... न जाने... न जाने... सुख की पावन घड़ियाँ कब आकर चली जाती हैं। कुछ पता ही नहीं चलता। पावस प्रवास[ङ] हो गया। सावन की काली कजरारी मेघ घटाएँ

(क) सुलभबोधि - सुलभता से बोध (समकित, ज्ञान) को पाने वाले **(ख) आराधक** - व्रतों की आराधना करने वाला **(ग) चरम** - अन्तिम शरीर, इसके पश्चात् मोक्ष जाने वाला **(घ) आतुर** - उतावले, तत्पर **(ङ) पावस प्रवास** - चातुर्मास

आकाश को आच्छादित[क] करने लगीं। ठण्डी-ठण्डी बयार[ख] और रिमझिम-रिमझिम वर्षा का आगमन कृति में अभिनव[ग] उत्साह का संचार करने लगा। अनेक भव्यों के मन में त्याग तप करने की लहरें उठने लगी। कोई उपवास कर रहा है तो कोई बेला, कोई तेला तो कोई पौषध। त्याग तप की एक लहर सी आ गयी।

भगवान महावीर[162] की दिव्य देशना में भव्यों का मन त्याग के झूले झूलने लगा। एक उपदेश श्रवण करके कोई संसार का त्याग कर अणगार[घ] बन रहा है तो कोई श्रावकव्रतों को अंगीकार कर रहा है[163]। कोई क्रोध की भीषण ज्वाला से निकलकर क्षमा के निर्मल नीर से स्नान कर आत्मा की ताजगी का आनन्द ले रहा है तो कोई अभिमान के हस्ती[ङ] से उतरकर विनय की बस्ती में विचरण कर रहा है। कोई माया के मकड़जाल से निकलकर सरलता की सड़क पर सैर करके चल रहा है तो कोई लोभ के जहरीले नागों से बचकर सन्तोष की सरिता[च] में स्नान कर रहा है। कोई राग की विषम व्याधि को नष्ट कर वीतरागता का अमृत पान कर रहा है तो कोई द्वेष की अग्नि को छोड़कर अद्वेष[छ] की ठण्डी ठण्डी बयार का आनन्द लूट रहा है। कोई मिथ्यात्व के भँवर जाल से निकलकर सम्यक् तप को प्राप्त कर रहा है तो कोई निन्दा की नकारात्मक सोच को हटाकर गुणात्मक दृष्टि को धारण कर रहा है।

एक महापुरुष के पधारने से जबर्दस्त आत्मकल्याण हो रहा है। जन्मों-जन्मों के पापों को धोने का अमूल्य अवसर... अहो! अहो! जिसमें आत्मा की सफाई हो रही है। घर की सफाई प्रतिदिन, बाह्य पुद्गलों की सफाई समय-समय पर लेकिन आत्मा की सफाई अहो! परमात्मा के सान्निध्य में... वाणिज्यग्राम की पुण्यवान् जनता करने में निरत[ज] बनी है। बस एक ही ध्यान... एक ही काम... चलो प्रभु के द्वार... मिले मोक्ष का उपहार, क्या जबर्दस्त ठाठ जिसका लाभ देवगण भी लेने पहुँच रहे हैं। वक्त बीतता जा रहा है और पावन अवसर अपने यौवन की उमंगें लिए चल रहा है। भगवान महावीर के अमृतमय स्वरों का रसपान कर जनता अतीव आत्म-तृप्ति का आनन्द ले रही है। अनेक गीतों की मधुर-ध्वनियाँ सुनकर सभी का मन तृप्त हो रहा था*।

(क) आच्छादित - ढकने **(ख) ठण्डी-ठण्डी बयार** - ठण्डी-ठण्डी हवा **(ग) अभिनव** - नवीन, नया **(घ) अणगार** - साधु **(ङ) हस्ती** - हाथी **(च) सरिता** - नदी **(छ) अद्वेष** - द्वेष रहित **(ज) निरत** - संलग्न

*** स्वर और गीत सम्बन्धी विवरण प्रथम परिशिष्ट (ख) में देखें**

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सोलहवें वर्ष के सन्दर्भ

1. (क) नन्दी वृत्ति / श्री हरिभद्र सूरि / पत्राकार / पत्र 4
   (ख) प्रज्ञापनोपाङ्गम्, पूर्वार्द्ध / पत्राकार / टीका-आचार्य मलयगिरी / प्रका. आगमोदय समिति, बम्बई / सन् 1918 / पद I
   (ग) जिणधम्मो / आचार्य श्री नानेश / प्रका. अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ / पन्द्रहवीं आवृत्ति 2013 / पृष्ठ 10
   (घ) श्री स्थानाङ्ग सूत्र / स्थान 1-4 / पत्राकार / टीका अभयदेव सूरि / प्रका. आगमोदय समिति, मुम्बई / सन् 1919 / प्रथम स्थान
   (ङ) श्री समवायाङ सूत्र / पत्राकार / टीका अभयदेव सूरि / आगमोदय समिति, मुम्बई / सन् 1918 / प्रथम पत्र
   (च) औपपातिक सूत्र / पत्राकार / अभयदेव वृत्ति / सूत्र 16
2. कर्मग्रन्थ 5-6 / श्री देवेन्द्र सूरि विरचित स्वोपज्ञ टीका युक्त / प्रका. श्री जैन धर्म प्रसारक सभा / भावनगर / वि.सं. 1968 / पृष्ठ 61
3. औपपातिक सूत्र / हस्तलिखित / संवत् 1211 / पत्र 42 / यहाँ भगवान शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है- 'महिमावंत कर्मशत्रुना जीतणहार'
4. विशेषणवती / श्री जिनभद्रगणि समाश्रमण / श्री ऋषभदेव केसरीमल संस्था / सन् 1927 / पृष्ठ 14
5. (क) कल्पसूत्र 122, पृष्ठ 198
   (ख) दा एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 718
   (ग) स्थानांग सूत्र, 10/7/7

6. विविध तीर्थ कल्प, पृष्ठ 32

7. पासजिणाओ य होइ वीर जिणो।
अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं चरिमो समुप्पन्नो।।
आवश्यक निर्युक्ति / मलयगिरी / पत्र 241

8. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 1/9

9. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 9/32

10. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 5/9

11. कुमारो हि अपरिणतया कुमारत्वेन एव
श्रमण- संगृहीतचारित्र: कुमार-श्रमण:
उत्तराध्ययन सूत्र / वृहद्वृत्ति पत्र 498

12. उत्तराध्ययन सूत्र / शान्त्याचार्य / प्रका. देवचन्द लाल भाई / सन् 1972 / पृष्ठ 55

13. ओधनिर्युक्ति / हस्तलिखित / पृष्ठ 143

14. दसकालिय सुत्तं / भद्रबाहुकृत निर्युक्ति / अगस्त्यसिंह चूर्णि संशोधक मुनि पुण्य-विजय / प्रका. प्राकृत ग्रन्थ परिषद् / सन् 1973 / पृष्ठ 204-5

15. कुमारोऽपरिणीततया, श्रमणश्च तपस्वितया, बाल ब्रह्मचारी अत्युगतपस्वी चेत्यर्थ:
उत्तराध्ययन / भाग 3 / प्रियदर्शिनी टीका / पृष्ठ 889

16. वृहत्कल्प भाष्य / हस्तलिखित / गाथा 6402 / पृष्ठ 1747

17. सूत्रकृतांग दीपिका / पत्राकार / हस्तलिखित / संवत् 1573 / पत्र 11

18. वृहत्कल्पभाष्य / हस्तलिखित / गाथा 37 / पृष्ठ 15

19. पञ्चवस्तुक / हरिभद्रसूरि कृत / प्रका. देवचन्द लाल भाई / सन् 1927 / पत्र 92

20. वृहत्कल्पभाष्य / हस्तलिखित / गाथा 2714-15 / पृष्ठ 768

21. नाणे दंसण-चरणे मणवयकाओवयारिओ विणओ।
नाणे पंचपयारो मणनाणाईण सद्दहणं।। 1 ।।

भत्ती तह बहुमाणो तद्दिट्ठत्थाण सम्मभावणया।
विहि गहण व् भासोऽवि स ए सो विणओ जिणाभिहिओ।। 2 ।।

प्रवचन सारोद्धार / भाग 1 / रचयिता- श्री नेमिचन्द सूरि / टीका श्री सिद्धसेन सूरि / प्रका. देवचन्द लाल भाई / पत्राकार / पत्र 67

22. वृहत्कल्प भाष्य / हस्तलिखित / गाथा 4976 / पृष्ठ 1360

23. उत्तराध्ययन / वृहद्वृत्ति / पत्र 500

24. तणपणगं पन्नत्तं जिणेहिं कम्मट्ठगंठिमहणेहिं
साली वीही कोद्दव, रायला रण्णे तणाइं च।
इति वचनात् चत्वारि पलालानि साधु प्रस्तरणयोग्यानि।
पंचमं तु दर्भादि प्रासुकं तृणां

(क) प्रवचन सारोद्धार / गाथा 675
(ख) वृहद्वृत्ति / पत्र 501

25. (क) अशोक सम्राट का 12वाँ शिलालेख
(ख) पाषण्डं-व्रतं, तद्योगात् पाषण्डा: शेषव्रतिन।

वृहद्वृत्ति / पत्र 501

(ग) अन्यदर्शिन: परिव्राजकादय:।

उत्तराध्ययन वृत्ति / अभिधान राजेन्द्र कोष भाग-3 / पृष्ठ 961

26. उत्तराध्ययन वृत्ति / अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग 3 / पृष्ठ 961

27. वृहत्कल्पभाष्य / हस्तलिखित / गाथा 4590 / पृष्ठ 1260

28. दशाश्रुत अवचूर्णि / हस्तलिखित / पृष्ठ 18

29. (क) दशाश्रुत अवचूर्णि / हस्तलिखित / पृष्ठ 18
'गोतमकेसिज्ज' शब्द
(ख) उत्तराध्ययन / वृहद्वृत्ति / पत्र 502

30. (क) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 962
(ख) उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 912

31. (क) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 962
(ख) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 915-917

32. उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 919

33. उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 920

34. उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 921-28

35. राग-द्वेष रूपी पाश से बन्धे हुए
उत्तराध्ययन सूत्र/द्वितीय विभाग/भाषान्तरकर्ता - शास्त्री जेठालाल हरिभाई-भावनगर / प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर/वि.सं. 1982/पृष्ठ-180

36. (क) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 963
(ख) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 181
(ग) उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 932

37. वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 962

38. (क) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 964
(ख) उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 941

39. पातञ्जल योग दर्शन तथा हारिभद्री योगविंशिका / संपादक- पं. सुखलाल जी / प्रका. शारदाबेन चीमन भाई एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर / अहमदाबाद / सन् 1991 / पृष्ठ 46

40. (क) वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 964
(ख) सहसा असमीक्षय प्रवर्तत्ते इति साहसिक:। **वृहद्वृत्ति / पत्र 507**

41. वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 964

42. वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 964

43. दिव्य पुरुष / साध्वी श्री चन्द्रावती जी / श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय / उदयपुर / सन् 1974 / पृष्ठ 160

44. वृहद्वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 964

45. (क) उत्तराध्ययन वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 210
(ख) उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 949

46. उत्तराध्ययन / प्रियदर्शिनी टीका / भाग 3 / पृष्ठ 953-54

47. (क) उत्तराध्ययन वृत्ति, अभिधान राजेन्द्र कोष/ भाग 3 / पृष्ठ 965
(ख) अन्धं करोति लोकमित्यंधकारं तस्मिन्नन्धकारे।
उत्तराध्ययन सूत्र / के.सी. ललवाणी / कलकत्ता-6 / 1977 / पेज 285

48. आवश्यक सूत्र / उत्तरार्ध (उत्तर भाग) भद्रबाहुकृत निर्युक्ति हरिभद्रकृत वृत्ति / आगमोदय समिति / सन् 1917 / पत्राकार / पत्र 788

49. उत्तराध्ययन वृत्ति / अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग 3 / पृष्ठ 965

50. उत्तराध्ययन वृत्ति / अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग 3 / पृष्ठ 965

51. घोर इति निर्धृण:। परीषहेन्द्रियकषायाख्यानां रिपूणां विनाशे कर्तव्ये निर्धृण: अन्ये तु आत्मनि निरपेक्षत्वाद् धोरमाहु:।
भगवती अवचूरि / देवचन्द लाल भाई जैन पुस्तकोंद्धार / सन् 1974 / पृष्ठ 9

52. उत्तराध्ययन वृत्ति / अभिधान राजेन्द्र कोष / भाग 3 / पृष्ठ 966

53. उत्तराध्ययन वृत्ति / प्रियदर्शिनी / भाग 3 / पृष्ठ 968

54. श्री राजप्रश्नीय सूत्र / टीका आचार्य मलयगिरी / प्रका. आगमोदय समिति / सन् 1925

55. उत्तराध्ययन सूत्र / अध्ययन 23.

56. पासनाह चरिउं

57. जैन धर्म का मौलिक इतिहास / भाग 1 / श्री हस्तीमल जी म.सा./ प्रकाशक- जैन इतिहास समिति, जयपुर / छठा संस्करण 2002 / पृष्ठ 526-28

58. दर्शन और चिन्तन - भगवान पार्श्वनाथ का विरासत लेख, पृष्ठ 5

59. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास / भाग 2 / पृष्ठ 54-55

60. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास / भाग 2 / पृष्ठ 54-55 / डॉ. मोहनलाल मेहता

61. उत्तरज्झयणाणि / भाग 1/ पृष्ठ 201

62. (क) श्रमण भगवान महावीर / प. श्री कल्याण विजय जी / प्रका. शारदाबेन चीमन भाई एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर / अहमदाबाद / प्र.सं. 2002 / पृष्ठ 147-152

(ख) भगवान महावीर एक अनुशीलन / लेखक- श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. प्रका. श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर / द्वितीय सं. सन् 2000 / पृष्ठ 508-13

63. सर्वस्तोका मन:पर्यवज्ञानिन: / पञ्चविर्ग्रन्थी / प्रज्ञापनोपाङ्ग-तृतीय पद संग्रहणी प्रकरण / सावचूर्णि / रचनाकार - अभयदेव सूरि / प्रका. श्री जैन आत्मानन्द ग्रंथ माला - भावनगर / वि.सं. 1974 / पत्रांक 10

64. पासावच्चिज्जे केसीणाभं कुमार समणे जाइसंपण्णे...
चउद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिकुडे।
रायपसेणइय / पृष्ठ 283

65. ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं - ज्ञातिर्वाज्ञानम्।
जीवसमास प्रकरण। वृत्तिकार मल्लधारी हेमचन्द्र / प्रका. आगमोदय समिति / सन् 1927 / पत्राकार / पत्र 48

66. तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे।
केशीकुमार समणे विज्जाचरणपारगे।।
ओहिनाणसुए बुद्धे, सीस संघ समाउले।
गामाणुगामं रीयन्ते, सावत्थिं नगरिमागए।।
उत्तराध्ययन सूत्र / अध्ययन 23 / गाथा 2-3

67. आवश्यकनिर्युक्तिखचूर्णि / हारिभद्रीय वृत्ति / प्रथमो विभाग: प्रका. देवचन्दलाल भाई जैन पुरस्तकोद्धार / सन् 1965 / पत्राकार / पत्र 364

68. शिव: हस्तिनागपुर राजा **स्थानांग सूत्र / सटीक / उत्तरार्ध / पत्र 431**

69. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 11 उद्देशक 9 / पत्रांक 944-58

70. पुण्य कल्पवृक्ष है। देखिए :- महासती मृगावती / मुनिश्री कल्याणऋषि जी / प्रका. श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया / सन् 1960 / पृष्ठ 12

71. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 9/33/57

72. वियाहपण्णत्ति सुत्रं (मूल पाठ - टिप्पणयुक्त) भाग 2 / पृष्ठ 918-19

73. भगवती विवेचन / भाग 4 / पृष्ठ 1881

74. वनस्पति वृत्ति / हस्तलिखित / पृष्ठ 2

75. भगवती / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 520-569

76. वृहत्कल्प भाष्य / हस्तलिखित / गाथा 6030 / पृष्ठ 1640

77. जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति / उद्देशक 1 / सूत्र 123

78. वृहत्क्षेत्र समास / रचनाकार श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण / टीकाकार - मलयगिरी / प्रका. श्री जैन धर्म प्रसारक सभा / भावनगर / वि.सं. 1977 / पृष्ठ 181-88

79. वियाहपण्णत्ति सुत्तं (मूलपाठ - टिप्पण) भाग 2 / पृष्ठ 524

80. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्र 521

81. हस्तिनापुर की विस्तृत जानकारी हेतु द्रष्टव्य :- परम पावन जैन तीर्थ श्री हस्तिनापुर / लेखक - हीरालाल दुग्गड़ / प्रका. श्री हस्तिनापुर जैन श्वेताम्बर तीर्थ समिति / च.सं. सन् 1993 / पृष्ठ 29

82. भगवती विवेचन / प. घेवरचंद जी / भाग 4 / पृष्ठ 1892

83. अन्तगड सूत्र / वर्ग 2 / हस्तलिखित / पृष्ठ 3

84. (क) वियाहपण्णत्ति सुत्तं (मूल पाठ - टिप्पण) भाग 2 / पृष्ठ 525-26
(ख) औपपातिक सूत्र / 43 / पत्र 112 (आगमोदय)

85. ज्ञाताधर्मकथांग / टीका - अभयदेव सूरि / आगमोदय समिति मुम्बई / सन् 1919 / अध्ययन 5

86. जीतकल्प सूत्र / श्री जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण / वि.सं. 1994 / गाथा 714 / पृष्ठ 63

87. महानतिशयेन विकृष्टो गरीयान् देह शरीराभोग इति
यावत् येषां ते महाविदेहा:
वृहत्क्षेत्र समास / रचनाकार श्री जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण टीका - मलयगिरी / प्रकाशक - जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर / वि.सं. 1977 / पत्राकार / पत्र 19

88. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 3/1

89. प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्द्ध / टीका. आचार्य मलयगिरी / प्रकाशक - आगमोदय समिति बम्बई / सन् 1918 / द्वितीय पद

90. जीवाजीवाभिगम सूत्र / आ. मलयगिरी / प्रकाशक- आगमोदय समिति बम्बई / प्र. संस्करण / सन् 1919 / तृतीय प्रतिपत्ति

91. श्री वृहत्संग्रहणी सूत्र / अनुवादक - यशोविजय जी / प्रकाशक- जैन साहित्य मन्दिर पालीतणा / प्र.सं. सन् 1993 / गाथा 46 / जैन 109

92. भवनद्धार का थोकड़ा / अनुवादक श्री घेवरचन्द बाँठिया / प्रकाशक - राज भंसाली यूएसए / सं. 2005 / पृष्ठ 39
93. भगवती सूत्र / श्री अभयदेव वृत्ति / शतक 2/8
94. जीवाजीवाभिगम / आ. मलयगिरी / तृतीय प्रतिपत्ति
95. अनुयोगद्धार चूर्णि / हरिभद्र वृत्ति / श्री ऋषभदेव केसरीमल संस्था - रतलाम / सन् 1928 / पृष्ठ 67
96. जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति
97. जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति
98. जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति
99. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 2/8
100. भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 35
101. भगवती सूत्र / श्री अभयदेव वृत्ति / शतक 2/8 / पत्रांक 145-46
102. भगवती सूत्र / श्री अभयदेव वृत्ति / शतक 2/8 / पत्रांक 145-46
103. भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 36-38
104. (क) भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 36-38
(ख) भगवती सूत्र / 2-8
105. सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यप:।
नाथान्वयोवर्धमानो यत्तीर्थमिहसाम्प्रतम्।।

धनञ्जय नाम माला / 115

106. भगवती सूत्र / टीकानुवाद पं. बेचरदास जी / खण्ड 2 / पृष्ठ 10
107. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 154
108. भत्तीइ जिणवराणं खिज्जंति पुव्वसंचिआ कम्मा।
आयरिअनमुक्कारेण विज्जा मंता य सिज्झंति।।
निर्युक्ति संग्रह / आवश्यक-निर्युक्ति / रचयिता - श्री भद्रबाहु स्वामी / प्रकाशक श्री हर्ष पुषपामृत जैन ग्रन्थमाला / लाखाबावल शांतिपुरी (सौराष्ट्र) गाथा 1110 / पृष्ठ 110

109. (क) भगवती सूत्र के थोकड़े / द्वितीय भाग / पृष्ठ 1
(ख) भगवती सूत्र / टीकानुवाद - पं. बेचरदास जी / खण्ड 2 / पृष्ठ 3
(ग) समवायांग 11वाँ समवाय

110. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 154-55

111. प्रज्ञापनोपाङ्गम् पूर्वार्ध / द्वितीय पद

112. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 16/9

113. (क) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रति पद
(ख) भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 39-40

114. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 157
(ख) स्थानांग सूत्र / उत्तरार्ध / स्थान 10
(ग) ज्ञाता सूत्र / वर्ग 2 / अध्ययन 1-5
(घ) विशिष्टं रोचनं-दीपनं (कान्तिः) येषामस्ति ते वैरोचना
औदीच्या असुराः तेषु मध्ये इन्द्रः परमेश्वरो वैरोचनेन्द्रः।
भगवती / अभयदेव-वृत्ति / पत्रांक 157 / स्थानांग वृत्ति

115. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) स्थानाङ्ग सूत्र

116. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

117. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

118. वृहत्संग्रहणी / गाथा 27-28 / पृष्ठ 86-87

119. भगवती सूत्र / श्री अभयदेव वृत्ति / 3/1

120. भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 40-41

121. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) भवनद्धार का थोकड़ा / पृष्ठ 41-44

122. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

123. प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद

124. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

125. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

126. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 157-58

127. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1
(ख) तत्त्वार्थ सूत्र अध्ययन 4 / सूत्र 6 एव 11 का भाष्य / पृष्ठ 92

128. वृहत्संग्रहणी / मलयगिरी वृत्ति / प्रका. जैन आत्मानन्द सभा / वि.सं. 1973 / पृष्ठ 46

129. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

130. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

131. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 159
(ख) भगवती सूत्र / टीका - गुजराती अनुवाद / पं. बेचरदास जी खण्ड 2 / पृष्ठ 19

132. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

133. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

134. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

135. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

136. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

137. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

138. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

139. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

140. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

141. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

142. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

143. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

144. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

145. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

146. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

147. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

148. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

149. (क) प्रज्ञापनोपाङ्गम् / पूर्वार्ध / द्वितीय पद
(ख) जीवाजीवाभिगम / तृतीय प्रतिपत्ति

150. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1

151. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / 3/1 / पत्रांक 162-163
(ख) रायपसेणीय सुत्तं / पत्र 44 से 54 तक का सार

152. भगवती सूत्र / पत्रांक 164

153. भगवती सूत्र / प्रमेयचन्द टीका / भाग 3 / श्री घासीलाल जी म.सा. / पृष्ठ 215

154. भगवती विवेचन / पं. घेवरचन्द जी / भाग 2 / पृष्ठ 587

155. वियाहपण्णत्ति सुत्तं / मूलपाठ टिप्पण युक्त / 3/1

156. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 167
(ख) भगवती सूत्र / प्रमेयचन्द टीका / श्री घासीलाल जी म.सा. / भाग 3 / पृष्ठ 283-84

157. (क) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 169

(ख) भगवती विवेचन/ पं. घेवरचन्द जी म.सा. / भाग 2 / पृष्ठ 598-600

158. भगवती सूत्र / प्रमेयचन्द्रिका टीका / श्री घासीलाल जी म.सा. / भाग 3 / पृष्ठ 299

159. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 169

160. श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याण विजय जी / पृष्ठ 157

161. भगवान महावीर एक अनुशीलन / श्री देवन्द्र मुनि जी म.सा. / पृष्ठ 517

162. दशवैकालिक सूत्र / सावचूरि / श्री हस्तीमल्ल जी महाराज कृत / प्रका. रायबहादुर मोतीलाल बालमुकुन्द मूथा, सतारा / पत्राकार / पत्र 39

163. भगवान महावीर एक परिचय / लेखक - गणेश मुनि शास्त्री / प्रका. अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर / प्र.सं. 1974 / पृष्ठ 30

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सोलहवें वर्ष के टिप्पण

I	भगवान महावीर
II	मिथिला
III	हस्तिनापुर
IV	श्रावस्ती
V	कोष्ठक
VI	तिन्दुक
VII	श्रमण
VIII	पराल-पलाल
IX	महाभाग
X	गौतम
XI	बहिद्धादान त्याग महाव्रत
XII	पाँच महाव्रत
XIII	सान्तरोत्तर धर्म
XIV	अचेलक धर्म
XV	साधु वेष
XVI	हजारों शत्रु कौन
XVII	कुप्रवचन
XVIII	द्वीप
XIX	निर्मल सूर्य
XX	विभंग ज्ञान
XXI	सिद्धों के संहनन आदि
XXII	मोका नगरी
XXIII	नन्दन चैत्य
XXIV	द्वितीय गणधर
XXV	विकुर्वणा विक्रिया
XXVI	लोकपाल
XXVII	अग्रमहिषियों
XXVIII	वैरोचनेन्द्र
XXIX	धरणेन्द्र
XXX	शराव
XXXI	मौर्यपुत्र
XXXII	प्रणामा
XXXIII	तामली-तापस

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सोलहवें वर्ष के टिप्पण

I भगवान महावीर :-

पार्श्वनाथ स्वामी की उत्पत्ति के पश्चात् 278 वर्ष बीत जाने पर वर्धमान तीर्थंकर अवतीर्ण हुए। चूंकि पार्श्वनाथ का कुमार काल 30 वर्ष व भगवान महावीर का कुमार काल भी 30 वर्ष का था। छद्मस्थ काल पार्श्वनाथ भगवान का 4 मास व वर्धमान का 12 वर्ष का था, अत: केवलज्ञान का अंतरकाल वर्धमान का 289 वर्ष 8 मास का था। {(278 वर्ष - 4 मास) + 12 वर्ष}

देखें तिलोयपन्नत्ति अधिकार 4/गाथा 577, 584, 678

II मिथिला :-

प्राचीन नगरियों में मिथिला का महत्वपूर्ण स्थान था। यह विदेह जनपद की राजधानी थी। विदेह राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में गंडकी और पूर्व में मही नदी तक थी। जातक ग्रन्थों में इसका विस्तार 300 योजन बतलाया गया है[1]। इसमें 16000 गाँव थे[2]। 'सुरुचि जातक' में मिथिला के विस्तार का उल्लेख है। वाराणसी के राजा ने यह निर्णय लिया कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसी राजपुत्र के साथ करेगा जो कि एक पत्नीव्रत का पालन करेगा। मिथिला के राजकुमार सुरुचि के साथ विवाह की वार्ता चल रही थी। एक पत्नीव्रत की बात को सुनकर वहाँ के मंत्रियों ने कहा- मिथिला का विस्तार सात योजन है। समूचे राष्ट्र का विस्तार तीन सौ योजन है। हमारा राज्य बहुत बड़ा है। ऐसे राज्य में राजा के अन्त:पुर में सोलह हजार रानियाँ अवश्य होनी चाहिए[3]।

रामायण में मिथिला को जनकपुरी के नाम से संबोधित किया गया है। विविध तीर्थकल्प में इस देश को 'तिरहुति' कहा गया है[4] और मिथिला को

जगती (जगई) कहा गया है[5]। इसके समीप में ही महाराजा जनक के भ्राता कनक के नाम से कनकपुर बसा हुआ है[6]। मिथिला से ही जैन श्रमणों की शाखा मैथिलिया निकली[7]।

मिथिला शब्द से इस नाम की नगरी और इसके आसपास का प्रदेश दोनों अर्थ प्रकट होते हैं। ऐसे तो मिथिला को विदेह जनपद की राजधानी बतलाया है तथापि भगवान महावीर के समय विदेह की राजधानी वैशाली थी। फिर भी यह स्पष्ट है कि मिथिला भी एक समृद्ध नगरी थी। तत्कालीन मिथिला के राजा का नाम जैन ग्रन्थों में जनक लिखा है। इससे अनुमान लगता है कि जनक वंशीय किसी क्षत्रिय का मिथिला पर तब तक स्वामित्व रहा होगा।

भगवान महावीर के चातुर्मास के केन्द्रों में मिथिला की गणना थी। भगवान ने यहाँ पर 6 चातुर्मास किये[8]। वर्तमान में सीतामढ़ी के पास मुहिल नामक स्थान ही प्राचीन मिथिला का अपभ्रंश है[9]। वैशाली से मिथिला उत्तर पूर्व में अड़तालीस मील पर अवस्थित थी। कई विद्वान सीतामढ़ी को ही मिथिला कहते हैं और कई जनकपुर को प्राचीन मिथिला मानते हैं, जो कि वर्तमान में नेपाल की सीमा के अंतर्गत बिहार के मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले की सीमा के पास है।

यह मिथिला आठवें गणधर अकम्पित की जन्मभूमि थी[10]। प्रत्येक बुद्ध नमि को कंकण की ध्वनि सुनकर यहीं पर वैराग्य पैदा हुआ था[11]। चतुर्थ निह्नव अश्वमित्र ने वीर निर्वाण के 220 वर्ष पश्चात् 'सामुच्छेदिक वाद' का यहीं प्रवर्तन किया था[12]। देश पूर्वधारी आर्य महागिरी का यह मुख्य रूप से विहार क्षेत्र था[13]। वाणगंगा और गंडक नाम की नदियाँ इस नगर को परिवेष्टित करके बहती थी[14]। जैन आगमों में वर्णित दस राजधानियों में मिथिला का भी नाम है[15]।

मिथिला उस समय एक समृद्ध राष्ट्र था। जिनद्रभसूरि के समय वहाँ का प्रत्येक घर कदलीवन से सुशोभित था। खीर यहाँ का मुख्य भोजन माना जाता था। इसमें स्थान-स्थान पर वापी, कूप और तालाब मिलते थे। यहाँ की सामान्य जनता भी संस्कृत भाषा की ज्ञाता थी। यहाँ के लोग धर्मशास्त्रों में निपुण थे[16]।

ईस्वी सन् की 9वीं शताब्दी में यहाँ प्रकाण्ड पंडित मंडनमिश्र निवास करते थे, जिनकी पत्नी भामती ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। महान नैयानिक वाचस्पति मिश्र की यह जन्मभूमि थी और मैथिल कवि विद्यापति यहाँ के राज दरबार में रहते थे।

इस प्रकार कह सकते हैं कि मिथिला नगरी उस समय की चर्चित नगरियों में से एक थी।

1. सुरुचि जातक (सं. 489) भाग 4, पृष्ठ 521-22
2. जातक (सं. 406) भाग 4, पृष्ठ 273
3. जातक, सं. 489, भाग 4 पृष्ठ 521-22
4. संपइकाले तिरहुति देसोत्ति भण्णई। विविध तीर्थकल्प पृष्ठ 32
5. संपइकाले तिरहुति देसोत्ति भण्णई। विविध तीर्थकल्प पृष्ठ 32
6. संपइकाले तिरहुति देसोत्ति भण्णई। विविध तीर्थकल्प पृष्ठ 32
7. कल्प सूत्र 213, पृष्ठ 298
8. कल्प सूत्र 122, पृष्ठ 198
9. दी एन्शिएंट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृष्ठ 718
10. गणधर वाद, दलसुख मालवणिया
11. उत्तराध्ययन, सुखबोधा, पत्र 136-43
12. आवश्यक भाष्य, गाथा 131
13. आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 782
14. विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ 32
15. स्थानांग सूत्र, 10/7/7
16. विविध तीर्थकल्प, पृष्ठ 32

III हस्तिनापुर :-

हस्तिनापुर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में 29.3° उत्तर अक्षांश तथा 78.1° पूर्व देशान्तर पर स्थित है। इसकी गणना भारत के प्राचीनतम ऐतिहासिक स्थलों में है। चिरकाल तक यह नगर एक प्रमुख राजनैतिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र एवं अनेक आश्चर्यों का आगार रहा है, किंतु इधर शताब्दियों से यह एक विस्तृत वनखण्ड के रूप में परिवर्तित हो गया है। इस वनखण्ड के दक्षिण और पश्चिमी भागों में जहाँ-तहाँ कुछ गाँव पाये जाते हैं, किंतु उनका अधिकतर भाग अब भी निर्जन है। वस्तुत: कल्पना करना भी कठिन प्रतीत होता है कि किसी समय इसी स्थान पर एक अत्यन्त विशाल नगर विद्यमान रहा होगा, जो दीर्घकाल तक उत्तर भारत का एक प्रमुख नगर एवं व्यापारिक केन्द्र था। हिन्दू मान्यता के अनुसार जिस प्रकार त्रेता युग में प्रधान राजधानी अयोध्या थी और कलियुग में दिल्ली है, उसी प्रकार द्वापर का प्रधान राजनैतिक केन्द्र हस्तिनापुर था।

प्राचीन हस्तिनापुर भागीरथी-गंगा के दक्षिणी पश्चिमी तट पर स्थित

था। वासुदेव हिंडी तथा विविध तीर्थकल्प में हस्तिनापुर को भागीरथी नदी के किनारे बतलाया गया है। परन्तु गंगा का रुख बदल जाने से गंगा की पुरानी धारा हस्तिनापुर से लगभग नौ मील दूर है। मवाना नगर मेरठ-हस्तिनापुर मार्ग पर मेरठ नगर से 22 मील उत्तर-पूरब में स्थित है। यह स्थान प्राचीन काल में हस्तिनापुर दुर्ग का प्रमुख द्वार था। जिसके कारण इसका नाम मवाना या मुहाना पड़ा। उसी दिशा में मेरठ से लगभग छह मील की दूरी पर सैनी (मुजफ्फरनगर सैनी) नामक गाँव स्थित है। इसके बीचों बीच एक ऊँचे स्थान पर ईंट चूने का बना हुआ निरीक्षण स्तम्भ (वाच टावर) है, जो संभवतया हस्तिनापुर दुर्ग का पहला बाहरी उपद्वार (आउट पोस्ट) था। डॉ. फुहरर तो इसे ही हस्तिनापुर का महान् द्वार कहते हैं।

इस समय हस्तिनापुर बूढ़ी गंगा के ऊँचे किनारे पर मवाना से छह मील और मेरठ से 22 मील उत्तर पूर्व की ओर स्थित है और मवाना तहसील में एक परगना है। प्रतीत होता है कि प्राचीन हस्तिनापुर को गंगा ने काटकर बहा दिया था। महाभारत के समय में हस्तिनापुर एक अति प्रसिद्ध नगर था।

सन् ईस्वी 1881 की मनुष्य गणना में हस्तिनापुर में केवल 28 मनुष्य आबाद थे। 27 हिन्दू तथा एक मुसलमान, उस समय यहाँ मात्र एक शिव मंदिर था, संन्यासी लोग उसमें रहते थे। कुछ जैन स्तूपादि भी थे। इससे पहले गंगा ने हस्तिनापुर को अपनी चपेट में लेकर ध्वस्त कर दिया था।

अपनी उन्नति के समय यह एक विशाल, समृद्ध नगर था। इसमें सुदृढ़ दुर्ग, भव्य राजमहल, अनगिनत गगनचुम्बी भवन तथा बहुत संख्या में देव-मंदिर थे। यह नगर सुयोजित हाट बाजारों, भागीरथ नदी पर के घाटों तथा सुन्दर उद्यान वाटिकाओं से शोभायमान रहा होगा। दुर्भाग्य से इस वैभवशाली महानगर की अब कोई ऐसी वस्तु नहीं बची जो इस नगर के बीच प्राचीन वैभव का प्रत्यक्ष दर्शन कराती। जो कुछ शेष है वह इसका चिर स्मरणीय नाम और कीर्ति गाथाएँ। परवर्तीकाल में यहाँ निर्मित कुछ इमारतों के भग्नावशेष खण्डहर तथा ऊँचे-नीचे टीलों की दूर से दिखलाई देती हुई शृंखलाएँ अपने उदर में न जाने इस नगर की कितनी निधियाँ छुपाये हुए हैं। इन प्राचीन टीलों सहित इस निर्जन वन्य प्रदेश का दृश्य अत्यन्त मनोहर है। अपनी प्राकृतिक सुषमा एवं शान्त वातावरण के कारण यह स्थान नगर के उजाड़ हो जाने पर आदर्श तपोभूमि बन गया है।

महाभोगियों की वैभवशाली महानगरी ने महायोगियों के विराग सम्पन्न तपोवन का स्थान ले लिया है। अपने चिरकालीन इतिहास में भोग और वैराग्य की प्रचुर गाथाएँ छिपाये हुए आज यह स्थान धर्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।

कहने का आशय यह है कि धार्मिक ग्रन्थों में इस नगर को जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, उससे स्पष्ट है कि भारत के ऐतिहासिक काल से बहुत पहले यह नगर खूब प्रसिद्ध हो चुका था। जैनागमों के अनुसार तो कर्मभूमि के आरम्भ में भारतवर्ष की आदि नगरियों अयोध्या और काशी के साथ ही गजपुर (हस्तिनापुर) का निर्माण हो चुका था। यह वह समय था, जब भोगभूमि के अवसान पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने उद्यम प्रधान कर्म-युग का प्रारम्भ किया था।

ऐसा भी उल्लेख है कि श्री ऋषभदेव तथा उनके 98 पुत्रों के दीक्षा लेने के बाद कुरुक्षेत्र का राज्य बाहुबलि के अधिकार में आ गया होगा, क्योंकि वासुदेव हिण्डी में लिखा है ''बाहुबलि को तक्षशिला और हस्तिनापुर का राज्य प्राप्त हुआ।'' भरत ने चक्रवर्ती पद पाने के लिए अपने छोटे भाई बाहुबलि से युद्ध छेड़ा पर वह बाहुबलि को पराजित नहीं कर सका। तब बाहुबलि ने अपने बड़े भाई भरत को पिता-तुल्य मानकर उसे अपना राज्य सहर्ष सौंप दिया और स्वयं दीक्षा ले ली।

तब भरत चक्रवर्ती ने बाहुबलि के राज्य का अधिकार बाहुबलि के पुत्र सोमप्रभ को सौंपकर उसे सिंहासनारूढ़ किया। अब भरत, चक्रवर्ती होकर भरत-क्षेत्र का एकछत्र राजा हुआ और अयोध्या को अपनी राजधानी बनाकर आनन्दपूर्वक रहने लगा।

परम पावन जैन तीर्थ श्री हस्तिनापुर / लेखक- पं. हीरालाल दुग्गड़/पृष्ठ 30-32

IV श्रावस्ती :-

यह कौशल राज्य की राजधानी थी। आधुनिक विद्वानों ने इसकी पहिचान सहेट-महेट ग्राम से की है। वर्तमान में सहेट गोंडा जिले में तथा महेट बहराइच जिले में है। सहेट दक्षिण में तथा महेट उत्तर में है[1]। यह स्थान बलरामपुर स्टेशन से उत्तर पूर्वी रेलवे से जो सड़क जाती है, उससे 10 मील दूर है। बहराइच से यह 29 मील पर स्थित है।

अन्य विद्वानों का इस सन्दर्भ में दूसरा अभिमत है। विद्वान बी. स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजूरा में है। वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तरपूर्वीय दिशा में है[2]। चीनी यात्री युआन

चुवाङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है। उसका विस्तार छह हजार ली और उसकी राजधानी को 'प्रासाद' नगर कहा है, जिसका विस्तार बीसली माना है[3]। इसमें बहुत कम पानी रहता था, जिसको पार करके जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे[4]। कभी-कभी इसमें बहुत अधिक बाढ़ भी आ जाती थी[5]।

श्रावस्ती उस समय की ऐतिहासिक नगरी थी, जो कि बौद्ध और जैन संस्कृति का केन्द्र स्थल थी। इसी श्रावस्ती नगरी में केशी और गौतम का ऐतिहासिक संवाद हुआ[6]। भगवान महावीर ने छद्मस्थावस्था का दसवाँ चातुर्मास यहीं पर किया। केवलज्ञान होने के पश्चात् कई बार भगवान यहाँ पधारे और उन्होंने अनेक भव्यात्माओं को प्रव्रज्या प्रदान की। अनेक व्यक्तियों को उपासक बनाया। इसी श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान में गोशालक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियों को मारा था और भगवान पर भी तेजोलेश्या फेंकी थी। गोशालक का परम उपासक अयंपुल और हालाहला कुम्हारिन यहीं की रहने वाली थी।

1. दी एन्शिएंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया /पृष्ठ 469-74
2. जर्नल ऑफ रोयल एशियाटिक सोसायटी, भाग 1 / जनवरी 1900
3. युआन चुआङ्गस ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग 1 पृष्ठ 377
4. (क) कल्प सूत्र
(ख) वृहत्कल्प सूत्र, 4/33
(ग) वृहत्कल्प भाष्य 4/5639-5653
5. (क) आवश्यक चूर्णि, पृष्ठ 601
(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पृष्ठ 465
(ग) आवश्यक मलयगिरी, पृष्ठ 567
(घ) टौनी का कथाकोश, पृष्ठ 6
6. उत्तराध्ययन / अध्ययन 23

V कोष्ठक :-

वृहद् वृत्तिकार के अनुसार क्रोष्टुक रूप है और अन्य टीकाओं में कोष्ठक रूप है

(क) क्रोष्टुकं नाम उद्यानम्।
(ख) कोष्ठकं नाम उद्यानम्।

उत्तराध्ययन / विवेचन मुनि नथमल / भाग 1 पृष्ठ 303
वृहद्वृति / पत्रांक 499

VI तिन्दुक उद्यान :-

श्रावस्ती का वह उद्यान जहाँ पार्श्व संतानीय केशीकुमार श्रमण ठहरे थे और इन्द्रभूति गौतम ने उनके साथ धर्मचर्चा की थी।

यह घटना उस समय की है, जब पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष पधार चुके थे और भगवान महावीर विचरण कर रहे थे। भगवान पार्श्वनाथ का मोक्ष गमन अध्ययन 23 की प्रथम गाथा में आये हुए द्वितीय जिन शब्द से सूचित होता है।

वृहद् वृत्ति / पत्र 498

VII श्रमण :-

श्रमण का प्राकृत रूप समण तथा संस्कृत रूप समण, समनस्, श्रमण और शमन हो सकता है।

समण का अर्थ है सब जीवों को आत्म तुला की दृष्टि से देखने वाला समतासेवी[1]। समनस् का अर्थ है राग-द्वेष रहित मनवाला - मध्यस्थ वृत्ति[2]। ये दोनों आगम और निर्युक्ति कालीन निरुक्त हैं। इनका सम्बन्ध 'सम' (सममणति और सममनस्) शब्द से ही रहा है। स्थानाङ्ग टीका में समन का अर्थ पवित्र मन वाला किया गया है[3]।

टीकाकारों ने 'श्रमण' को श्रम धातु से जोड़ा है और उसका संस्कृत रूप बना 'श्रमण'। उसका अर्थ किया है- तपस्या से खिन्न[4], क्षीणकाय तपस्वी[5]। श्रमण कैसा होना चाहिए इसको आगम और निर्युक्ति में उपमा द्वारा समझाया है[6]। सूत्रकृतांग सूत्र में श्रमण की व्यापक परिभाषा करते हुए कहा गया है ''जो अनिश्रित, अनिदान-फलाशंसा से रहित, आदान रहित, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्त, मैथुन और परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष और सभी आस्रवों से विरत, दान्त, द्रव्यमुक्त होने के योग्य, शरीर के प्रति अनासक्त है, वह श्रमण कहलाता है[7]।

'समण' भिक्षु का पर्यायवाची है। भिक्षु के चौदह नाम हैं यथा- श्रमण, माहन-ब्रह्मचारी या ब्राह्मण, क्षान्त, दान्त, गुप्त, मुक्त, ऋषि, मुनि, कृती-परमार्थ पंडित, विद्वान, भिक्षु, रुक्ष, तीरार्थी और चरण-करण पारविद्[8]।

निर्युक्ति के अनुसार- प्रव्रजित, अणगार, पाखण्डी, चरक, तापस, परिव्राजक, समण, निर्ग्रन्थ, संयत, मुक्त, तीर्ण, त्राता, द्रव्य, मुनि, क्षान्त, दान्त, विरत, रुक्ष और तीरार्थी ये समण के पर्यायवाची नाम हैं[9]।

श्रमण पाँच प्रकार के हैं यथा निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गेरुक्य और आजीवक[10]।

1. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा - 154
2. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा - 155-59
3. स्थानांग सूत्र / अभयदेव टीका 4/4/393 / पत्रांक 298
4. (क) श्रम तपसि खेदे
   (ख) सूत्रकृतांग/शीलाकाचार्य वृत्ति/1/19/1/पत्रांक 293
5. दशवैकालिक / हारिभद्रीय टीका / पत्रांक 98
6. दशवैकालिक / निर्युक्ति गाथा 157
7. सूत्रकृतांग / सूत्र 1/19/2
8. सूत्राकृतांग 2/1/15
9. दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा 158-59
10. दशवैकालिक / हारिभद्रीय टीका / पत्र 98

VIII पराल-पलाल :-

साधुओं के बिछाने योग्य प्रासुक-अचित्त और एषणीय अथवा पलाल-अनाज को कूटकर उसके दाने निकालने के बाद बचा घास तृण।

प्रवचन सारोद्धार के अनुसार पलाल पाँच प्रकार के हैं :-

1. **शाली :-** कलमशाली आदि विशिष्ट चावलों का पलाल।
2. **व्रीहिक :-** साठी चावल आदि का पलाल।
3. **कोद्रिव :-** कोदो धान्य का पलाल।
4. **रालक :-** कंगू या कांगणी का पलाल।
5. **अरण्यतृण :-** श्यामाक - सांवा चावल आदि का पलाल।

उत्तराध्ययन सूत्र में पाँचवां कुश का तृण घास बतलाया गया है।

प्रवचन सारोद्धार गाथा 675 / वृहद्वृत्ति / पत्रांक 501

IX महाभाग :-

यह सम्बोधन श्रेष्ठ वचन का द्योतक है। चार प्रकार के वचन श्रेष्ठ हैं यथा:-

1. आदिज्ज वयण 2. महुखयण 3. अणिसियवयण 4. फुडवयण

दशा श्रुत स्कन्ध मूल निर्युक्तिचूर्णि / मुद्रक शाह गुलाबचन्द लल्लु भाई । श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस । भावनगर, पत्राकार / पत्र 19

X गौतम :-

भगवान महावीर के पट्टशिष्य प्रथम गणधर इन्द्रभूति थे। ये गौतम गोत्रीय थे। आगमों में यत्र-तत्र गौतम नाम से ही इनका उल्लेख हुआ है, जैन जगत में ये गौतम-स्वामी के नाम से विख्यात हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र / वृहद्वृत्ति / पत्रांक 499

XI बहिद्धादान त्याग महाव्रत :-

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि भगवान पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म में ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन दो शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। उन्होंने वहाँ पर बाह्य वस्तुओं की अनासक्ति को व्यक्त करने वाला 'बहिद्धादान विरमण-व्रत' शब्द लिखा है। महाव्रत के रूप में ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग तथा अपरिग्रह शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक काल में सर्वप्रथम भगवान महावीर ने किया। यद्यपि याज्ञवल्क्योपनिषद[1], आरुणिकोपनिषद्[2], जावालोपनिषद्[3], नारद-परिव्राजकोपनिषद्[4], तेजोबिन्दूपनिषद्[5], योगशास्त्र[6] आदि ग्रन्थों में अपरिग्रह शब्द का प्रयोग हुआ, लेकिन वे सारे ग्रन्थ भगवान महावीर के बाद के हैं, ऐसा ऐतिहासिक विद्वानों का मन्तव्य है। भगवान महावीर के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अपरिग्रह शब्द का प्रयोग महान् व्रत के रूप में नहीं हुआ है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने पंच महाव्रत रूप धर्म का निरूपण किया। इस संबंध में डॉ. हर्मन जैकोबी की भ्रान्त धारणा है। उन्होंने लिखा है कि जैनों ने अपने व्रत ब्राह्मणों से उधार लिये हैं[7]। उनका ऐसा मानना है कि ब्राह्मण संन्यासी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, सन्तोष और मुक्तता इन व्रतों का पालन करते थे। उन्हीं का अनुसरण जैनियों ने किया। डॉ. जैकोबी की यह कल्पना निर्मूल है। इसका कोई ठोस आधार नहीं है। प्रागैतिहासिक समय से ही जैनों में महाव्रत परम्परा चली आ रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान पार्श्वनाथ के समय में भी यह महाव्रत परम्परा थी। भगवान महावीर ने भी इसी परम्परा को विकसित किया। भगवान महावीर की इस परम्परा को तथागत बुद्ध ने अष्टाङ्गिक मार्ग के रूप में स्वीकार किया और योग दर्शन में उसे यम-नियमों के रूप में ग्रहण किया गया है। गाँधीजी के आश्रम धर्म की आधारशिला भी यही है, ऐसा धर्मानन्द कौशाम्बी का भी मानना है[8]। इस संदर्भ में 'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि हिन्दू और जैन धर्म परस्पर में घुल मिलकर इतने

एकाकार हो गये हैं कि आज सामान्य हिन्दू जानता भी नहीं है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैन धर्म के उपदेश हैं न कि हिन्दुत्व के[9]। अत: इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट है कि महाव्रतों की मूल परम्परा का स्रोत श्रमण संस्कृति है[10]।

1. याज्ञवल्क्योपनिषद् 2/1
2. आरुणिकोपनिषद् 3
3. जाबालोपनिषद् 5
4. नारद परिव्राजकोपनिषद 3/8/6
5. तेजोबिन्दुपनिषद् 1/3
6. योग सूत्र 2/30
7. It is therefore probable that the Jains have borrowed their own vows from the Brahmans, not from the Buddhists. The Sacred Books of the East, Vol. XXII Introduction p. 24.
8. भगवान पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म / भूमिका / पृष्ठ 6
9. संस्कृति के चार अध्याय / पृष्ठ 125
10. उत्तराध्ययन 23/58

XII पाँच महाव्रत :-

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। संभव है, भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष-गमन के पश्चात् युग परिवर्तन के साथ कुछ कुतर्क उठे होंगे कि स्त्री को विधिवत् परिग्रहित किये बिना भी उसकी प्रार्थना पर उसकी रजामंदी से समागम किया जाये तो क्या हानि? अपरिग्रहिता से समागम का निषेध तो नहीं है। सूत्रकृतांग सूत्र के गाथा संख्या 1, 3, 4/10-11-12 में कुयुक्तियों सहित ऐसी ही एक मिथ्या मान्यता प्रस्तुत की गयी है। सूत्रकृतांग में इन्हें पार्श्वस्थ तथा वृत्तिकार शीलांक ने इन्हें स्वयूथिक बतलाया है। इसी कारण भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य को पृथक् स्थान दिया है।

XIII सान्तरोत्तर धर्म :-

सान्तरोत्तर धर्म भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित है। सान्तरोत्तर के

विभिन्न आगमों में तीन अर्थ मिलते हैं :-

1. वृहद्वृत्तिकार के अनुसार सान्तर का अर्थ विशिष्ट अन्तर यानी प्रधान-सहित है और उत्तर का अर्थ नानावर्ण के बहुमूल्य और प्रलम्ब वस्त्र सहित।
2. आचारांग सूत्र की वृत्ति के अनुसार सान्तर का अर्थ विभिन्न अवसरों पर तथा उत्तर का अर्थ प्रावरणीय। तात्पर्य यह है कि मुनि अपनी आत्म-शक्ति को तौलने के लिए कभी वस्त्र का उपयोग करता है और कभी शीतादि की आशंका से केवल पास में रखता है।
3. ओघ-निर्युक्ति, कल्पसूत्र चूर्णि आदि में वर्षा आदि प्रसंगों में सूती वस्त्र को भीतर और ऊपर ऊनी वस्त्र ओढ़कर भिक्षादि के लिए जाने वाला।

सान्तरोत्तर का शब्दानुसारी प्रतिध्वनित अर्थ अन्तर-अन्तरीय (अधोवस्त्र) और उत्तर-उत्तरीय ऊपर का वस्त्र भी किया जा सकता है।

XIV अचेलक धर्म :-

1. वह धर्म साधना जिसमें बिलकुल ही वस्त्र न रखा जाता हो अथवा 2. अचेलक[1] जिसमें अल्प मूल्य वाले जीर्णप्राय एवं साधारण प्रमाणोपेत श्वेत वस्त्र रखे जाते हों। नञ् समास में 'अ' का अर्थ अभाव अथवा अल्प होता है।

आचारांग आदि आगमों में साधना के इन दोनों रूपों का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण में भी जैन मुनियों के निर्वस्त्र और सवस्त्र रूपों का उल्लेख मिलता है। यहाँ भी अचेलक शब्द से निर्वस्त्र अथवा अल्प-वस्त्र अर्थ ध्वनित किया गया है। यह अचेलक-धर्म भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित है।

1. 'अचेल' त्ति अमाधनमूल्यानि खण्डितानि जीर्ण्णानि च वासांसि धारयेत्।

आवश्यक सूत्र अवचूर्णि/हारिभद्रीय-वृत्ति/द्वितीय अध्ययन पत्राकार/पृष्ठ 133

XV साधुवेष :-

यहाँ साधुवेष धारण करने के मुख्य तीन प्रयोजन बतलाये गये हैं यथा-

1. गृहस्थ वर्ग की प्रतीति के लिए, क्योंकि साधुवेष, साधु के केशलोच आदि आचार को देखकर लोगों को विश्वास हो जाता है कि साधु है

अन्यथा अन्य तीर्थिक लोग भी अपनी पूजा प्रतिष्ठा के लिए 'हम भी साधु हैं, महाव्रती हैं', इस प्रकार कहने लगेंगे। ऐसा होने पर सच्चे साधुओं के प्रति अविश्वास हो जायेगा। इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों का विधान है।

2. संयम यात्रा के निर्वाह के लिए साधु-वेष आवश्यक है।

3. **ग्रहणार्थ :-** कदाचित् चित्त में विप्लव या परीषह उत्पन्न होने से संयम में अरति होने पर मैं साधु हूँ, मैंने साधु का वेष पहना है, मैं ऐसा अकार्य नहीं कर सकता, इस प्रकार ज्ञान-ग्रहण के लिए साधुवेष का प्रयोजन है, कहा भी है 'धम्मं रक्खइ वेसो' अर्थात् वेष साधु धर्म की रक्षा करता है।

अभिधान राजेन्द्र कोष/भाग 3/पृ. 962 (ख) उत्तराध्ययन प्रियदर्शिनी टीका/भाग 3/पृ. 915-17

XVI हजारों शत्रु कौन :-

मूल शत्रु क्रोध, मान, माया और लोभ है। सामान्य जीव और 24 दण्डक इन पचीस के साथ 4 को गुणा करने पर प्रत्येक के 100 भेद और चारों कषाय के 400 भेद होते हैं।

क्रोधादि प्रत्येक कषाय अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन के भेद से 4-4 प्रकार के होते हैं। इस प्रकार 16 कषाय को सामान्य जीव और 24 दण्डक से गुणा करने पर 25X16 = 400 भेद होते हैं। प्रज्ञापना सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक कषाय के चार-चार भेद बतलाये गये हैं यथा 1. आभोग-निवर्तित 2. अनाभोग निवर्तित 3. उपशान्त अनुदय प्राप्त 4. अनुपशान्त-उदयावलिका प्रविष्ट, इस प्रकार 4X4 = 16 को पूर्वोक्त 25 के साथ गुणा करने पर 25X16 = 400 भेद होते हैं यथा 1. आत्म-प्रतिष्ठित-स्वनिमित्तक 2. पर प्रतिष्ठित-परनिमित्तक 3. तदुभय प्रतिष्ठित-स्व पर निमित्तक और 4. अप्रतिष्ठित-निराश्रित। इस प्रकार 4X4 = 16 को 25 के साथ गुणा करने पर 400 भेद होते हैं।

करण में कार्य का उपचार करने से कषायों के प्रत्येक के 6-6 भेद होते हैं यथा 1. चय 2. उपचय 3. बन्धन 4. वेदन 5. उदीरणा 6. निर्जरा। इन 6 भेदों को भूत, भविष्य और वर्तमान काल के साथ गुणा करने पर 18 भेद हो जाते हैं। 18 भेदों को एक जीव तथा अनेक जीवों की अपेक्षा, दो के साथ गुणा करने से 36 भेद हो जाते हैं। इनको क्रोधादि चार कषायों के साथ गुणा करने पर 144 भेद

होते हैं। इनको पूर्वोक्त 25 के साथ गुणा करने पर 144X25 = 3600 भेद होते हैं। 3600 और पहले के 1600 मिलाने पर चारों कषायों के 5200 भेद होते हैं।

पाँच इन्द्रियों के 23 विषय और 240 विकार होते हैं। इस प्रकार इन्द्रिय रूप शत्रुओं के 5+23+240 = 268 भेद हुए तथा 5200 कषाय के भेदों के साथ 268 इन्द्रियों के भेदों एवं एक सर्वप्रधान शत्रु मन के भेद को मिलाने से कुल शत्रुओं की संख्या 5469 हुई। इनमें हास्यादि 6 के प्रत्येक 4-4 भेद होने से कुल 24 भेद हुए। इनमें स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद मिलाने से नौ कषायों के कुल 27 भेद हुए। पूर्वोक्त 5469 में 27 मिलाने से 5496 भेद शत्रुओं के हुए। शत्रु शब्द से मिथ्यात्व, अव्रत आदि तथा ज्ञानावरणीय कर्म एवं राग-द्वेष आदि भी लिये जा सकते हैं। इसी कारण यहाँ कई हजार शत्रु बतलाये गये हैं।

XVII कुप्रवचन :-

कुत्सित प्रवचन अर्थात् दर्शन कुप्रवचन है क्योंकि उनमें एकान्त कथन तथा हिंसादि का उपदेश है।

XVIII द्वीप :-

जब केशी श्रमण ने द्वीप आदि के विषय में पूछा तो गौतम स्वामी ने विशाल जिनोक्त रत्नत्रय रूप या श्रुत चारित्र रूप शुद्ध धर्म को ही महाद्वीप बतलाया है। वस्तुत: धर्म इतना विशाल एवं व्यापक द्वीप है कि संसार-समुद्र में डूबते हुए या जन्म-मरणादि विशाल तीव्र प्रवाह में बहते हुए प्राणी को स्थान, शरण, आधार या स्थिरता देने में सक्षम है। संसार के समस्त प्राणियों को वह स्थान शरणादि दे सकता है, वह इतना व्यापक है।

उत्तराध्ययन वृत्ति अभिधान राजेन्द्र कोष/भाग 3/पृष्ठ 965

XIX निर्मल सूर्य :-

निर्मल सूर्य का तात्पर्य यहाँ बाह्य रूप में बादलों से रहित सूर्य है, किंतु आन्तरिक रूप में कर्मरूप मेघ में अनाच्छादित विशुद्ध केवलज्ञान युक्त सर्वज्ञ परम-आत्मा। पूर्ण विशुद्ध आत्मा सर्वज्ञ, केवली, राग-द्वेष, मोह-विजेता अष्टविध कर्मों से सर्वथा रहित हो पाता है। ऐसे परम-विशुद्ध आत्मा जिनेश्वर ही हैं, वे ही सम्पूर्ण लोक में प्रकाश-सम्यग्ज्ञान प्रदान करते हैं।

उत्तराध्ययन वृत्ति

XX विभंग ज्ञान :-

विरुद्धो वितथो वा अन्यथा वस्तुभङ्गो वस्तुविकल्पो यस्मिस्तद्विभङ्गम्।

जिसमें भंग/विकल्प/ज्ञान विरुद्ध या वितथ होता है, वह विभंग ज्ञान है।

स्थानांङ्ग टीका/पत्रांक 368

XXI सिद्धों के संहनन आदि :-

1. **संहनन :** वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले सिद्ध होते हैं।
2. **संस्थान :** छह प्रकार के संस्थानों में से किसी एक संस्थान से सिद्ध होते हैं।
3. **उच्चत्व :** सिद्धों की अवगाहना तीर्थंकरों की अपेक्षा जघन्य सात रत्नि प्रमाण और उत्कृष्ट 500 धनुष होती है।
4. **आयुष्य :** सिद्ध होने वाले जीव का आयुष्य जघन्य कुछ अधिक आठ वर्ष का, उत्कृष्ट पूर्व कोटि प्रमाण होता है।
5. **परिवसना-निवास :** सिद्ध होने वाले जीव सर्वार्थ सिद्धमहाविमान के ऊपर की स्तूपिका के अग्रभाग से 12 योजन ऊपर जाने के बाद ईषत् प्राग्भारा नामक पृथ्वी है, जो 45 लाख योजन लम्बी-चौड़ी है, वर्ण से अत्यन्त श्वेत है, अतिरम्य है, उसके ऊपर वाले योजन पर लोक का अन्त होता है। उक्त योजन के ऊपर वाले एक गाऊ (कोश) के उपरितन 6 भाग में सिद्ध निवास करते हैं। इसके पश्चात् सारी सिद्धगण्डिका समस्त दु:खों का छेदन करके, जन्म-जरा मरण के बन्धनों से विमुक्त, सिद्ध, शाश्वत एवं अव्याबाध सुख का अनुभव करते हैं।

(क) भगवती सूत्र/अभयदेव वृत्ति/पत्रांक 520-21
(ख) औपपातिक सूत्र/सूत्र 43/पत्रांक 112

XXII मोका-नगरी :-

यह नगरी उत्तर-भारत के पश्चिमी विभाग में कहीं थी। संभव है, पंजाब प्रदेश-स्थित आधुनिक मोगामंडी ही प्राचीन मोका नगरी हो।

श्रमण भगवान महावीर/पं. कल्याण विजय जी/पृष्ठ 390

XXIII नन्दन चैत्य :-

यह चैत्य मोका नगरी के बाहर था। यहाँ भगवान महावीर का समवसरण हुआ था।

श्रमण भगवान महावीर/पृष्ठ 379

XXIV द्वितीय गणधर :-

यहाँ 'इन्द्रभूति गौतम' की तरह अग्निभूति और वायुभूति गणधर को भी भगवान महावीर ने 'गौतम' शब्द से सम्बोधित किया है। उसका कारण यह है कि भगवान महावीर के ग्यारह गणधर अन्तेवासी-पट्टशिष्य थे, उनमें से प्रथम इन्द्रभूति, द्वितीय अग्निभूति, तृतीय वायुभूति थे। ये तीनों ही सहोदर भ्राता थे। ये गुब्बर गोबर गाँव में गौतम गोत्रीय विप्र श्री वसुभूति और पृथिवीदेवी के पुत्र थे। इन तीनों ने भगवान का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। तीनों के गौतम गोत्रीय होने के कारण ही इन्हें 'गौतम' शब्द से सम्बोधित किया गया है, किंतु उनका पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व दिखलाने के लिए 'द्वितीय' और 'तृतीय' विशेषण उनके नाम से पूर्व लगा दिया गया है।

1. **(क) भगवती सूत्र के थोकड़े/द्वितीय भाग/पृ. 1**
   (ख) भगवती सूत्र/पं. बेचरदास जी/खण्ड 2/पृ. 3
   (ग) समवायांग 11 वाँ समवाय

XXV विकुर्वणा विक्रिया :-

यह जैन पारिभाषिक शब्द है। नारक, देव, वायु, विक्रिया लब्धि सम्पन्न कतिपय मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपने शरीर को लम्बा, छोटा, पतला, मोटा, ऊँचा, नीचा, सुन्दर और विकृत अथवा एकरूप से अनेक रूप धारण करने हेतु जो क्रिया करते हैं, उसे विक्रिया या विकुर्वणा कहते हैं। उससे तैयार होने वाले शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं। यह विक्रिया वैक्रिय समुद्घात द्वारा होती है।

वैक्रिय समुद्घात में ग्रहण किये जाने वाले रत्न आदि पुद्गल औदारिक नहीं होते, वे रत्न सदृश सार युक्त होते हैं। इस कारण यहाँ रत्नादि का ग्रहण किया गया है अथवा कुछ आचार्यों के मतानुसार रत्नादि औदारिक पुद्गल भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा ग्रहण करते समय वैक्रिय पुद्गल बन जाते हैं।

भगवती/अभयदेववृत्ति/पत्रांक 154

XXVI लोकपाल :-

भवनपति और वैमानिकों के तैंतीस त्रायस्त्रिंशक और चार-चार लोकपाल होते हैं। व्यन्तर और ज्योतिष्कों के लोकपाल और त्रायस्त्रिंशक नहीं होते।

XXVII अग्रमहिषियाँ :-

चमरेन्द्र तथा बलीन्द्र जी की पाँच-पाँच अग्रमहिषियाँ हैं यथा- काली, रात्रि (राजी), रत्नी (रजनी), विद्युत् और मेघा (महिता)। एक-एक अग्रमहिषी के 8-8 हजार देवियों का परिवार है। यदि एक-एक देवीवैक्रिय रूप बनावे तो आठ-आठ हजार वैक्रिय रूप बना सकती है।

भवनद्वार - 103

XXVIII वैरोचनेन्द्र :-

दाक्षिणात्य असुर-कुमारों की अपेक्षा उत्तर दिशावर्ती असुर-कुमारों का रोचन-दीपन कान्ति अधिक विशिष्ट होती है, इसलिए ये देव वैरोचन कहलाते हैं। वैरोचनों का इन्द्र वैरोचनेन्द्र है। इन देवों के निवास उपपात-पर्वत, इनके इन्द्र तथा अधीनस्थ देव-वर्ग आदि सबका वर्णन स्थानांग सूत्र, दशम स्थान में है। बलि वैरोचनेन्द्र की पाँच अग्र-महिषियाँ हैं यथा- शुम्भा, निशुम्भा, रंभा, निरंभा और मदना। इनका वर्णन प्राय: चमरेन्द्र की तरह है। इनकी विकुर्वणा शक्ति सातिरेक जम्बूद्वीप तक की है क्योंकि औदीच्य इन्द्र होने से चमरेन्द्र की अपेक्षा वैरोचनेन्द्र बलि की लब्धि विशिष्टतर होती है।

XXIX धरणेन्द्र :-

दाक्षिणात्य नागकुमारों के इन्द्र हैं, इनके निवास, लोकपालों का उपपात पर्वत, सात सेनाओं, सात सेनाधिपतियों एवं छह अग्रमहिषियों का वर्णन स्थानांग प्रज्ञापना में है। नागकुमारेन्द्र धरण की छह अग्रमहिषियों के नाम इस प्रकार हैं - अल्ला, शक्रा, सतेश, सौदामिनी, इन्द्रा, धनविद्युता।

XXX शराव :-

शराव का अर्थ मिट्टी का द्वीप, दानपात्र तथा रामपात्र होता है, उसका सम्पुट अर्थात् दोनों को जोड़ना, उससे जो आकार बनता है, उसका दूसरा नाम 'वर्धमान' है।

XXXI मौर्यपुत्र :-

'मुर' नाम की कोई प्रसिद्ध जाति थी, जिसके कारण यह वंश 'मौर्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ताम्रलिप्ती के गृहपतियों में मौर्य वंश ख्याति प्राप्त था।

भगवती सूत्र/पं. बेचरदास जी/खण्ड 2/पृष्ठ 24

XXXII प्रणामा :-

जिसमें प्रत्येक प्राणी को यथायोग्य प्रणाम करने की क्रिया विहित हो।

XXXIII तामली तापस :-

यह ताम्रलिप्ती नगरी का निवासी था। यह नगरी भगवान महावीर से पूर्व भी बंगदेश की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध थी। तामली गृहपति के वर्णन से इस बात की पुष्टि होती है कि बंगदेश ताम्रलिप्ती के कारण गौरव-पूर्ण अवस्था में पहुँचा हुआ था। अनेक नदियाँ होने से जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों से माल का आयात-निर्यात होने के कारण व्यापार की दृष्टि से तथा सरसब्ज होने से उत्पादन की दृष्टि से भी समृद्ध था। वर्तमान में ताम्रलिप्ती का नाम तामूलक हो गया है, यह कलकत्ता के पास मिदनापुर जिले में है।

चीन के प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग की भारत यात्रा के समय (ईस्वी सन् 630 के बाद) तक ताम्रलिप्ती सामुद्रिक बंदर पर अवस्थित थी पर अब तामुलक से लगभग 60 मील दूर तक समुद्र हट गया है।

श्रमण भगवान महावीर/377

XXXIV ईशानेन्द्र :-

शकेन्द्र की अपेक्षा ईशानेन्द्र का दर्जा ऊँचा है इसलिए शकेन्द्र ईशानेन्द्र के पास तभी जा सकता है, जबकि ईशानेन्द्र जी शकेन्द्र जी को आदरपूर्वक बुलाये, अगर आदरपूर्वक न बुलाये तो वह ईशानेन्द्र के पास नहीं जाता, किंतु ईशानेन्द्र, शकेन्द्र के पास बिना बुलाये भी जा सकता है, क्योंकि उसका दर्जा ऊँचा है।

भगवती सूत्र/प्रमेय चन्द्रिका टीका/भाग 3/पृष्ठ 286

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का
सत्रहवाँ वर्ष

विषय-वस्तु

क्र.सं.	विषय
1.	भगवान का वाणिज्य-ग्राम से विहार राजगृह में पदार्पण
2.	आजीवकों के प्रश्न - सामायिक में भाण्ड आदि सम्बन्धी
3.	श्रमणोपासक और आजीवकोपासक
4.	अनेक अणगारों का अनशन-विपुल-पर्वत पर
5.	वर्षावास - राजगृह में

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का सत्रहवाँ वर्ष

'समाधान'

प्रश्न आजीविकों के : उत्तर भगवान के

वाणिज्य ग्राम का चातुर्मास समाप्ति की ओर चल रहा था। भव्य[1] जनों के मन में विरह की अग्नि जल रही है। सागर की लहरों में घर्षण होने पर बड़वाग्नि[क] पैदा होती है तो जंगल में पेड़ों के घर्षण से दावाग्नि[ख] पर विरहाग्नि... वह तो बिना घर्षण के पैदा हो जाती है। कब, कैसे यह आग सताती है और आत्मा को कहाँ पहुँचा देती है? सच्ची विरह की आग लगी थी राजुल[1] के दिल में... इतनी भीषण आग, जिसमें बारह माह जलती रही राजुल[2]। करती रही नेमि का इंतजार... लेकिन... वक्त ने जोरदार तमाचा मारा... नहीं आये लौटकर नेमि...

तब क्या करना...

स्वयं राजुल[3] अपनी विरहाग्नि को सदा-सदा के लिए शमित करने चली गयी नेमि प्रभु के द्वार... और नेम से पहले परमात्म पद का वरण कर आग को वीतरागता में बदल डाला[4]।

भगवान महावीर के विरह की आग ने जलाया गौतम को, बाहर से भीतर चले गये और कैवल्य ज्ञान को प्राप्त कर लिया। विरह की आग ने जलाया मृगावती[5] को... एक ही रात्रि में परमात्मा से अवियोगी[ग] मिलन कर लिया। विरह ही जीवन को बनाता है, सजाता है, सँवारता है, यथार्थता से साक्षात्कार कराता है।

विरह के वे क्षण कितने बेशकीमती होते हैं, जिनमें एकावधानता की साधना सध जाती है। वियोगी व्यक्ति मन को पढ़ना सीख जाता है। संसार की असारता को जानकर प्रेम के शिखरों पर आरोहण कर लेता है। विरह वह चुनौती

(क) बड़वाग्नि - समुद्र में लगने वाली आग **(ख) दावाग्नि** - जंगल में लगने वाली आग
(ग) अवियोगी - वियोग रहित

है, जो मन को समर्पण[6] की राह पर चलना सिखा देता है। विरह के पलों में समर्पण का भाव ऊँचाइयों को छू लेता है। विरह का धरातल निर्मल और निष्कलंक होता है, जिसमें प्रतिदान[क] की भावना नहीं रहती है। विरही आत्मा एकनिष्ठ रहकर अहर्निश[ख] अवियोगी मिलन के लिए लालायित रहती है।

वाणिज्यग्राम[7] पूरा विरह की भीषण आग में झुलस रहा है। अब परमात्मा महावीर चले जायेंगे, यहाँ नहीं रहेंगे, बस रह-रह कर यह सोचकर उनका हृदय अतीव वियोग दु:ख से व्याकुल हो रहा है। लेकिन वक्त... वक्त रोके नहीं रुकता[8]... वह तो यथासमय दस्तक दे ही देता है। आखिरकार पावस प्रवास[ग] का अन्तिम दिन आ गया और दूसरे दिन सूर्योदय होने पर भगवान[9] महावीर वाणिज्यग्राम से विहार करने लगे। अश्रुपूरित[घ] भारी कदमों से चलकर वाणिज्यग्राम वालों ने विदाई दी।

भगवान ग्रामानुग्राम पधारते हुए राजगृह[II] पधार गये और वहाँ के गुणशील उद्यान में पधारकर तप, संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

उस समय राजगृह में विभिन्न धर्मावलम्बी साधु आया करते थे। एक ओर जहाँ राजगृह जैन धर्म का केन्द्र था, वहीं दूसरी ओर बौद्ध, आजीवक[ङ] तथा अन्य-अन्य सम्प्रदायों के मानने वाले श्रमण और उपासक भी वहाँ विराट संख्या में रहते थे। वे परस्पर एक-दूसरे के मत का खण्डन और उपहास किया करते थे। एक बार आजीवक साधुओं ने भगवान महावीर के स्थविर भगवन्तों[च] से कुछ प्रश्न उनके उपहास करते हुए पूछे। तब इन्द्रभूति गौतम[10] ने सत्य का साक्षात्कार करने एवं करवाने के लिए उन्हीं प्रश्नों को भगवान से पूछने का चिन्तन किया और वे भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करके पृच्छा करने लगे-

भगवन्! आजीविकों (गोशालक के शिष्यों) ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा- 'सामायिक करके श्रमणोपाश्रय[छ] में बैठे हुए किसी श्रावक के भाण्ड-वस्त्र आदि सामान को कोई चुराकर, उठाकर ले जाये और सामायिक पार कर वह श्रावक अपने भाण्ड-वस्त्रादि सामान की खोज करे तो क्या वह अपने सामान की खोज करता है या पराये सामान की खोज करता है?'

(क) प्रतिदान - पुन: प्राप्त करने की भावना **(ख) अहर्निश** - दिन-रात **(ग) पावस प्रवास** - चातुर्मास **(घ) अश्रुपूरित** - आँसुओं से युक्त **(ङ) आजीवक** - गोशालक मतानुयायी **(च) स्थविर भगवन्त** - जो धर्म में स्थिर करे **(छ) श्रमणोपाश्रय** - स्थानक

भगवान :- गौतम! वह अपने सामान की खोज करता है, पराये सामान की खोज नहीं करता।

गौतम स्वामी :- भगवन्! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान[11] और पौषधोपवास[क] को स्वीकार किये हुए श्रावक का वह चुराया हुआ, उठाकर ले जाया हुआ सामान क्या उसके स्वामित्व का नहीं रहता?

भगवान :- हाँ गौतम! साधनाकाल में वह सामान उसका अपना नहीं रहता[12]।

गौतम स्वामी :- भगवन्! जब साधनाकाल में उसका वह चुराया हुआ सामान उसका अपना नहीं है, तब आप कैसे फरमाते हैं कि सामायिक पूर्ण होने के पश्चात् वह श्रावक[13] अपने भाण्ड-सामान का अन्वेषण[ख] करता है, दूसरों के सामान का नहीं।

भगवान :- गौतम! सामायिक आदि करने वाले उस श्रावक के मन में सामायिक आदि करते समय ऐसा चिन्तन रहता है कि चाँदी मेरी नहीं, सोना मेरा नहीं, काँसा आदि के बर्तन आदि सामान मेरा नहीं, वस्त्र मेरे नहीं तथा विपुल धन, कनक[ग], रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, पद्म रागादि मणि इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य मेरा नहीं है, किंतु उस पर ममत्व भाव का उसने प्रत्याख्यान[घ] नहीं किया। इसी कारण से हे गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ कि सामायिक आदि पूर्ण होने पर वह श्रावक अपने (चुराये हुए) सामान का अन्वेषण करता है। वह सामान उसी का है, दूसरों का नहीं।

गौतम स्वामी :- भगवन्! सामायिक करके श्रमणोपाश्रय[ङ] में बैठे हुए श्रावक की पत्नी के साथ कोई लम्पट व्यभिचार का सेवन करता है तो उस समय वह व्यभिचारी पुरुष श्रावक की पत्नी को भोगता है या अपत्नी को?

भगवान :- गौतम! वह व्यभिचारी पुरुष श्रावक[15] की पत्नी[III] को भोगता है, अपत्नी को नहीं[16]।

गौतम स्वामी :- भगवन्! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास करने पर क्या उस समय उस श्रावक की पत्नी[17], अपत्नी हो जाती है?

भगवान :- हाँ गौतम! साधना काल में श्रावक की पत्नी अपत्नी हो जाती है।

(क) पौषधोपवास - उपवास युक्त पौषध **(ख) अन्वेषण** - खोज **(ग) कनक** - सोना, स्वर्ण **(घ) प्रत्याख्यान** - पच्चक्खाण **(ङ) श्रमणोपाश्रय** - जहाँ साधु रहते हैं, वह उपाश्रय

गौतम स्वामी :- भगवन्! जब शीलव्रतादि साधनाकाल में श्रावक की पत्नी , अपत्नी हो जाती है, तब आप ऐसा क्यों फरमाते हैं कि वह व्यभिचारी पुरुष श्रावक की पत्नी को भोगता है, अपत्नी को नहीं।

भगवान :- गौतम! शीलव्रतादि को अंगीकार करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि माता मेरी नहीं है, पिता मेरे नहीं है, भाई मेरा नहीं है, बहन मेरी नहीं है, पत्नी मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है, पुत्रवधू मेरी नहीं है, किंतु इन सबके प्रति उसका स्नेह बन्धन टूटा नहीं है, इस कारण मैं ऐसा कहता हूँ कि वह व्यभिचारी पुरुष उस श्रावक की पत्नी को भोगता है, अपत्नी को नहीं।

इस प्रकार सामायिक आदि में मन के परिणामों में ऐसा रहता है कि सांसारिक पदार्थ और रिश्ते-नाते मेरे नहीं है, तथापि उन पदार्थों और रिश्तों के ममत्व का त्याग श्रावक नहीं करता, इसलिए वे पदार्थ और रिश्ते उसके कहलाते हैं।

इसके पश्चात् गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा-

भगवन्! जिस श्रावक ने पहले स्थूल प्राणातिपाति (स्थूल - मोटी, प्राणातिपात - हिंसा) का प्रत्याख्यान नहीं किया, उसका वह बाद में प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है।

भगवन् :- गौतम! वह जब बाद में स्थूल प्राणातिपात[18] का त्याग करता है तो अतीत काल में किये हुए प्राणातिपात[क] का प्रतिक्रमण करता है अर्थात् इस पाप की निन्दा[ख], गर्हा[ग], आलोचनादि[घ] करके उससे निवृत्त होता है। वर्तमान कालीन प्राणातिपात का संवर-निरोध करता है तथा भविष्यकालीन प्राणातिपात का प्रत्याख्यान अर्थात् उसे न करने की प्रतिज्ञा करता है। इस प्राणातिपात विरमण के भूतकाल की अपेक्षा 49 भंग[ङ], वर्तमान की अपेक्षा 49 भंग तथा भविष्य की अपेक्षा 49 भंग होते हैं। इस प्रकार प्राणातिपात विरमण[19] व्रत के कुल 147 भंग होते हैं। इसी प्रकार स्थूल मृषावाद विरमण, स्थूल अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण और स्थूल परिग्रह विरमण के प्रत्येक के 147-147 भेद होते हैं। इसमें से किसी भी भेद से किसी भी व्रत का पालन करने वाला भी श्रावक[20] होता है।

(क) प्राणातिपात - हिंसा **(ख) निन्दा** - आत्म-साक्षी से निंदा **(ग) गर्हा** - गुरु साक्षी से गर्हा **(घ) आलोचनादि** - पापों का प्रकटीकरण **(ङ) 49 भंग** - पचीस बोल में बतलाये हैं

जैसे किसी श्रावक ने त्याग किया कि काया से स्थूल हिंसा नहीं करूँगा तो वह वचन से अहिंसा का पालन नहीं करता हुआ भी त्यागी है, क्योंकि उसने मात्र काया से हिंसा करने का त्याग किया है। इसी प्रकार किसी भी भंग से त्याग कर सकता है[21]।

(49 भंग[IV] - पचीस बोल में बतलाये हैं, वे ही हैं)

इस प्रकार विविध भंगों से व्रत पालन करने वाले श्रमणोपासक होते हैं, आजीविकोपासक[क] नहीं।

आजीवक मत के शास्त्रों का अर्थ है कि समस्त जीव सचित्त[ख] पदार्थों का भोजन कर सर्व प्राणियों का छेदन भेद और विनाश करके उनका भोजन करते हैं। यह सिद्धान्त गोशालक के मतानुयायियों का है।

आजीवक मत में बारह प्रसिद्ध आजीवकोपासक कहे गये हैं यथा- 1. ताल 2. ताल प्रलम्ब 3. उद्विध 4. संविध 5. अवविध 6. उदय 7. नामोदय 8. नर्मोदय 9. अनुपालक 10. शंकखलक 11. अयम्बुल 12. कातरक।

इस प्रकार ये बारह आजीविकोपासक[V] हैं। ये अपनी स्वमत कल्पना से गोशालक को अरहंत देव मानते हैं। ये माता-पिता की सेवा सुश्रूषा करते हैं। ये पाँच प्रकार के फल नहीं खाते। उटुम्बर-गुल्लर के फल, बड़ के फल, बोर, शहतूत के फल, पीपल फल तथा प्याज, लहसुन और कन्दमूल के त्यागी होते हैं तथा अनिर्लाछित (खस्सी-बधिया न किये हुए) और नाक नहीं नाथे हुए बैलों से त्रस प्राणी की हिंसा से रहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हुए जीवन यापन करते हैं।

इस प्रकार आजीविकोपासकों का यह त्याग है। श्रमणोपासकों का त्याग इनसे विशिष्टतम होता है, क्योंकि उन्होंने विशिष्टतम देवगुरु धर्म का आश्रय लिया है।

श्रमणोपासक[VI] पन्द्रह कर्मादान[ग] को मन, वचन और काया से करते नहीं, करवाते नहीं, उनका अनुमोदन करते नहीं, करवाते नहीं। वे पन्द्रह कर्मादान इस प्रकार हैं :-

1. इंगालकम्मे 2. वनकर्म 3. शकटकर्म 4. भाटिक कर्म 5. स्फोटक कर्म

(क) आजीविकोपासक - गोशालक के श्रावक **(ख) सचित्त** - सजीव **(ग) कर्मादान** - जिन अध्यवसायों से या आजीविका के कार्यों से ज्ञानावरणीय आदि अशुभकर्मों का विशेष रूप से बन्ध होता है, उन्हें अथवा कर्मबन्धन के हेतुओं को कर्मादान कहते हैं।

6. दंत वाणिज्य 7. लाक्षा वाणिज्य 8. रस वाणिज्य 9. विष वाणिज्य 10. केश वाणिज्य 11. यंत्रपीडन कार्य 12. निर्लांछन कर्म 13. दावाग्निदापनता 14. सरहद्रतडाग शोषणता 15. असतीजन पोषणता।

(इनका वर्णन अपश्चिम तीर्थंकर भाग दो पृष्ठ 193-94 पर है)

इस प्रकार भगवान[VII] ने गौतम स्वामी को आजीविकोपासकों और श्रमणोपासकों के त्याग की भिन्नता बतलाई, जिसे श्रवण करके गणधर गौतम विनयावनत[क] होकर बोले - भगवन्! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है[22]।

चातुर्मास - राजगृह में

भगवान राजगृह में विराज रहे हैं। भगवान से अनुज्ञा[ख] लेकर अनेक अणगारों ने विपुल पर्वत[ग] पर जाकर अनशन किया। समय अपनी गति से गतिमान था। देखते ही देखते वक्त बीतता चला गया, चातुर्मास का काल समीप आ गया और प्रभु ने यह चातुर्मास राजगृह में ही करने का निश्चय किया।

पावस प्रवास का शुभागमन राजगृह वासियों के लिए खुशी का सन्देश लेकर उपस्थित हुआ। अनेक भव्यात्माएँ त्याग और तप[23] से अपनी आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए निरत[घ] बन रही हैं[24]। आगार और अणगार धर्म[25] धारण करने वालों का तांता सा लग गया है। एक अद्भुत धर्म का महामेला लगा हुआ है। भगवान के मुख से निसृत[ङ] वाणी का लाभ उठाने मधु-लोलुपी भ्रमरवत् जनता आती जा रही है।

(क) विनयावनत - विनय से झुककर **(ख) अनुज्ञा** - आज्ञा **(ग) विपुल पर्वत** - एक पर्वत का नाम **(घ) निरत** - युक्त **(ङ) निसृत** - निकली

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सत्रहवें वर्ष के सन्दर्भ

1. उत्तराध्ययन - उत्तरार्ध / अवचूर्णि / पत्राकार / अवचूर्णिकार चिरन्तनाचार्य / प्रका. देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार / सन् 1967
2. (क) सत्य-शील की गौरव गाथाएँ / श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री / प्रका. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय / उदयपुर / प्र.सं. 1985 / पृष्ठ 93
   (ख) राजुल का बारह मासा
3. विजय के ऊपर विजय / आ. श्री नानेश / श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ / प्र.सं. 2010 / पृष्ठ 36-37
4. दिल सुख माधुरी संग्रह
5. सोलर सतियाँ / सम्पा. पं. शोभाचन्द भारिल्ल / प्रका. पाथर्डी अहमदनगर / वि.सं. 2016 / पृष्ठ 36
6. ओंकार एक अनुचिन्तन / लेखक श्री पुष्कर मुनि जी म.सा. / प्रका. सार्वभौम साहित्य संस्थान, देहली / सन् 1964 / पृष्ठ 76
7. उपासक दशांग सूत्र / प्रथम अध्ययन / टीकाकार - अभयदेव सूरि / प्रका. आगमोदय समिति - मुम्बई
8. आदर्श कन्या / लेखक - अमर मुनि जी म.सा. / प्रका. सन्मति ज्ञान पीठ आगरा / सन् 1994 बारहवाँ संस्करण / पृष्ठ 14
9. भगवान महावीर और उनका मुक्ति मार्ग / लेखक - रिषभदास रांका / प्रकाशक - भारत जैन महामण्डल / सन् 1953 / पृष्ठ 18
10. सन्मति महावीर / श्री सुरेश मुनि / पृष्ठ 56-57
11. प्रत्याख्यान के लिए देखिए - आगम एक परिचय / युवा. श्री मधुकर मुनि जी म.सा. / प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति पिपलिया बाजार, ब्यावर / वि.सं. 2063 / पृष्ठ 66

12. भगवती / अभयदेव वृत्ति / शतक 8/5
13. भगवान महावीर का दिव्य जीवन / लेखक - श्री मधुकर मुनि / प्रका. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन पिपलिया बाजार / ब्यावर / प्र.सं. सन् 1974 / पृष्ठ 28-29
14. पञ्चाशक ग्रन्थ / रचनाकार श्री हरिभद्र सूरि / टीका - अभयदेव सूरि / प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा - भावनगर / सन् 1917 / पत्राकार / पत्र 177
15. भगवान महावीर जीवन और दर्शन / श्री राजेन्द्र मुनि / प्रका. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय / सन् 1974 / पृष्ठ 76
16. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 8/5 / पत्रांक 368
17. देशविरतेकत्कृष्ट : प्रतिपत्तिविरहकालोऽहोरात्रं द्वादशकं भवति, जघन्य स्तु त्रय: समया इति
आवश्यक सूत्र उत्तरार्ध / भद्रबाहु कृत निर्युक्ति / हारिभद्रीय वृत्ति / प्रका. आगमोदय समिति मुम्बई / सन् 1917 / पत्र 362
18. भगवान महावीर / लेखक - श्री ऋषभदास स्वामी / प्रका. सुरुचि प्रकाशन - बालाघाट / पृष्ठ 31
19. महावीर की आत्म-कथा / सं. - नंदलाल / पृष्ठ 19
20. अतीत से वर्तमान / लेखक - धनरूपमल नागौरी / प्रका. श्री महाकौशल जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, दुर्ग / सन् 1980 / पृष्ठ 56
21. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 8/5 / पत्रांक 370-71
22. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 8/5 / पत्रांक 370-71
23. विश्व बन्धुत्व वर्धमान / लेखक - श्री सुकन मुनि / प्रका. श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति / पिपलिया बाजार ब्यावर / प्र.सं. सन् 1975 / पृष्ठ 50
24. जैन धर्म भगवान महावीर जीवन और दर्शन / लेखक - चिमन भाई सी. शाह / प्रका. भारत जैन महामण्डल - बम्बई / प्र.सं. 1975 / पृष्ठ 23
25. अहिंसा विवेक / आचार्य जिनचन्द्र सूरि / प्रका. कमला पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली / पृष्ठ 128

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सत्रहवें वर्ष के टिप्पण

I	राजुल
II	राजगृह
III	पत्नी
IV	49 भंग
V	आजीवकोपासक
VI	श्रमणोपासक
VII	भगवान

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के सत्रहवें वर्ष के टिप्पण

I राजुल :-

यद्यपि राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण काल में 54 दिन का अंतर है। हालांकि इस सम्बन्ध में कोई पुरातन साक्ष्य दृष्टिगोचर नहीं होता। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि या प्राचीन चारित्र ग्रंथों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता तथापि पश्चात्वर्ती कवियों की रचनाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है। यदि उस उल्लेख को प्रामाणिक मान लिया जाय तो इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि राजीमती, श्री अरिष्टनेमि से दो सौ वर्ष पश्चात् दीक्षित हुई थी। मगर अरिष्टनेमि के कैवल्य प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी राजीमती का दो सौ वर्षों तक दीक्षित न होना और गृहस्थाश्रम में रहना एक चिन्तनीय विषय है। इस सम्बन्ध में विद्वानों को विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

भगवान अरिष्टनेमि और कर्म योगी श्री कृष्ण एक अनुशीलन/श्री देवेन्द्र मुनि/पृष्ठ 109-10

II राजगृह :-

मगध की राजधानी राजगृह थी, जिसे मगधपुर क्षितिप्रतिष्ठित चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है। आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुशाग्रपुर में प्राय: आग लग जाती थी। अत: राजा श्रेणिक ने राजगृह बसाया[1]। महाभारत युग में राजगृह में जरासंघ राज्य करता था[2]। रामायण काल में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म राजगृह में हुआ था[3]। दिगम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार भगवान महावीर का प्रथम उपदेश और संघ की संस्थापना राजगृह में हुई थी[4]। अन्तिम केवली जम्बू की जन्मस्थली, निर्वाण स्थली भी राजगृह रही है[5]। धन्ना और शालीभद्र जैसे धन कुबेर राजगृह निवासी थे[6]। परम साहसी महान भक्त सेठ सुदर्शन भी राजगृह का रहने वाला था[7]।

प्रतिभामूर्ति अभयकुमार आदि अनेक महान् आत्माओं को जन्म देने का श्रेय राजगृह को था[8]।

पाँच पहाड़ियों से घिरे होने के कारण उसे गिरिव्रज भी कहते थे। उन पहाड़ियों के नाम जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में पृथक्-पृथक् रहे हैं[9]। ये पहाड़ियां आज भी राजगृह में है। वैभार और विपुल पहाड़ियों का वर्णन जैन ग्रन्थों में विशेष रूप से आया है। वृक्षादि से वे खूब हरी-भरी थी। वहाँ अनेक जैन-श्रमणों ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैभार पहाड़ी के नीचे ही तपोदा और महातपोपनीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था[10]। वर्तमान में भी वह राजगिर में तपोवन नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान महावीर ने अनेक चातुर्मास वहाँ व्यतीत किये[11]। दो सौ से भी अधिक बार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य में मिलते हैं। वहाँ पर गुणसिल[12] मंडिकुच्छ[13] और मोगारिपाणि[14] आदि उद्यान थे। भगवान महावीर प्राय: गुणसिल (वर्तमान में) जिसे गुणावा कहते हैं, उद्यान में ठहरा करते थे।

राजगृह व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ पर दूर-दूर से व्यापारी आया करते थे। वहाँ से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरों में जाने के मार्ग थे[15]। बौद्ध ग्रंथों में वहाँ के सुन्दर धान के खेतों का वर्णन है।

आगम साहित्य में राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोकभूत एवं अलकापुरी सदृश कहा है[16]। महाकवि पुष्पदन्त ने लिखा है कि सोने, चाँदी से निर्मित राजगृह ऐसी प्रतिभासित होती थी कि स्वर्ग से अलकापुरी ही पृथ्वी पर आ गई है[17]। रविषेणाचार्य ने राजगृह को धरती का यौवन कहा है[18]। अन्य अनेक कवियों ने राजगृह के महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

जैनियों का ही नहीं, अपितु बौद्धों का भी राजगृह के साथ मधुर सम्बन्ध रहा है। विनयपिटक से स्पष्ट है कि बुद्ध गृहत्याग कर राजगृह आए। तब राजा श्रेणिक ने उनको अपने साथ राजगृह में रहने की प्रेरणा दी थी। पर बुद्ध ने वह बात नहीं मानी। बुद्ध अपने मत का प्रचार करने के लिए कई बार राजगृह आये थे। वे प्राय: गृद्धकूट पर्वत, कलन्दकनिवाप और वेणुवन में ठहरते थे[19]। एक बार बुद्ध जीवक कौमार भृत्य के आम्रवन में थे, तब जीवक ने उनसे हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में चर्चा की थी। जब वे वेणुवन में थे, तब अभयकुमार ने उनसे विचार-चर्चा की थी[20]। साधु सकलोदायि ने भी बुद्ध से यहाँ पर वार्तालाप किया[21]। एक

बार बुद्ध ने तपोदाराम (जहाँ गर्म पानी के कुँड थे) पर विहार किया था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् राजगृह की अवनति होने लगी। जब चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ पर आया था, तब राजगृह पूर्व जैसा नहीं था। आज वहाँ के निवासी दरिद्र और अभावग्रस्त हैं। आजकल राजगृह 'राजगीर' के नाम से विश्रुत है। राजगीर बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व और गया के पूर्वोत्तर में अवस्थित है।

1. आवश्यक चूर्णि 2, पृष्ठ 158
2. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण : एक अनुशीलन
3. (क) राजगिहे मुणिसुव्वयदेवा पउमा सुमित्त गएहिं। - तिलोय पण्णत्ति
   (ख) हरिवंश पुराण सर्ग 60
   (ग) उत्तरपुराण पर्व 67
4. (क) हरिवंश पुराण सर्ग 2, श्लोक 61-62
   (ख) पद्म पुराण पर्व 2, श्लोक 113
   (ग) महापुराण पर्व 1, श्लोक 196
5. उत्तर पुराण पर्व 76
   जम्बू स्वामी चरियं, पर्व 5-13
6. त्रिषष्टि0, 10/10/136-148
7. अन्तकृतदशांक
8. त्रिषष्टि.
9. जैन-विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ग और वैभार
   वैदिक-वैहार, बाराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक
   बौद्ध-चन्दन, मिज्झकूट, वेभार, इसगिति और वेपुन्न।
   सुत्तनिपात की अट्ठकथा 2, पृष्ठ 382
10. (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति, 215, पृष्ठ 141
    (ख) बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति, 213 429
    (ग) वायुपुराण, 1/415
11. (क) कल्पसूत्र, 5/123
    (ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति, 7/4, 5/9, 2/5
    (ग) आवश्यक निर्युक्ति, 473/492/518
12. (क) ज्ञाताधर्म कथा, पृष्ठ 47
    (ख) दशाश्रुतस्कंध, 109/पृष्ठ 364
    (ग) उपासकदशा 8, पृष्ठ 51
13. व्याख्याप्रज्ञप्ति 15
14. अन्तकृतदशांक 6, पृष्ठ 31
15. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृष्ठ 462

16. पच्चक्ख देवलोक भूया एवं अलकापुरी संकासा
17. तहिं पुरुवरु णामे रायगिहु कणयरयण कोडिहिं धडिउ।
बलिंबड धरं तहो सुखइहिं सुरणयरु गयणपडिउ।। - वायुकुमार चरिउ, 61
18. तत्रास्ति सर्वतः कांतं नाम्ना राजगृहं पुरम्।
कुसुमामोद सुभगं भुवनस्येव यौनवं। - पद्मपुराण, 33/2
19. मज्झिमनिकाय (सारनाथ 1933)
20. मज्झिमनिकाय, अभयराजकुमार सुवन्त, पृष्ठ 234
21. मज्झिमनिकाय, चलसकलोदायी सुवन्त, पृष्ठ 305

III पत्नी :-

सामायिक, पौषधोपवास आदि अंगीकार किये हुए श्रावक ने यद्यपि वस्त्रादि सामान का त्याग कर दिया है, यहाँ तक कि सोना, चाँदी, अन्य धन, घर, दुकान, माता-पिता, स्त्री, पुत्रादि पदार्थों के प्रति भी उसके मन में यही परिणाम होता है कि ये मेरे नहीं, तथापि उसका उनके प्रति ममत्व का त्याग नहीं हुआ है, उनके प्रति प्रेम बन्धन रहा हुआ है, इसलिए वे वस्त्रादि तथा स्त्री आदि उसके कहलाते हैं1।

1 भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक 368

IV 49 भंग :-

श्रावक को प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान करने के लिए प्रत्येक के 49 भंग तीन करण है- करना, कराना और अनुमोदन करना तथा तीन योग हैं मन, वचन और काया। इनके संयोग से विकल्प नौ और भंग उनपचास होते हैं, इनका विवरण पचीस बोल में मिलता है।

भूतकाल के प्रतिक्रमण, वर्तमान काल के संवर और भविष्य के लिए प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा, इस प्रकार तीनों काल की अपेक्षा 49 भंगों को 3 से गुणा करने पर 147 भंग होते हैं। ये स्थूल प्राणातिपात-विषयक हुए। इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह इन प्रत्येक के 147-147 भंग होते हैं। यों पाँचों अणुव्रतों के कुल भंग 735 होते हैं। श्रावक इन 49 भंगों में से किसी भी भंग से यथाशक्ति प्रतिक्रमण, संवर या प्रत्याख्यान कर सकता है। तीन करण तीन योग से संवर या प्रत्याख्यानादि श्रावक प्रतिमा स्वीकार किया हुआ श्रावक कर सकता है।

भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक 370-371

V आजीवकोपासक :-

गोशालक मंखली पुत्र के शिष्य आजीविक कहलाते हैं। गोशालक के समय में उसके ताल, तालप्रलम्ब आदि बारह विशिष्ट उपासक थे। वे उदुम्बर आदि पाँच प्रकार के फल तथा अन्य कुछ फल नहीं खाते थे। जिन बैलों को बधिया नहीं किया गया है और नाक नाथा नहीं गया है उनसे अहिंसक ढंग से व्यापार करके वे जीविका चलाते थे।

भगवती सूत्र/8/5

VI श्रमणोपासक :- 49 भंगों में से यथेच्छा भंगों द्वारा श्रमणोपासक अपने व्रत, नियम, संवर, त्याग, प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करते हैं, जबकि आजीविकोपासक इस प्रकार से हिंसा आदि का त्याग नहीं करते, न ही वे कर्मादान रूप पापजनक व्यवसायों का त्याग करते हैं। श्रमणोपासक तो इन 15 कर्मादानों का सर्वथा त्याग करता है। वह इन हिंसादिमूलक व्यवसायों को अपना ही नहीं सकता। यही कारण है कि ऐसा श्रमणोपासक चार प्रकार के देवलोकों में से किसी एक देवलोक में उत्पन्न होता है, क्योंकि वह जीवन और जीविका दोनों से पवित्र, शुद्ध और निष्पाप होता है और उसे विशिष्ट देव, गुरु, धर्म की प्राप्ति होती है।

(क) भगवती सूत्र अ. वृत्ति, पत्रांक 371-171
(ख) योग शास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति प्रकाश 4

VII भगवान :-

ऋषभ देव आदि तेइस तीर्थंकरों के समय प्रथम समवसरण से ही तीर्थ (प्रवचन) एवं चतुर्विध संघ उत्पन्न हुए। श्री वीर भगवान के दूसरे समवसरण में तीर्थ व संघ की स्थापना हुई।

आवश्यक निर्युक्ति गाथा 286

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का
अठारहवाँ वर्ष

विषय-वस्तु

क्र.सं.	विषय
1.	भगवान महावीर का राजगृह से विहार
2.	पृष्ठ चम्पा में भगवान का पदार्पण
3.	दीक्षा : शाल महाशाल की
4.	भगवान का चम्पा में पदार्पण
5.	कामदेव श्रेष्ठी का श्रावक व्रत ग्रहण
6.	कामदेव श्रावक की देव द्वारा परीक्षा
7.	कामदेव श्रावक की निर्भीक उपासना
8.	देव द्वारा कामदेव की प्रशंसा और क्षमायाचना
9.	कामदेव श्रावक का प्रभु महावीर के सान्निध्य में गमन
10.	भगवान द्वारा कामदेव की प्रशंसा और श्रमण-श्रमणियों को उपसर्ग सहन करने का उपदेश
11.	श्रमण-श्रमणियों ने विनय-पूर्वक प्रभु के कथन को स्वीकार किया
12.	भगवान महावीर का दशार्णपुर की ओर विहार एवं प्रवेश
13.	दशार्णपुर के राजा दशार्णभद्र का अभिमान प्रदर्शित करते हुए भगवान के दर्शनार्थ गमन
14.	शकेन्द्र द्वारा दशार्णभद्र का अभिमान चूर-चूर
15.	दशार्णभद्र की दीक्षा
16.	भगवान का दशार्णपुर से विहार वाणिज्य ग्राम में पदार्पण
17.	सोमिल ब्राह्मण की जिज्ञासाएँ और प्रभु द्वारा समाधान
18.	चातुर्मास वाणिज्य ग्राम में

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का अठारहवाँ वर्ष

'मन माया कामदेव'

दीक्षा शाल महाशाल की

राजगृह का वर्षावास समाप्त हुआ और भगवान महावीर ने राजगृह से विहार कर दिया। जनता ने प्रभु को अश्रुमिश्रित[क] नयनों से अपलक[ख] निहारते हुए विदाई दी।

भगवान राजगृह से चम्पा की ओर विहार करके चम्पा के पश्चिम में 'पृष्ठचम्पा[1]' नामक उपनगर में ठहरे। इस समय यहाँ का राजा 'शाल' था और उसका लघुभ्राता युवराज महाशाल। इनकी बहिन यशस्वती थी और बहनोई पिठर था। इनके एक भानजा था, जिसका नाम था गागली। जब राजा शाल और युवराज महाशाल को ज्ञात हुआ कि श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं तो दोनों भाइयों के मन में भगवान के दर्शन की तीव्र तमन्ना पैदा हुई[1]। अपनी तमन्नाओं को साकार रूप देते हुए वे भगवान महावीर के समीप धर्मोपदेश श्रवण करने गये। भगवान के दर्शन पाकर दोनों भाई वन्दन-नमस्कार करके प्रभु की अनमोल वाणी श्रवण करने बैठ गये। भगवान महावीर की अन्त:करणस्पर्शी[ग] दिव्य देशना प्रारम्भ हुई। उसमें संसार की असारता[2] को श्रवण कर हृदय की तरंगें विरक्ति[घ] के तट को छूने लगी। राजा शाल और युवराज महाशाल दिव्य देशना श्रवण करके स्वयं के महल में लौटे। राजा शाल का मन तो वैराग्य रंग में भरपूर रंग चुका था। उन्होंने अपने लघुभ्राता[ङ] महाशाल से कहा- भैया! मैं अब भगवान महावीर की वाणी श्रवण करके संसार में एक पल के लिए भी नहीं रहना चाहता हूँ। मैं अब सिंहासन पर बैठने की तनिक भी अभिलाषा नहीं रखता। अत: इस सिंहासन को तुम सँभालो[3]।

युवराज महाशाल अपने भ्राता की बात श्रवण करके बोले- राजन्! जो

(क) अश्रुमिश्रित - आँसुओं से युक्त **(ख) अपलक** - लगातार **(ग) अन्त:करण स्पर्शी** - अन्त:करण को छूने वाला **(घ) विरक्ति** - वैराग्य **(ङ) लघुभ्राता** - छोटा भाई

उपदेश आपने सुना है, वह मैंने भी... जब आप इस अशाश्वत[क] वैभव का त्याग करके संयम ग्रहण कर रहे हैं तो मैं भी आपके पद्चिह्नों का अनुकरण करूँगा।

राजा शाल :- बहुत ही प्रशस्त[ख] भावना है युवराज आपकी! तब राज्य का भार... राज्य का भार... गागली को दे देता हूँ।

ऐसा चिन्तन कर महाराज शाल ने गागली को काम्पिल्यपुर से बुलवाया और उसे राज्य का भार सौंपकर दोनों भाइयों ने भगवान के चरणों में संयम ग्रहण कर लिया। इधर राजा गागली ने अपने माता-पिता को भी पृष्ठचम्पा बुला लिया और सभी पृष्ठचम्पा में ही रहने लगे। संयम लेकर शाल और महाशाल मुनि ने भगवान महावीर के चरणों में ग्यारह अंगों का अध्ययन कर लिया और तप संयम से अपनी आत्मशक्तियों को जगाने लगे[4]।

कामदेव की सहनशीलता

भगवान महावीर, शाल और महाशाल की दीक्षा के पश्चात् कुछ समय विराज कर फिर चम्पा की ओर पधारने लगे और ग्रामानुग्राम विहार करके चम्पा पधार गये। भगवान चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य[ग] में विराज कर तप-संयम की आराधना करने लगे। चम्पा नगरी में भव्य समवसरण की रचना हुई और भव्यजन जिनवाणी श्रवण करने के लिए आने लगे।

उस समय चम्पा नगरी मे जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। वहाँ पर चम्पा नगरी में ही कामदेव नामक एक सद्गृहस्थ रहता था, जिसकी भद्रा नामक पत्नी थी। वह कामदेव गाथापति 18 करोड़ स्वर्णमुद्राओं का मालिक था। उसकी छ: करोड़ स्वर्णमुद्राएं खजाने में, छ: करोड़ स्वर्णमुद्राएं व्यापार में तथा छ: करोड़ स्वर्णमुद्राएं घर के वैभव, साधन-सामग्री में लगी थीं। उसके पास 60 हजार गायों के छ: गोकुल थे[5]।

भगवान महावीर[6] के चम्पा पधारने की सूचना जब कामदेव गाथापति को मिली, तब उसके मन में प्रभु दर्शन करने की तीव्र उत्कण्ठा जागृत हुई। वह आनन्द श्रावक की तरह भगवान महावीर के दर्शनार्थ पहुँचा। भगवान की सुधासिक्त[घ] वाणी को श्रवण करके उसने आनन्द की तरह व्रतों को स्वीकार किया और अपने घर लौट आया।

(क) अशाश्वत - क्षणभुंगर **(ख) प्रशस्त** - श्रेष्ठ **(ग) पूर्णभद्र चैत्य** - पूर्णभद्र उद्यान **(घ) सुधासिक्त** - अमृतमय

कुछ समय पश्चात् कामदेव श्रावक ने आनन्द श्रावक की तरह अपने बड़े पुत्र को गृहस्थ का दायित्व सौंपा और आनन्द श्रावक की तरह ही पौषधशाला में चला गया।

कामदेव ने श्रावक पौषधशाला में जाकर पौषधशाला का प्रमार्जन[क] किया, शौच एवं लघुशंका के स्थान का प्रतिलेखन किया, कुश का बिछौना बिछाकर, उस पर बैठकर, पौषध स्वीकार करके भगवान महावीर की धर्म शिक्षा के अनुरूप उपासना में लीन हो गया।

कामदेव श्रावक आत्मसाधना में समालीन हैं। अर्धरात्रि का नीरव शान्त वातावरण और उसमें एकाकी बनकर वह आत्म उपासना में लीन हैं। उसी अर्धरात्रि के समय श्रमणोपासक कामदेव के समक्ष एक मिथ्यादृष्टि, मायावी देव[7] प्रकट हुआ। उस देव ने एक विशालकाय पिशाच का वैक्रिय[II] रूप धारण किया। उस पिशाच का सिर गाय का चारा देने की बाँस की टोकरी जैसा था। बाल, चावल की मंजरी के तन्तुओं के समान रूखे, मोटे, भूरे रंग के और चमकीले थे। ललाट बड़े मटके के खप्पर जैसा बड़ा और उभरा हुआ था। भौंहें गिलहरी की पूँछ की तरह बिखरी हुई थी, जो कि देखने में बड़ी ही भद्दी और घृणोत्पादक[ख] थीं। मटकी जैसी आँखें, सिर से बाहर निकली हुई थीं जो कि देखने में विकृत और विभत्स लगती थीं। टूटे हुए छाजले के समान भद्दे और खराब कान थे तो नाक मेंढे के नाक की तरह चपटी थी। जुड़े हुए दो चूल्हों के समान गड्ढे जैसे दोनों नथुने थे। घोड़े के पूँछ जैसी भूरी, विकृत और विभत्स मूँछें थीं। ऊँट के होंठों की तरह लम्बे होठ और हलके लोहे की कुश जैसे दाँत थे। सूप के टुकड़े जैसी दिखने में विकृत और वीभत्स जीभ थी। हल के नोक की तरह आगे निकली हुई ठुड्डी थी। फटे हुए, भूरे रंग के कठोर तथा विकराल कड़ाही की भाँति भीतर धंसे गाल थे तो कन्धे मृदंग[ग] जैसे थे। उसकी छाती नगर के फाटक के समान चौड़ी थी। दोनों भुजाएं कोष्ठिका-लोहा आदि धातु के गलाने के काम आने वाली मिट्टी की कोठी के समान थी। उसकी दोनों हथेलियाँ मूंगादि दलने की चक्की के पाट के समान थी। हाथों की अंगुलियाँ लोढ़ी के समान थीं। सीपियों जैसे तीखे और मोटे उसके नाखून थे। दोनों स्तन नाई के उस्तरा आदि राछ डालने की चमड़े की थैली की तरह छाती पर लटक रहे

(क) प्रमार्जन - पूंजना **(ख) घृणोत्पादक** - घृणा पैदा करने वाले **(ग) मृदंग** - एक प्रकार का वाद्य

थे। पेट लोहे के कोठे के समान गोलाकार था। कपड़ों में पालिश देने हेतु जुलाहों द्वारा प्रयोग में लिये जाने वाले मांड के बर्तन के समान गहरी नाभि थी। उसका नेत्र-लिंग छीकें की तरह लटक रहा था। दोनों अण्डकोष फैले हुए दो थैलों या बोरियों जैसे थे। बालों से भरी कठोर पिण्डलियाँ थी। उसकी दोनों जंघाएँ एक जैसी दो कोठियों के समान थी। विकृत और वीभत्स[क] उसके घुटने अर्जुन नामक तृण विशेष या वृक्ष विशेष के गुल्म या गाँठ जैसे थे। दोनों पैर दाल पीसने की शिला के समान थे। पैर की अंगुलियाँ लोढ़ी जैसी थीं। सीपियों के सदृश[ख] अंगुलियों के नाखून थे।

उस पिशाच के घुटने मोटे, ओछे, गाड़ी के पीछे ढीले बंधे काठ की तरह लड़खड़ा रहे थे। उसकी भौंहें विकृत, बेडौल, खण्डित, कुटिल या टेढ़ी थी। उसने दरार जैसी मुँह फाड़कर जीभ बाहर निकाल रखी थी। गिरगिट और चूहों की माला पहन रखी थी जो कि उसकी पहचान थी। उसके कानों में कुण्डलों के स्थान पर नेवले लटक रहे थे। दुपट्टे की तरह शरीर पर सर्पों को उसने लपेट रखा था। वह भुजाओं पर अपने हाथ ठोककर गरज रहा था। भयंकर अट्टहास[ग] कर रहा था। उसका शरीर पंचरंगी बहुविध केशों से व्याप्त था।

वह पिशाच नीले कमल, भैंसे के सींग तथा अलसी के फूल जैसी गहरी नीली, तेजधार वाली तलवार लिए श्रमणोपासक[घ] कामदेव के पास पौषधशाला में आकर अत्यन्त क्रुद्ध[ङ], रुष्ट[च], कुपित[छ], तथा विकराल होता हुआ, मिसमिसाहट करता हुआ, तेज सांस छोड़ता हुआ श्रमणोपासक कामदेव से बोला- अरे! अप्रार्थित मृत्यु को चाहने वाले, दु:खद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाले, हीन-पुण्य चतुर्दशी[ज] को जन्मे हुए अभागे! लज्जा, शोभा, धृति, कीर्ति से रहित, धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष की कामना, इच्छा और उत्कण्ठा रखने वाले देवानुप्रिय! शीलव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान तथा पौषधोपवास से विचलित होना, विक्षुभित[झ] होना, उन्हें खण्डित करना, भग्न करना, उनका त्याग करना, परित्याग करना तुम्हें नही कल्पता। इनका पालन करने में तुम कृतप्रतिज्ञ[ञ] हो, परन्तु आज यदि तुम शीलव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान एवं पौषधोपवास का त्याग

(क) वीभत्स - बेडौल, दिखने में खराब **(ख) सदृश** - समान **(ग) अट्टहास** - ऊँचे स्वर से बोलना **(घ) श्रमणोपासक** - श्रावक **(ङ) क्रुद्ध** - क्रोधित **(च) रूष्ट** - रूठा हुआ **(छ) कुपित** - क्रोधित **(ज) हीन-पुण्य चतुर्दशी** - कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी **(झ) विक्षुभित** - खलबली मचाना, ध्यान हटाना **(ञ) कृतप्रतिज्ञ** - प्रतिज्ञा किया हुआ

नहीं करोगे, उन्हें नहीं तोड़ोगे तो मैं नीलकमल, भैंसे के सींग तथा अलसी के फूल के समान गहरी नीली, तेजधार वाली इस तलवार से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा, जिससे हे देवानुप्रिय! तुम आर्तध्यान एवं विकट दु:ख से पीड़ित होकर असमय में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।

उस पिशाच द्वारा यों कहे जाने पर श्रमणोपासक[क] कामदेव भयभीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित[ख] एवं विचलित नहीं हुआ तथा बिलकुल नहीं घबराया। वह शान्त भाव से अपने धर्मध्यान में लीन बना रहा।

श्रमणोपासक कामदेव को निर्भीक भाव से धर्मध्यान में लीन देखकर उसने दूसरी और तीसरी बार पुन: कहा- मौत को चाहने वाले श्रमणोपासक कामदेव! आज यदि तुम अपना पौषधोपवास नहीं तोड़ोगे तो मैं इस तीक्ष्ण धारवाली चमचमाती तलवार से तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा, जिससे हे देवानुप्रिये! तुम आर्तध्यान एवं विकट दु:ख से पीड़ित होकर असमय में प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

इस प्रकार देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार यों कहे जाने पर भी कामदेव श्रावक अभीत रहा और वह शांत भाव से अपने धर्मध्यान में निरत रहा।

उस पिशाच रूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय भाव से उपासनारत देखा तो अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसके ललाट में तीन बल वाली भृकुटि तन गयी और उसने तलवार से वार करके कामदेव के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र एवं दु:सह वेदना को सहनशीलतापूर्वक झेला[8]।

जब पिशाच रूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भीक भाव से उपासना में रत[ग] देखा और देखा कि श्रमणोपासक कामदेव को निर्ग्रंथ प्रवचन से विचलित, क्षुभित तथा विपरीत परिणाम युक्त नहीं कर सका हूँ, उसके मनोभावों को बदल नहीं सका हूँ, तो वह श्रान्त[घ], क्लान्त[ङ] और खिन्न होकर धीरे-धीरे पीछे हटा, पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला और देवमाया जन्य पिशाच रूप का त्याग किया। पिशाच रूप का त्याग करके उसने विशालकाय, देवमायाजन्य हस्ती का रूप धारण किया। वह हाथी सुपुष्ट सात अंगों-चार पैर, सूँड, जननेन्द्रिय और पूँछ से युक्त था। उसकी देह रचना सुन्दर

(क) श्रमणोपासक - श्रावक **(ख) क्षुभित** - डरना **(ग) रत** - लीन **(घ) श्रान्त** - थका हुआ **(ङ) क्लान्त** - खिन्न

और सुगठित थी। वह आगे से ऊँचा-उभरा हुआ तथा पीछे से सुअर के समान झुका हुआ था। उसकी कुक्षि जठर बकरी की तरह सटी हुई थी। उसका नीचे का होंठ और सूँड लम्बे थे। मुँह से बाहर निकले हुए दाँत बेले की अर्ध विकसित कली के समान उजले और सफेद थे। उन पर स्वर्ण की खोल चढ़ी थी। उसकी सूँड का अगला भाग खींचे हुए धनुष की तरह सुन्दर रूप में मुड़ा हुआ था। उसके पैर कछुए के समान परिपुष्ट और चपटे थे। नाखून बीस थे तो देह से सटी पूँछ सुन्दर एवं प्रमाणोपेत थी। मदोन्मत्त हस्ती बादल की तरह गरज रहा था। उसका वेग मन और पवन वेग को जीतने वाला था।

इस प्रकार हस्ती की क्रिया करके वह देव[III] पौषधशाला में कामदेव के पास आया और बोला- तुम अपने व्रतों को भंग नहीं करते तो मैं तुमको अपनी सूँड में पकड़ लूंगा, पकड़कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा। बाहर ले जाकर आकाश में उछालूंगा। उछालकर अपने तीक्ष्ण और मूसल जैसे दाँतों से झेलूंगा। झेलकर पृथ्वी पर तीन बार पैरों से रौंदूंगा, जिससे तुम आर्तध्यान और विकट दु:ख से पीड़ित होकर असमय में मर जाओगे।

हस्तीरूपधारी देव द्वारा यों कहे जाने पर श्रमणोपासक कामदेव निर्भय बना रहा। तब उस हस्तीधारी देव ने दूसरी और तीसरी बार वैसा ही कहा, लेकिन दृढ़ मनोबली कामदेव श्रावक निर्भीक बनकर उपासना में लीन बना रहा।

तब हस्तीरूपधारी देव, श्रमणोपासक कामदेव की निर्भीकता को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और उसे सूँड से पकड़ा, पकड़कर आकाश में उछाला और गिरते हुए को अपने तीक्ष्ण मूसल जैसे दाँतों से झेला, झेलकर नीचे जमीन पर तीन बार पैरों से रौंदा।

श्रमणोपासक कामदेव ने सहनशीलता, क्षमा एवं तितिक्षापूर्वक[क] उस तीव्र, विपुल, कठोर, प्रगाढ़, रौद्र[ख] तथा कष्टप्रद वेदनाएं झेली।

जब हस्तीरूपधारी देव श्रमणोपासक कामदेव को निर्ग्रंथ प्रवचन से विचलित, क्षुभित तथा विपरिणामित नहीं कर सका तो वह श्रान्त, क्लान्त खिन्न होकर धीरे-धीरे पीछे हटा। पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर देवमाया जन्य हस्तीरूप को त्याग किया और दिव्य विकराल सर्प का रूप धारण किया।

वह सर्प उग्र-विष, प्रचण्ड विष, घोर विष और विशालकाय था। वह

(क) तितिक्षापूर्वक - सहनशीलतापूर्वक **(ख) रौद्र** - भयानक

स्याही और मूसधातु गलाने के पात्र जैसा काला था। उसके नेत्रों में विष और क्रोध भरा था, काजल के ढेर जैसा वह लगता था। उसकी आँखें लाल-लाल थी। उसकी दोहरी जीभ लपलपा रही थी। कालेपन के कारण वह पृथ्वी की चोटी जैसा लगता था। वह अपना उग्र, दैदीप्यमान, टेढ़ा, मोटा, कठोर भयंकर फन फैलाये हुए था। वह लुहार की धौंकनी की तरह फुंकार रहा था। उसका प्रचण्ड क्रोध विराम नहीं ले रहा था।

वह सर्प रूप देव पौषधशाला में कामदेव श्रमणोपासक के पास आया और बोला अरे कामदेव! तुम अपने शीलव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास को भंग नहीं करोगे तो में सर्राट करता हुआ तुम्हारे शरीर पर चढ़ूंगा, पूँछ की और से तुम्हारे गले में तीन लपेटे लगाऊँगा, लपेट कर तीक्ष्ण जहरीले दाँतों से तुम्हारी छाती पर डंक मारूँगा, जिससे तुम विकट दुःख से पीड़ित होते हुए असमय ही मर जाओगे।

सर्परूपधारी उस देव द्वारा यों कहे जाने पर भी कामदेव निर्भीक उपासना में रत रहा। तब देव ने दूसरी और तीसरी बार भी कहा, लेकिन कामदेव श्रावक निर्भीक रहा।

सर्परूपधारी देव ने कामदेव को निर्भय देखा तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर सर्राटे के साथ उसके शरीर पर चढ़ गया। चढ़कर पिछले भाग से उसके गले में तीन लपेटे लगाये और तीक्ष्ण, जहरीले दाँतों से छाती पर डंक मारा।

श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र वेदना को सहनशीलता के साथ झेला। तब सर्परूपधारी देव ने देखा कि कामदेव निर्भय है, उसे कोई निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित[क], विपरिणामित[ख] नहीं कर सका है तो श्रान्त-क्लान्त[ग] और खिन्न होकर वह धीरे-धीरे पीछे हटा। वैसा कर उसने उत्तम दिव्य रूप धारण कर लिया।

उस देव के वक्षस्थल पर हार सुशोभित हो रहा था। उसकी भुजाओं पर कंकण[घ] तथा बाहुरक्षिका-भुजाओं को सुस्थिर बनाये रखने वाली आभरणात्मक पट्टी, अंगद भुजबन्द धारण किये थे। केसर और कस्तूरी आदि से चित्रित कपोलों[ङ] के समीप कर्णभूषण, कुण्डल सुशोभित थे। वह अनेक प्रकार के हाथों के आभूषण धारण किये हुए थे। उसके मस्तक पर विभिन्न तरह की

(क) क्षुभित - डराना **(ख) विपरिणामित** - परिणामों को बदलना **(ग) श्रान्त-क्लान्त** - थकना **(घ) कंकण** - कंगन **(ङ) कपोलों** - गालों

मालाओं से युक्त मुकुट था। वह मांगलिक, अखण्डित, उत्तम, पोशाक पहने हुए था। उसका शरीर घुटनों तक लटकती उत्तम मालाओं तथा चन्दन व केसर के विलेपन से युक्त था। उसने दिव्य वर्ण, गन्ध, रूप, स्पर्श, दैहिक संहनन[क], संस्थान[ख], ऋद्धि, वस्त्राभूषण आदि दैविक समृद्धि आभा इष्ट पारिवारिक योग, प्रभा, कान्ति, दीप्ति, तेज, लेश्या से प्रकाश युक्त, शोभा युक्त, प्रसन्नता युक्त, मन को अपने में रमा लेने वाले, मन में बस जाने वाले दिव्य देवरूप को धारण किया और श्रमणोपासक कामदेव की पौषधशाला में प्रवृत्त[ग] हुआ। प्रविष्ठ होकर आकाश में अवस्थित हो छोटी-छोटी घण्टिकाओं से युक्त पाँच-वर्णों के उत्तम वस्त्र धारण किये हुए वह श्रमणोपासक कामदेव से यों बोला- श्रमणोपासक कामदेव! देवानुप्रिय! तुम धन्य हो, पुण्यशाली हो, कृतकृत्य हो, शुभ लक्षण वाले हो। देवानुप्रिय! तुम्हें निर्ग्रन्थ[घ] प्रवचन में ऐसा विश्वास, आस्था सुलब्ध है, सुप्राप्त है, स्वायत्त[ङ] है, निश्चय ही तुमने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त कर लिया है।

देवानुप्रिय! मैं यहाँ तुम्हारी परीक्षा लेने इसलिये आया कि शकेन्द्र[IV] ने इन्द्रासन पर स्थित होते हुए चौरासी हजार सामानिक देवों, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, सपरिवार आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं[V], सात सेनाधिपतियों तीन लाख छत्तीस हजार अंगरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से देवों और देवियों के बीच यों कहा था कि देवों! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्र में चम्पा नगरी में श्रमणोपासक कामदेव पौषधशाला में पौषध स्वीकार किये हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ मणिरत्न, सुवर्णमाला वर्णक सज्जा हेतु मंडन आलेखन एवं चन्दन, केसर आदि के विलेपन का त्याग किये हुए, शस्त्र दण्डादि से रहित, एकाकी, अद्वितीय-बिना किसी को साथ लिए, कुश के बिछौने पर अवस्थित हुआ श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकृत धर्म प्रज्ञप्ति के अनुरूप उपासनारत है। वह कामदेव किसी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित तथा विपरिणामित[च] नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार शकेन्द्र देवराज[VI] के कहे जाने पर मुझे उनके कथन में श्रद्धा

(क) दैहिक संहनन - शारीरिक हड्डियों की रचना **(ख) संस्थान** - शरीर का आकार **(ग) प्रवृत्त** - आना **(घ) निर्ग्रन्थ** - वीतराग भगवन्तों का प्रवचन **(ङ) स्वायत्त** - अधिकृत **(च) विपरिणामित** - विचलित

और विश्वास नहीं हुआ। उनका कथन मुझे अरुचिकर लगा। तब मैं शीघ्र यहाँ आया। यहाँ आकर विविध प्रकार से मैंने तुम्हारी परीक्षा की। देवानुप्रिय! जो ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषोचित पराक्रम तुम्हें प्राप्त है, जिसको तुमने अधिगत[क] किया है, वह सब मैंने देखा। देवानुप्रिय! मैं तुमसे क्षमायाचना करता हूँ। देवानुप्रिय! मुझको क्षमा करो। देवानुप्रिय! आप क्षमा करने में समर्थ हैं। मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा। यों कहकर उसने पैर में पड़कर हाथ जोड़कर बार-बार क्षमायाचना की। क्षमायाचना कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

अब श्रमणोपासक कामदेव[9] ने यह जानकर कि अब उपसर्ग[ख] नहीं रहा तो उसने प्रतिमा का पारण-समापन कर लिया। कामदेव[10] ने चिन्तन किया कि भगवान महावीर यहाँ पधारे हुए हैं तो मैं श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करके पौषध को पालूँ। यों सोचकर उसने शुद्ध तथा सभा में जाने योग्य मांगलिक वस्त्र भलीभाँति पहने, अल्पभार वाले बहुमूल्य आभूषणों से स्वयं को अलंकृत[ग] किया और वहाँ से निकलकर चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य[घ] में श्रमण भगवान महावीर के पास शँख श्रावक की तरह आकर प्रभु की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दन नमस्कार किया और मानसिक, वाचिक एवं कायिक त्रिविध प्रभु की पर्युपासना करने लगा।

श्रमण भगवान महावीर ने उस कामदेव श्रावक को तथा उस विशाल परिषद को धर्मोपदेश दिया, देशना देने के पश्चात श्रमण भगवान महावीर ने कामदेव से कहा- कामदेव! अर्धरात्रि के समय एक देव तुम्हारे सामने प्रकट हुआ था, उस देव ने विकराल पिशाच का रूप धारण कर अत्यन्त क्रुद्ध हो नीली चमचमाती तलवार हाथ में लेकर तुमसे कहा था- कामदेव! यदि तुम अपने शील आदि व्रत को भग्न नहीं करोगे तो तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा, जिससे तुम आर्तध्यान करते हुए मृत्यु को प्राप्त करोगे। देव द्वारा ऐसा दो-तीन बार कहे जाने पर भी कामदेव! तुम निर्भय रहे। क्या यह बात सत्य है?

कामदेव :- भगवान! परिपूर्ण सत्य है।

भगवान :- उसके बाद देव ने हाथी और सर्प का रूप बनाया, उपसर्ग दिया तब भी तुम निर्भय रहे। क्या यह बात सत्य है?

(क) अधिगत - प्राप्त **(ख) उपसर्ग** - कष्ट **(ग) अलंकृत** - सजाया **(घ) पूर्णभद्र चैत्य** - पूर्णभद्र नामक यक्ष का यक्षायवन

कामदेव :- भगवान! परिपूर्ण सत्य है[11]।

तब भगवान[12] महावीर ने बहुत से श्रमण और श्रमणियों को सम्बोधित करके कहा- आर्यो! यदि श्रमणोपासक गृहस्थी-घर में रहते हुए भी देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत पशु-पक्षीकृत उपसर्गों को भलीभाँति सहन करते हैं, क्षमा एवं तितिक्षा[क] भाव से झेलते हैं तो आर्यो! द्वादशांग रूप गणिपिटक- आचारांग आदि बारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा देवकृत, मनुष्यकृत तथा तिर्यंच उपसर्गों को सहन करना[13], क्षमा एवं तितिक्षा भाव से झेलना शक्य ही है।

भगवान महावीर का यह कथन उन बहुसंख्यक साधु-साध्वियों ने 'ऐसा ही है भगवान!' यों कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया[14]।

श्रमणोपासक कामदेव प्रभु की अनमोल वाणी श्रवण करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने श्रमण भगवान महावीर से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया, तत्पश्चात् भगवान को तीन बार वन्दन, नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

भगवान महावीर ने तब किसी एक दिन चम्पा से प्रस्थान[ख] कर दिया और वे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए दशार्णपुर[ग] नगर पधार गये।

दशार्णभद्र को दिशाबोध :-

उस समय दशार्णपुर[VII] नगर का राजा दशार्णभद्र था[15]। उस राजा के अन्त:पुर में पाँच सौ रानियाँ थी। उसके राज्य में विशाल सेना थी। वह प्रजा पर सुखपूर्वक राज्य करते हुए निरन्तर सांसारिक जीवन का आनन्द ले रहा था। दोपहर के समय वह भोजन से निवृत्त होकर आमोद-प्रमोद में तल्लीन था कि सहसा उद्यानपाल[घ] ने आकर सूचना दी कि देव! उद्यान में तीर्थंकर भगवान महावीर पधारे हैं।

जब उद्यानपाल से राजा दशार्णभद्र[16] ने यह समाचार श्रवण किये तो वह अतीव प्रसन्न हुआ। सिंहासन से उसी क्षण नीचे उतर कर भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उद्यानपाल को प्रीतिदान[ङ]

(क) तितिक्षा - सहनशीलता **(ख) प्रस्थान करना** - रवाना होना **(ग) दशार्णपुर** - (वर्तमान में) मंदसौर **(घ) उद्यानपाल** - बगीचे की रक्षा करनेवाला **(ङ) प्रीतिदान** - प्रेम-पूर्वक उपहार

देकर विसर्जित[क] किया।

राजा दशार्णभद्र मन में अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते हुए चिन्तन कर रहा है अहो! आज... आज... दशार्णपुर[17] में भगवान महावीर... परमात्मा महावीर पधारे हैं... मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे भगवान के दर्शन मिलेंगे... जिनवाणी श्रवण करने का भव्य मौका मिलेगा। अहा! मैं जिनवर के द्वार पर जाऊँगा... लेकिन कैसे जाऊँ... मेरे पास अपार वैभव है... अपार समृद्धि है... अन्त:पुर[ख] में रानियों की बड़ी संख्या है... विशाल सेना है... तब ऐसी शान-शौकत से जाना चाहिए कि लोग नजारा देखते ही रह जायें और बोलने लगें कि आज तक ऐसी समृद्धि और भव्य ठाठ-बाट से कोई भगवान के दर्शन करने नहीं गया। हाँ... हाँ... मुझे ऐसे ही जाना है। ऐसा चिन्तन करके उसने सेनाधिकारी[ग] को बुलाया और उसे निर्देश दिया कि कल प्रात:काल सेना को अभूतपूर्व तरीके से सुसज्जित करो। सेनाधिकारी ने राजाज्ञा[घ] को स्वीकार किया।

तत्पश्चात् उसने कौटुम्बिक पुरुष[ङ] को बुलाया और निर्देश दिया कि नगर की अच्छी तरह सफाई करवाओ, चन्दन-मिश्रित सुगन्धित जल का छिड़काव करवाओ, सभी जगह पुष्पवर्षण करो, वन्दनवार और रजत-कलशों[च] की श्रेणियों से मार्ग को सुसज्जित करो और सम्पूर्ण शहर को ध्वजाओं से परिमण्डित[छ] करो। उस कौटुम्बिक पुरुष ने राजा की आज्ञा को स्वीकार किया।

तत्पश्चात् उसने एक अन्य कौटुम्बिक पुरुष को बुलवाया और निर्देश दिया कि तुम उद्घोषणा करो कि प्रात:काल सभी सामन्त, मंत्रीगण और नागरिक सुसज्जित होकर आवें। सभी को सामूहिक रूप से भगवान को नमस्कार करने के लिए जाना है। उस कौटुम्बिक पुरुष ने भी राजाज्ञा को विनय के साथ स्वीकार किया।

राजा दशार्णभद्र यामा[18] के शान्त-प्रशान्त क्षणों में इसी प्रकार चिन्तन कर रहा है कि ऐसे ठाठ-बाट से भगवान के समवसरण में जाऊँगा, जैसे आज तक कोई गया ही नहीं। इसी विचार में न जाने रात्रि कब व्यतीत हो गयी। कल्पनालोक में विचरण करने वाला इतना डूब जाता है कि वह विस्मृति[ज] के आँचल में सब कुछ छिपा लेता है। उसे समय की चंचलता का भान ही नहीं रहता। वह मन का समस्त वैभव चिन्तन की चाँदनी में बिखेर कर अलमस्त बन

(क) विसर्जित करना - भेजना **(ख) अन्त:पुर** - रानियों का महल **(ग) सेनाधिकारी** - सेनापति **(घ) राजाज्ञा** - राजा की आज्ञा (ङ) **कौटुम्बिक पुरुष** - कर्मचारी **(च) रजत-कलशों** - चाँदी के कलशों **(छ) परिमण्डित** - सजाना **(ज) विस्मृति** - विस्मरण, भूल

जाता है। गहराई के सागर में डूब कर शान्त-प्रशान्त बन जाता है।

राजा दशार्णभद्र भी उसी अवस्था से गुजर रहे थे। रात्रि कब व्यतीत हो गयी, पता ही न चला।

प्रात:कालीन पक्षियों के कलरव[क] को श्रवण कर जागृत हुए और स्नान आदि से निवृत्त होकर उन्होंने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत[ख] किया और अपने प्रधान पट्हस्ती पर आरूढ़ हो गया। उसके दोनों ओर चँवर ढुलाये जा रहे थे। छत्र धारण किया हुआ था। वह नरेन्द्र, देवेन्द्र, इन्द्र के समान लग रहा था। उसके पीछे हजारों सामन्त वस्त्राभूषण से सज्जित होकर चल रहे थे। उसके पीछे देवांगना के समान सुशोभित रानियाँ रथारूढ़[ग] होकर चल रही थीं। बन्दीजन राजा की स्तुति कर रहे थे। नागरिक जन जहाँ-तहाँ खड़े-खड़े राजा का अभिवादन कर रहे थे। गायक लोग मधुर-मधुर ध्वनियों से गीतों की स्वर लहरियों द्वारा आकाशमण्डल को गुञ्जायमान कर रहे थे। हाथी-घोड़े, नगाड़े आदि पंक्तिबद्ध आगे चल रहे थे। चहुँओर पताकाएं फहरा रही थीं, तो चतुरंगिणी सेना के ठाठ-बाट का अलग ही नजारा दिख रहा था। राजा दशार्णभद्र गर्व से सिर ऊँचा करके मन ही मन पुलकित हो रहा था कि वास्तव में ऐसे ठाठ-बाट से कोई राजा आज तक भगवान के दर्शन हेतु नहीं पहुँचा होगा।

राजा अपने अभिमान के ऐरावत हाथी पर चढ़ा था। देखते ही देखते वह समवसरण के निकट पहुँचा और उसने भगवान को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह अपने योग्य स्थान पर बैठ गया और गर्व के गुब्बारे में फूला सोच रहा है कि ऐसी वन्दना सर्वप्रथम मैंने की है। इतने ठाठ-बाट से आज तक ऐसी वन्दना और किसी ने नहीं की है।

इधर प्रथम देवलोक के इन्द्र-शकेन्द्र ने राजा दशार्णभद्र के गर्वयुक्त अभिमान को अपने ज्ञान से जाना। उन्होंने चिन्तन किया कि दशार्णभद्र की अनुपम भक्ति तो अच्छी है, पर इसे गर्व नहीं करना चाहिए। गर्व इनसान को पतन के रास्ते पर डालकर उसका सर्वनाश कर डालता है। गर्व का कीचड़ निर्मल व्यक्ति को भी कषाय के पंक[घ] में डालकर उसका स्वरूप विकृत कर देता है। अभिमान की आँख गुणों का प्रलय मचा देती है। इसी अभिमान ने रावण, कौरव और कंस के कुल का वंश ही समाप्त कर डाला। यह वही अभिमान है, जो

(क) कलरव - पक्षियों के चहचहाने की आवाज **(ख) अलंकृत** - सुसज्जित **(ग) रथारूढ़** - रथ पर चढ़कर **(घ) पंक** - कीचड़

परमोपकारी गुरु के उपकारों को भी विस्मरण की ओर ले जाकर सर्वथा नाश के कगार पर खड़ा कर देता है।

इसी अभिमान ने कोणिक को पितृघाती[क] की संज्ञा दिलाकर नरक का मेहमान बना दिया तो इसी अभिमान ने संयुक्त परिवारों को बिखेर कर घरों की रौनक को समाप्त कर दिया। हाँ! हाँ! अभिमान! पतन का पारावार[ख]... इसे समाप्त करना इन्द्र राजा के गर्व को हटाने के लिए तत्पर है। उसने एक जलभरित विमान की विकुर्वणा की, जिसमें स्फटिक रत्न के समान स्वच्छ निर्मल जल भरा हुआ था। ऊपर सुन्दर और विकसित कमल के फूल खिले हुए विहंसते से प्रतीत हो रहे थे। हंस और सारस पक्षी किलोल करते हुए मधुर निनाद[ग] कर रहे थे, वह जलकांत विमान में अनेक देवों के साथ इन्द्र बैठा हुआ था। देवांगनाएँ चामर बिंजा रही थीं, तो गंधर्व देव मधुर गायन की स्वर लहरियों से वातावरण की सुषमा में चार चाँद लगा रहे थे[19]। इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुआ। वह हाथी मणिमय आठ दाँत वाला था। उस पर देवदूष्य की झूल आच्छादित थी। देवांगनाएं इन्द्र पर चँवर ढुला रही थी। तब शकेन्द्र ने ऐरावत देव को आज्ञा देकर चौसठ हजार हाथियों की विकुर्वणा[घ] करवाई। प्रत्येक हाथी के बारह मुख, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत, प्रत्येक दाँत पर आठ-आठ वापिकाएं[ङ], प्रत्येक वापिका में आठ-आठ कमल और प्रत्येक कमल पर एक-एक लाख पंखुड़ियाँ थी। प्रत्येक पंखुड़ी में बत्तीस प्रकार के नाटक हो रहे थे। कमल की मध्यकणिका पर चतुर्मुखी प्रासाद[च] थे। सभी प्रासादों में इन्द्र अपनी आठ-आठ अग्रमहिषियों[छ] के साथ नाटक देख रहा था। इस प्रकार विराट स्मृति के साथ इन्द्र, भगवान को वन्दन करने के लिए आकाश से नीचे उतरा और भक्तिपूर्वक उसने समवसरण में प्रवेश किया। उस समय उसके जलकान्त विमान में रही हुई क्रीड़ा-वापिकाओं में रहे हुए प्रत्येक कमल से संगीत की ध्वनि निकलने लगी और प्रत्येक संगीत में एक इन्द्र के समान वैभव वाला सामानिक देव दिखाई देने लगा। उस देव का परिवार भी महान ऋद्धि युक्त तथा आश्चर्योत्पादक था, इन्द्र ने भगवान की वन्दना की।

इन्द्र की इस अपार ऋद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा आश्चर्यचकित

(क) पितृघाती - पिता की घात करने वाला **(ख) पारावार** - समुद्र **(ग) निनाद** - आवाज **(घ) विकुर्वणा** - वैक्रिय लब्धि से बनाना **(ङ) वापिकाएँ** - बावड़ियाँ **(च) प्रासाद** - महल **(छ) अग्रमहिषियों** - प्रधान पटरानियाँ

हो गये। उनका अहंकार नष्ट हो गया। वह चिन्तन करने लगा- अहो! मैंने इतनी तुच्छ ऋद्धि का व्यर्थ ही गर्व किया। मेरे पास कुछ भी नहीं था, तब भी कूप-मण्डूक[क] की तरह व्यर्थ गर्व करता रहा। इन्द्र की अपार ऋद्धि के सामने मेरी ऋद्धि तो दिन में उग रहे चन्द्र की तरह फीकी लग रही है। मेरे विचार कितने तुच्छ हैं[20]... आज इन्हीं तुच्छ विचारों से मेरी पराजय हुई है। अब मैं... मैं... ऐसा कार्य कर दिखलाऊँ जिससे मुझे इन्द्र भी परास्त न कर सके। बस फिर क्या था। इतना सोचते ही दशार्णभद्र को वैराग्य आ गया। वह चिन्तन करने लगा- अहो! सांसारिक ऋद्धि क्षणिक है, मुझे आत्मिक ऋद्धि का वरण करना चाहिए। आत्म विनय में कभी पराजय होती ही नहीं[21]। अब मुझे हारना नहीं, जीतना है। मेरी जीत सदैव कायम रहे, बस यही सोचकर दशार्णभद्र ने समस्त राजचिह्नों का परित्याग किया और भगवान को वन्दन-नमस्कार करके बोले- भगवन्! मैं आपके सान्निध्य में संयम ग्रहण करना चाहता हूँ।

भगवान ने उन्हें दीक्षा प्रदान की[22]। दीक्षित होने के पश्चात् इन्द्र, मुनि दशार्णभद्र के समीप आये और नमस्कार करके बोले- महात्मन्! आप विजयी हैं। मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ। मैं आपकी बराबरी नहीं कर सकता। यह कहकर इन्द्र स्वर्ग में चला गया और दशार्णभद्र मुनि तप-संयम की आराधना में लीन बन गये[23]।

सोमिल की जिज्ञासाएँ

भगवान कुछ समय दशार्णपुर विराजकर फिर विदेह की ओर विहार कर गये और ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वाणिज्यग्राम पधारे और वहाँ के द्युतिपलाश[VIII] नामक उद्यान में विराज गये[24]।

उस समय वाणिज्यग्राम में सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था, जो धनाढ्य और किसी से नहीं पराजित होने वाला था[25]। वह वेद एवं वेदांगों[ख] में निष्णात था। वह पाँच शिष्यों और अपने कुटुम्ब[26] का आधिपत्य करता हुआ सुखपूर्वक जीवन यापन करता था।

उस समय भगवान महावीर[27] की पर्युपासना करने के लिए परिषद् गयी। सोमिल ब्राह्मण को भी उस समय ऐसी जानकारी मिली कि श्रमण भगवान

(क) कूप-मण्डूक - कुएं का मेढक **(ख) वेद एवं वेदांग** - वेद ऋग्वेद आदि चार हैं, वेदांग 6 हैं यथा- 1. शिक्षा - उच्चारण विज्ञान 2. छान्दस् - छन्द शास्त्र 3. व्याकरण 4. निरुक्त- वेद के कठिन शब्दों की व्याख्या 5. ज्योतिषी 6. कल्प- कर्मकाण्ड

महावीर यहाँ पधारे हैं तो उसने चिन्तन किया कि मैं श्रमण-ज्ञातपुत्र[क] के पास जाऊँ और उनसे ऐसे अर्थ एवं व्याकरण के प्रश्न पूछूं। यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वन्दन-नमस्कार करके पर्युपासना करूँगा। यदि वे मेरे और इन और ऐसे अर्थ और प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकेंगे तो मैं उन्हें निरूत्तर कर दूँगा। ऐसा चिन्तन सोमिल ब्राह्मण ने किया और विचार करके उसने स्नानादि कर शरीर को वस्त्र-अलंकारों[ख] से विभूषित[ग] किया। फिर वह अपने घर से निकला और अपने सौ शिष्यों से घिरा हुआ पैदल चलकर, वाणिज्यग्राम के मध्य होकर द्युतिपलाश उद्यान में जहाँ भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और भगवान से न अति निकट, न अति दूर खड़े होकर उनसे इस प्रकार पूछा-

भगवन्! आपके धर्म में यात्रा (संयम विषयक प्रवृत्ति), यापनीय (मोक्ष साधना में तत्पर पुरुषों द्वारा इन्द्रिय आदि को वश में करने रूप धर्म), अव्याबाध (शारीरिक, मानसिक बाधा पीड़ा न होना) और प्रासुक विहार (निर्दोष एवं प्रासुक शयन आसन स्थानादि का ग्रहण उपयोग करना) है?

भगवान :- सोमिल! मेरे धर्म में यात्रा भी है, यापनीय भी है, अव्यबाध भी है और प्रासुक विहार भी है।

सोमिल :- भगवन्! आपकी यात्रा कौनसी?

भगवान :- सोमिल! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यक आदि योगों में मेरी जो प्रवृत्ति है, वही मेरी यात्रा है।

सोमिल :- भगवन्! आपके यापनीय क्या है?

भगवान :- सोमिल! यापनीय दो प्रकार का है यथा- इन्द्रिय-यापनीय[घ] और नो-इन्द्रिय-यापनीय[ङ]।

सोमिल :- भगवन्! आपका इन्द्रिय-यापनीय क्या है?

भगवान :- सोमिल! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय ये पाँचों इन्द्रियाँ मेरे सदैव वश में रहती हैं। यह मेरा इन्द्रिय-यापनीय है।

सोमिल :- भगवन्! आपका नो-इन्द्रिय-यापनीय क्या है?

भगवान :- सोमिल! सोमिल! मेरे क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों

(क) श्रमण-ज्ञातपुत्र - श्रमण भगवान् महावीर **(ख) वस्त्र-अलंकारों** - वस्त्र-आभूषणों **(ग) विभूषित** - सुसज्जित **(घ) इन्द्रिय-यापनीय** - पाँचों-इन्द्रियों को वश में करना **(ङ) नो-इन्द्रिय-यापनीय** - क्रोध आदि चार कषायों का वश में करना

कषाय नष्ट हो गये हैं। ये मेरे उदय में नहीं आते हैं। यही मेरा नो-इन्द्रिय-यापनीय है।

सोमिल :- भगवन्! आपके अव्याबाध क्या है?

भगवान :- सोमिल! मेरे वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य तथा अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी रोग, आतंक एवं शरीरगत दोष उपशान्त हो गये हैं। वे उदय में नहीं आते। यही मेरा अव्याबाध है।

सोमिल :- भगवन्! आपका प्रासुक विहार कौनसा है?

भगवान :- सोमिल! बगीचे, बाग, देवालय, सभा और प्याऊ आदि स्थानों में तथा स्त्री, पशु, नपुंसक रहित बस्तियों में प्रासुक[क], एषणीय[ख] बाजोट, तख्ता, शय्या, संस्तारक[ग] आदि ग्रहण करके मैं विचरण करता हूँ, यही मेरा प्रासुक विहार[28] है।

सोमिल :- भगवन्! आपके लिए सरिसव भक्ष्य है या अभक्ष्य?

भगवान :- सोमिल! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में दो प्रकार के सरिसव कहे गये हैं, यथा- मित्र सरिसव- समानवय वाला मित्र और धान्य सरिसव- सर्षप-सरसों। उनमें जो मित्र सरिसव हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा- पहला, सहजात- एक साथ जन्मे हुए। दूसरा, सहवर्धित- एक साथ बड़े हुए और तीसरा, सह पांशुक्रीड़ित- एक साथ धूल में खेले हुए। ये तीनों प्रकार के सरिसव श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। वहीं जो धान्य सरिसव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा- शस्त्र परिणत और अशस्त्र परिणत। अशस्त्र परिणत, श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं, क्योंकि उनमें जीव होने से वे सचित्त है और साधु सचित्त का त्यागी होता है। शस्त्र परिणत दो प्रकार के हैं, यथा- एषणीय निर्दोष तथा अनेषणीय-सदोष। अनेषणीय सरिसव[घ] तो श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है।

एषणीय सरिसव दो प्रकार के हैं, यथा- याचित[ङ], माँगकर लिये हुए तथा अयाचित, बिना माँगे हुए। अयाचित श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है। याचित दो प्रकार के हैं, यथा- लब्ध[च] और अलब्ध[छ]। अलब्ध सरिसव श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है और जो लब्ध है, वह श्रमण निर्ग्रन्थों के

(क) प्रासुक - निर्जीव **(ख) एषणीय** - निर्दोष खोज किये हुए **(ग) संस्तारक** - दर्भ आदि का बिछौना **(घ) सरिसव** - सरसों **(ङ) याचित** - याचना की हुई, माँग कर लाई हुई **(च) लब्ध** - प्राप्त **(छ) अलब्ध** - अप्राप्त

लिए भक्ष्य है। इस कारण, हे सोमिल! ऐसा कहा गया है कि सरिसव[IX] मेरे लिए भक्ष्य भी है तथा अभक्ष्य भी।

सोमिल :- भगवन्! आपके लिए मास[X] भक्ष्य है या अभक्ष्य?

भगवान :- सोमिल! मास भक्ष्य भी है तथा अभक्ष्य भी।

सोमिल :- भगवन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि मास भक्ष्य है तथा अभक्ष्य भी।

भगवान :- सोमिल! तुम्हारे ब्राहाण शास्त्रों में मास दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा द्रव्य मास और काल मास। उनमें से जो काल मास है वे श्रावण से लेकर आषाढ़ मास पर्यन्त बारह है यथा- श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ और आषाढ़। ये बारह मास श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। द्रव्य मास दो प्रकार का है यथा- अर्थमाष और धान्यमाष। उनमें से अर्थमाष (सोना-चाँदी तौलने का माशा) दो प्रकार का है यथा स्वर्णमाष और रौप्यमाष[क]। ये दोनों माष श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। धान्यमाष दो प्रकार का है यथा- शस्त्र-परिणत और अशस्त्र परिणत इत्यादि। उसमें शस्त्र-परिणत[ख] एषणीय, याचित और लब्ध श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य है[29]।

सोमिल :- भगवन्! आपके लिए कुलत्था[XI] भक्ष्य हैं अथवा अभक्ष्य?

भगवान :- सोमिल! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में कुलत्था दो प्रकार की बतलाई गयी है यथा स्त्रीकुलत्था कुलागंना और धान्य कुलत्था- कुलथी धान। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की कही गयी है यथा कुलवधू, कुलमाता और कुलकन्या। यें तीनों-श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं (क्योंकि ये खाद्य पदार्थ नहीं हैं)। जो धान्य कुलत्था है उसमें जो कुलथी धान शस्त्र परिणत, एषणीय[ग], याचित[घ] और लब्ध[ङ] हो तो श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य है।

सोमिल :- भगवन्! आप एक हैं या दो हैं अथवा अक्षय हैं, अव्यव हैं, अवस्थित हैं अथवा अनेक भूत भाव भाविक हैं?

भगवान :- सोमिल! मैं एक, दो, अक्षय, अव्यव, अवस्थित और अनेक भूत भाव भविक हूँ।

(क) रौप्यमास - चाँदी तौलने का माशा **(ख) शस्त्र-परिणत** - जीव-रहित **(ग) एषणीय** - निर्दोष **(घ) याचित** - मांगकर लाया हुआ **(ङ) लब्ध** - प्राप्त

सोमिल :- भगवन्! आप ऐसा किस कारण फरमाते हैं?

भगवान :- सोमिल! मैं आत्म-द्रव्य की अपेक्षा एक हूँ। मैं ज्ञान और दर्शन (सामान्य ज्ञान) की अपेक्षा से दो हूँ। मेरे आत्म-प्रदेश कभी क्षय नहीं होते इस कारण मैं अक्षय हूँ। आत्मा के कतिपय प्रदेशों का व्यय नहीं होने से मैं अव्यव हूँ। तीन काल में मेरी आत्मा स्थायी होने से मैं अवस्थित हूँ। भूत और भविष्य के विविध परिणामों के योग्य मेरी आत्मा है, क्योंकि भूत और भविष्य के अनेक विषयों में उपयोग लगता रहता है, इस कारण मैं अनेक भूत भाव भाविक हूँ।

इस प्रकार भगवान ने स्यादवाद शैली में उत्तर फरमाया कि आत्मा में नित्यानित्यत्व भाव रहता है, अतएव अक्षय, अव्यय और अवस्थित आदि आत्मा के नित्य पक्ष से सम्बन्धित हैं तथा अनेक भूत भाव भविक आत्मा के अनित्य पक्ष से सम्बंधित है।

भगवान के इन समाधानों को श्रवण करके सोमिल का मन श्रद्धा से अभिभूत[क] हो गया। उसका अहंकार जल में उठने वाली लहरों की तरह समाप्त हो गया। मन भक्ति से ओतप्रोत हो गया[30]। वह भगवान की वाणी से सम्बुद्ध[ख] होकर स्कन्दक की तरह कहने लगा- भगवन्! जैसा आप फरमाते हैं, वैसा ही है। जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के सान्निध्य में बहुत से राजा-महाराजा आदि हिरण्यादि[ग] का त्याग करके मुण्डित होकर आगार से अणगार[घ] धर्म में प्रव्रजित होते हैं, वैसा मैं अभी करने में असमर्थ हूँ, लेकिन मैं बारह प्रकार के श्रावक धर्म आपके सान्निध्य में स्वीकार करना चाहता हूँ।

इस प्रकार कह कर सोमिल ने चिन्तसारथि की तरह बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार किया और अपने घर लौट गया। अब सोमिल श्रमणोपासक बनकर जीवाजीव का ज्ञाता होकर विचरण करने लगा।

तब गौतम स्वामी ने पूछा :- भगवन्! क्या सोमिल ब्राह्मण आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा लेगा?

भगवान ने फरमाया :- गौतम! वह शंख श्रावक के समान समग्र दु:खों का अन्त करेगा।

गौतम स्वामी बोले :- हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी

(क) अभिभूत - युक्त-सराबोर **(ख) सम्बुद्ध** - जागृत बोध को प्राप्त **(ग) हिरण्यादि** - चाँदी आदि **(घ) अणगार** - साधु

प्रकार है। यों कहकर गौतम स्वामी अपनी संयम यात्रा में लीन हो गये[31]।

वर्षावास : वाणिज्यग्राम

इधर चातुर्मास की घड़ियाँ समीपस्थ[क] आ गयी और भगवान ने यह वर्षावास[ख] वाणिज्यग्राम में ही सम्पन्न करने का निश्चय किया। समय अपनी गति से गतिमान था। देखते ही देखते पावसकाल[ग] आ गया। वर्षावास प्रारम्भ हुआ और वाणिज्यग्राम[32] की जनता भगवान की अमृतवाणी का लाभ लेने लगी।

(क) समीपस्थ - नजदीक **(ख) वर्षावास** - चातुर्मास **(ग) पावसकाल** - चातुर्मास का समय

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के अठारहवें वर्ष के सन्दर्भ

1. (क) उत्तराध्ययन सूत्र / सटीक / अध्ययन 10
   (ख) श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याण विजय जी / 159-60
2. भगवान महावीर और उनका साधना मार्ग / लेखक - रिषभदास रांका / प्रका. भारत जैन महामण्डल वर्धा / सन् 1953 / पृष्ठ 27
3. जम्बू स्वामी / लेखक - दिवाकर चौथमल जी महाराज / प्रका. श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय - ब्यावर / सन् 1981 / पृष्ठ 11
4. भगवान महावीर एक अनुशीलन / श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. / पृष्ठ 519
5. उपासकदशांग सूत्र / अध्ययन 2
6. ज्ञात कुलरूपी समुद्र ने विकास करवामां चन्द्र समान भगवान श्री वर्धमान जिनेश्वर

   उत्तराध्ययन सूत्र / विभाग 2 / प्रेरक - गुरुणी जी लाभ श्री जी / जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर / पृष्ठ 1
7. पइन्नासुत्तं / प्रकीर्णक सूत्र / हस्तलिखित / पत्राकार / पत्र 632
8. उपासकदशांग और उसका श्रावकाचार / डॉ. सुभाष कोठारी / प्रका. आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर / प्र.सं. 1988 / पृष्ठ 34
9. महावीर कथा / गोपालदास पटेल / पृष्ठ 307 के अनुसार कामदेव ने महच्चन्द्र के साथ ही सोलहवें वर्षावास के बाद (वि.पू. 495) चम्पा में गृहस्थ धर्म स्वीकार किया

10. राजगृह में तीसवाँ वर्षावास करने के बाद वि.पू. 483 में गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

तीर्थंकर महावीर / श्री मधुकर मुनि / प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ आगरा / प्र.सं. 1974 / पृष्ठ 175

11. उपासकदशांग सूत्र / अध्ययन 2

12. हारिभद्रीयावश्यक वृत्ति टीप्पणकम् / रचनाकार मल्लधारी हेमचन्द्र / प्रका. देवचन्दलाल भाई, मुम्बई / सन् 1920 / पत्राकार / पत्र 53

13. धर्मसंग्रहणि / रचनाकार - हरिभद्रसूरि / टीका - मलयगिरी / प्रका. देवचन्दलाल भाई / सन् 1916 / पत्राकार / पत्र 88

14. उपासकदशांग सूत्र / अध्ययन 2 / पृष्ठ 19-31

15. श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याण विजय जी / पृष्ठ 161

16. अभिमानहाथी का / आ. श्री नानेश / प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर / प्र.सं. 2012 / पृष्ठ 62

17. दशार्णपुर के वर्णन के लिए देखिए :
युगों से युगों तक दशपुर / श्री सुरेन्द्र लोढा, मन्दसौर / प्र.सं. 2013

18. क्षणदा, रजनी, नक्तं, दोषा, श्यामा और क्षपा ये रात्रि के पर्यायवाची हैं।

नाममाला / लेखक महाकवि धनञ्जय / प्रकाशक - सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, श्लोक 48

19. महाशतक श्रावक / श्री काशीनाथा जैन / प्रका. खेलात घोषलेन, कलकत्ता / सन् 1962 / द्वितीय परिच्छेद

20. अनेकान्त दर्शन / लेखक पं. सुखलाल जी / प्रका. भारत जैन महामण्डल, बम्बई / प्र.सं. सन् 1974 / पृष्ठ 20

21. जैन इतिहास की प्रसिद्ध कथाएँ / उपा. अमरमुनि जी / प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ आगरा / द्वि. सं. 1974 / पृष्ठ 76

22. दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताणं मुणीचरे।
दसणभद्दोनिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ।।

उत्तराध्ययन / 18

23. (क) उत्तराध्ययन / टीका / अध्ययन 18
    (ख) त्रिषिष्टश्लाका पुरुष चारित्र 10/10
    (ग) भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति
    (घ) ऋषिमण्डल वृत्ति
24. श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याणा विजय जी / पृष्ठ 161
25. भगवती सूत्र / शतक 18/10
26. कुटुम्बं-पुत्रकलत्रादि समुदाय:
    श्री पिण्डनिर्युक्ति / रचनाकार भद्रबाहु स्वामी / भाष्य - मलयगिरी प्रका. देवचन्दलाल भाई / सन् 1918 / पत्राकार / पत्र 36
27. दिव्य पुरुष / साध्वी चन्द्रावती / प्रका. श्री तारक गुरुजैन ग्रन्थालय, उदयपुर / सन. 1974 / पृष्ठ 160
28. (क) भगवती विवेचन / पं. घेवरचन्द जी / भाग 6 / पृष्ठ 2759
    (ख) भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 18/10 / पृष्ठ 759
29. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / शतक 18/10 / पृष्ठ 760
30. अद्भुत योगी / लेखक - जौहरी दुर्लभ जी त्रिभुवन / प्रका. श्री अ.भा. साधुमाग्री जैन संघ, बीकानेर / तृ.सं. सन् 2002 / पृष्ठ 17
31. भगवती सूत्र / शतक 18/10
32. भगवान महावीर एक अनुशीलन / श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. / पृष्ठ 525

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के अठारहवें वर्ष के टिप्पण

I	राजुल
II	वैक्रिय
III	देव
IV	शकेन्द्र
V	7 सेनाएँ
VI	शकेन्द्र देवराज
VII	दशार्णपुर
VIII	दूतिपलाश चैत्य
IX	सरिसव
X	मास
XI	कुलत्था

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के अठारहवें वर्ष के टिप्पण

I पृष्ठ चम्पा :-

चम्पा का शाखापुर, जहाँ पर भगवान महावीर ने चतुर्थ वर्षा चातुर्मास्य किया था। यहीं के राजा और युवराज शाल, महाशाल तथा पिठर गागलि आदि को इन्द्रभूति गौतम ने प्रव्रज्या दी थी। पृष्ठ चम्पा, चम्पा से पश्चिम में थी। राजगृह से चम्पा जाते पृष्ठ चम्पा लगभग बीच में पड़ती थी।

श्रमण भगवान महावीर / पृ. 382-83

II वैक्रिय :-

वैक्रिय शरीर में अस्थि, मज्जा, माँस, रक्त आदि अशुचि पदार्थ नहीं होते। इन सबसे रहित इष्ट, कान्त, मनोज्ञ, प्रिय एवं श्रेष्ठ पुद्गल देह के रूप में परिणत हो जाते हैं। मृत्यु के बाद वैक्रिय-शरीर का शव नहीं बचता। उसके पुद्गल कपूर की तरह उड़ जाते हैं। वैक्रिय का तात्पर्य है कि जिस शरीर से विशिष्ट अथवा विविध क्रियाएँ की जाती हैं, जैसे एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटी देह को बड़ी बनाना, बड़ी देह को छोटी देह बनाना, पृथ्वी एवं आकाश में चलने योग्य विविध प्रकार के शरीर धारण करना, अदृश्य रूप बनाना।

III देव :-

वैक्रिय लब्धिधारी देव देह के पुद्गलों को जिस शीघ्रता से काट डालते हैं, तोड़-फोड़ कर देते हैं, उसी शीघ्रता के साथ तत्काल उन्हें यथावत् जोड़ भी सकते हैं। यह काम इतनी जल्दी होता है, तथापि पीड़ित व्यक्ति को घोर पीड़ा का अनुभव होता है। उसे यह भी अनुभव होता है कि वह काट डाला गया है,

लेकिन देह के पुद्गल बहुत कम समय तक ही पृथक् रहते हैं। इसलिए स्थूल शरीर वैसा का वैसा स्थित रहता है। यही कामदेव के साथ घटित हुआ।

IV शकेन्द्र :-

शकेन्द्र के नाम जैन अनुसार

शक्र	:-	शक्तिशाली
देवेन्द्र	:-	देवों के परमस्वामी
देवराज	:-	देवों में सुशोभित
वज्रपाणि	:-	हाथ में वज्र धारण किये
पुरन्दर	:-	असुरों के नगर विशेष के विहवंसक
शत क्रतु	:-	पूर्व जन्म में कार्तिक सेठ के भव में सौ बार विशिष्ट अभिग्रहों के पालक
सहस्त्राक्ष	:-	हजार आँखों वाले, अपने पाँच सौ मन्त्रियों की अपेक्षा हजार आँखों वाले
मधवा	:-	मेघों-बादलों के नियन्ता
पाकशासन	:-	पाक नामक शत्रु के नाशक
दक्षिणार्ध लोकाधिपति	:-	लोक के दक्षिण भाग के स्वामी
सुरेन्द्र	:-	देवताओं के प्रभु

वैदिक परम्परा में इन्द्र के नामों का कारण -

शतक्रतु	:-	क्रतु का अर्थ है यज्ञ। ऐसी वैदिक परम्परा की मान्यता है कि सौ यज्ञ सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न करने पर इन्द्र पद प्राप्त होता है, अत: शतक्रतु सौ यज्ञ पूर्ण कर इन्द्र पद पाने के अर्थ में प्रचलित है।
सहस्त्राक्ष	:-	हजार नेत्रवाला। इस नाम के पीछे एक पौराणिक कथा ब्रह्मवैबर्त पुराण में बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ उल्लेख है कि एक बार इन्द्र मन्दाकिनी के तट पर स्नान करने गये। वहाँ गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या स्नान कर रही थी, जिसे देख इन्द्र की बुद्धि काम वासना से भ्रष्ट हुई। उसने

गौतम ऋषि का रूप बनाकर अहिल्या का शील भंग किया। इसी मध्य गौतम ऋषि वहाँ पहुँचे। उन्होंने इन्द्र को ललकारते हुए कहा- तुम पापी, अधम, नीच, पतित, योनि लम्पट हो। तुम्हारा यह निन्दनीय कार्य लोगों के समक्ष प्रकट हो जाये, इसलिए मैं तुम्हारे शरीर पर हजार योनियाँ बनने का शाप देता हूँ। उसी समय इन्द्र के शरीर पर हजार योनियाँ बन गयी। इन्द्र घबरा गया। ऋषि के चरणों में गिरकर अनुनय विनय करने लगा। तब ऋषि ने कहा एक वर्ष तक तुम्हें इस घृणित रूप का कष्ट झेलना पड़ेगा। तुम प्रतिक्षण योनि की दुर्गन्ध में रहोगे। उसके बाद सूर्य की आराधना करने से ये योनियाँ सहस्रनेत्र बन जायेंगी। आगे चलकर वैसा ही हुआ। सूर्य की आराधना करने से सहस्राक्ष बने। तभी से उनका ये नाम प्रचलित हुआ।

V 7 सेनाएँ :-

भवनपति, वाणव्यन्तर और वैमानिकों के सात प्रकार की सेनाएँ होती हैं। ज्योतिष्कों में छह प्रकार की सेनाएँ होती हैं।

पहले प्रकार की गन्धर्व सेना है। दूसरे प्रकार में नृत्य करने वाले देवों का सैन्य, तीसरे प्रकार में अश्वरूप सैन्य, चौथे प्रकार में हाथियों का सैन्य, पाँचवां रथ सैन्य और छठा पैदल सैन्य। यह छ: प्रकार का सैन्य तो सामान्यत: सर्व इन्द्रों के पास होता है। उनमें भी वैमानिक निकायवर्ती इन्द्रों के पास सात प्रकार का सैन्य होने से सातवां वृषभ का सैन्य होता है। भवनपति और व्यन्तरेन्द्रों का सातवां प्रकार का सैन्य महिष (भैसों) का होता है। केवल ज्योतिष्केन्द्रों के पास छ: प्रकार का सैन्य होता है। जिस तरह राजा के समर्थ होने पर भी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सामर्थ्यवान होने पर भी इन्द्र को युद्धादि के प्रसंग पर सेना की आवश्यकता होती है।

बृहत्संग्रहणी गाथा 46/पृ. 109

VI शकेन्द्र देवराज :-

सौधर्म देवलोक के अधिपति शकेन्द्र की तीन परिषदें होती हैं- शमिता यानी आभ्यन्तर, चण्डा मध्यम तथा जाया यानी बाह्य। आभ्यन्तर परिषद् में बारह हजार देव और छह सौ देवियाँ, मध्यम परिषद् में चौदह हजार देव और छह सौ देवियाँ तथा बाह्य परिषद् में सोलह हजार देव और पाँच सौ देवियाँ होती है। आभ्यन्तर परिषद में देवों की स्थिति पाँच पल्योपम की, देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की, मध्यम परिषद् में देवों की स्थिति चार पल्योपम की, देवियों की स्थिति दो पल्योपम की तथा बाह्य परिषद् में देवों की स्थिति तीन पल्योपम की तथा देवियों की स्थिति एक पल्योपम की होती है।

अग्रमहिषी परिवार - प्रत्येक अग्रमहिषी-पटरानी के परिवार में पाँच हजार देवियाँ होती हैं। इस प्रकार इन्द्र के अन्त:पुर में चालीस हजार देवियों का परिवार है।

सेनाएँ :- हाथी, घोड़े, बैल, रथ और पैदल से पाँच सेनाएँ लड़ने हेतु होती हैं तथा दो सेनाएँ गन्धर्वानीक- गाने-बजाने वालों का दल तथा नाट्यानीक- नाटक करने वालों का दल आमोद-प्रमोद के लिए उत्साह बढ़ाने हेतु होता है।

VII दशार्णपुर :-

दशार्ण देश की राजधानी मृत्तिकावती और पिछले समय की राजधानी विदिशा का कहीं-कहीं दशार्णपुर के नाम से उल्लेख हुआ है।

श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याण विजय जी गणि / पृ. 378

VIII दूतिपलाश चैत्य :-

वाणिज्यग्राम के पास इस नाम का उद्यान था, जहाँ भगवान महावीर का समवसरण हुआ करता था। आनंद गाथापति सुदर्शन श्रेष्ठि आदि को महावीर ने इसी उद्यान में प्रतिबोध दिया था।

श्रमण भगवान महावीर / 378-379

IX सरिसव :-

सरिसव प्राकृत भाषा का श्लिष्ट शब्द है। संस्कृत में इसके दो रूप होते

हैं। 1. सर्षप :- सरसों तथा 2. सद्शवया :- हमजोली, मित्र।

X मास :-

मास शब्द प्राकृत भाषा का श्लिष्ट शब्द है। संस्कृत में इसके दो रूप होते हैं- माष और मास। इन्हें ही दूसरे शब्दों में द्रव्य माष और काल मास कहा जाता है। द्रव्य मास में जो सोने-चाँदी तौलने का माशा है, वह अभक्ष्य है। (12 माशे का एक तोला)

XI कुलत्था :-

कुलत्था प्राकृत भाषा का शब्द है। संस्कृत में इसके दो रूप बनते हैं। कुलस्था और कुलत्था। इन्हें ही दूसरे शब्दों में स्त्रीकुलस्था और धान्य कुलत्था कहते हैं। स्त्रीकुलस्था खाद्य पदार्थ नहीं है, इसलिए साधुओं के लिए अभक्ष्य है।

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का
उन्नीसवाँ वर्ष

विषय-वस्तु

क्र.सं. विषय

1. भगवान महावीर का वाणिज्य ग्राम से विहार और काम्पिलयपुर पदार्पण
2. अम्बड़ परिव्राजक (श्रावक)
3. अम्बड़ के सात सौ शिष्य और उनका संथारा, ब्रह्मलोक-कल्प में जन्म
4. अम्बड़ विषयक गौतम पृच्छा
5. अम्बड़ महाविदेह क्षेत्र में दृढ़प्रतिज्ञ के रूप में
6. दृढ़प्रतिज्ञ की मुक्ति
7. वर्षावास वैशाली में

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का उन्नीसवाँ वर्ष
'अनमोल आस्था'

दृढ़धर्मी अम्बड़ शिष्य

वाणिज्य ग्राम की जनता भगवान के इस अनुपम सान्निध्य का लाभ ले रही थी। समय ऐसे भाग रहा था जैसे चक्रवाती पवन...। देखते ही देखते चातुर्मास की सुखद घड़ियाँ परिसमाप्त हो गयी और भगवान ने वाणिज्य ग्राम से विहार कर दिया। वहाँ से भगवान कौशल[I] देश के साकेत[II], सावत्थी आदि नगरों को पावनतम करते हुए काम्पिलयपुर[III] पधार गये और वहाँ के सहस्त्राम वन उद्यान में विराज गये[1]।

इस समय काम्पिलयपुर नगर में अम्बड़ नामक एक ब्राह्मण परिव्राजक (अपने सात सौ शिष्यों का गुरु) था। उसने भगवान महावीर के त्याग-वैराग्यमय जीवन को जब देखा, उनके अनुत्तर ज्ञान[क] सम्पन्न प्रवचन श्रवण किये तो वह अपने शिष्यों के साथ जैन धर्म का उपासक बन गया[2]। परिव्राजक का बाह्य वेष तथा आचार रखते हुए भी वह जैन श्रावकों के पालने योग्य व्रत नियमों का पालन करता था। यद्यपि 'जैन साहित्य का वृहत इतिहास[3]' तथा 'जैनागम साहित्य में भारतीय समाज[4]' ग्रन्थों में अम्बड़ के सात शिष्य बतलाये गये हैं, लेकिन औपपातिक[ख] मूल पाठ में सात सौ शिष्य होने का उल्लेख है।

अम्बड़ परिव्राजक का वर्णन भी ठाणांग सूत्र एवं औपपातिक सूत्र दो स्थानों पर आया है, लेकिन ठाणांग में अम्बड़ जी के आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होने का उल्लेख है[5], जबकि औपपातिक सूत्र में आये अम्बड़ जी महाविदेह में मुक्त होंगे[6]। इसलिए दोनों पृथक-पृथक हैं, ऐसा स्थानांग सूत्र वृति (पत्र 434) में उल्लेख है[7]।

औपपातिक सूत्र में अम्बड़ जी के सात सौ शिष्यों के संलेखना-

(क) अनुत्तर ज्ञान - केवलज्ञान **(ख) औपपातिक** - शास्त्र का नाम

संथारा का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे के अन्त में जब भगवान महावीर सदेह[क] विद्यमान थे, तब ग्रीष्म ऋतु का समय था। ज्येष्ठ का महीने में प्रचण्ड गर्मी की लपटों से युक्त धरती आग उगल रही थी। जहाँ देखो वहाँ ग्रीष्म का जबर्दस्त साम्राज्य था। ऐसे भीषण ग्रीष्म के समय अम्बड़ परिव्राजक के 700 शिष्य गंगा महानदी के दोनों किनारों से काम्पिल्यपुर[ख] नामक नगर से पुरिमताल[ग] नामक नगर की ओर रवाना हुए।

वे परिव्राजक चलते-चलते भयंकर घोर जंगल में प्रविष्ट हो गये, जहाँ न तो कोई गाँव था, न व्यापारियों के काफिले निकलते, न ही गायें और गोपालक का आवागमन था। उस जंगल में मार्ग बड़े विकट थे। वे उस भयानक अटवी में चलते रहे। चलते समय अपने साथ लिया हुआ पानी भी पीते-पीते क्रमशः समाप्त हो गया।

वे परिव्राजक[घ] प्यास से व्याकुल हो गये। उन्हें कोई पानी देने वाला दिखाई नहीं दिया, तब वे परस्पर एक-दूसरे से कहने लगे- देवानुप्रियो! हम ऐसे घोर जंगल में पहुँच गये हैं, जहाँ कोई गाँव नहीं और न ही किसी का आवागमन है। रास्ते बड़े विकट हैं। हम अभी तक तो इस जंगल का कुछ ही भाग पार कर पाये हैं कि हमारा पानी समाप्त हो गया है, अतः हे देवानुप्रियो! इस ग्राम रहित वन में सब दिशाओं में चारों ओर जलदाता की गवेषणा[ङ] करें।

उन्होंने परस्पर इस प्रकार चर्चा की और वे सब ओर जलदाता की खोज करने लगे। खोज करने पर भी उन्हें कोई जलदाता नहीं मिला तो वे एक दूसरे को सम्बोधित करके कहने लगे-

देवानुप्रियो! यहाँ कोई पानी देने वाला नहीं है और गंगा महानदी में पानी होने पर भी बिना दिया पानी लेना हमको कल्पता नहीं है। इसलिए इस आपत्तिकाल में भी हम अदत्त, बिना दिया पानी न ग्रहण करें, न सेवन करें, जिससे हमारा व्रत भग्न हो, अतः अपने लिए श्रेयस्कर है कि त्रिदण्ड- तीन दण्डों या वृक्ष की तीन शाखाओं को एक साथ मिलाकर बनाया गया दण्ड, कमंडलु,

---

(क) सदेह - शरीर-सहित **(ख) काम्पिल्यपुर** - आजकल काम्पिल्य को कंपिला के नाम से पहचाना जाता है। फर्रूखाबाद से पचीस और कायमगंज से छः मील उत्तर-पश्चिम की ओर बूढ़ी गंगा के किनारे अवस्थित है। एक समय काम्पिल्य दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी थी **(ग) पुरिमताल** - एक शहर का नाम, जिसमें षड्डुलुक निह्नव हुआ तथा जिसके बाहर ऋषभदेव प्रभु को केवलज्ञान मिला **(घ) परिव्राजक** - संन्यासी **(ङ) गवेषणा** - खोज

रूद्राक्ष मालाएँ, करोटिकाएँ (मिट्टी के पात्र विशेष), बैठने की पटड़ियाँ, त्रिकाष्ठिकाएँ, अंकुश, देव पूजा हेतु वृक्षों के पत्ते संग्रहित करने में उपयोग लेने के अंकुश, केशरिका-प्रमार्जन के निमित्त सफाई करने, पोंछने आदि के उपयोग में लेने योग्य वस्त्र खण्ड, ताँबे की अंगूठियाँ, हाथों में धारण करने की रूद्राक्ष मालाएँ, छाते, खड़ाऊँ, गेरुए रंग से रँगी धोतियां एकान्त में छोड़कर, गंगा महानदी के बालूका भाग में[क] बालू का बिछौना तैयार करके संलेखनापूर्वक देह और मन को तपोमय स्थिति में लीन करते हुए शरीर एवं कषायों को क्षीण करते हुए आहार-पानी का परित्याग कर कटे हुए वृक्ष जैसी निश्चेष्टावस्था[ख] स्वीकार करके मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए संस्थित[ग] होवें[8]।

इस प्रकार सभी ने तय किया और तय करके त्रिदण्ड आदि अपने उपकरण एकान्त में डाल दिये और गंगा के बालुका भाग में बालू का संस्तारक[घ] तैयार कर उस पर आरूढ़ हुए। आरूढ़ होकर पद्मासन में बैठे। बैठकर दोनों हाथ जोड़कर बोले- अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो, जो सिद्धगति को प्राप्त कर गये। मोक्ष प्राप्त करने वाले श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो। हमारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक अम्बड़ परिव्राजक को नमस्कार हो। पहले हमने अम्बड़ परिव्राजक के पास स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, सब प्रकार का अब्रह्मचर्य, स्थूल परिग्रह का जीवन भर के लिए त्याग किया था। इस समय हम इन सभी को भगवान महावीर की साक्षी से त्याग करते हैं। सब प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, कलह, मिथ्या, दोषारोपण, चुगली, निंदा, असंयम में सुख मानने की भावना, संयम में अरुचि, माया या छलपूर्वक झूठ बोलना तथा मिथ्यात्व का जीवन भर के लिए त्याग करते हैं। नहीं करने योग्य मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का जीवन भर के लिए त्याग करते हैं तथा अशनादि चारों प्रकार के आहार का जीवन भर के लिए त्याग करते हैं।

यह शरीर जो वल्लभ, कान्त, प्यारा, मनोज्ञ, मन में बसा हुआ, अतिशय प्रिय, विशेषमान्य, अस्थिर होते हुए भी अज्ञानवश स्थिर प्रतीत होने वाला, विश्वसनीय, अभिमत, बहुत माना हुआ, अनुमत, गहनों की पेटी के समान प्रीतिकर है, इसे सरदी-गरमी न लग जाये, भूखा-प्यासा न रह जाये,

(क) बालूका भाग में - बालू रेत वाले भाग में **(ख) निष्चेष्टावस्था** - चेष्टा रहित, हिलने-डुलने से रहित अवस्था **(ग) संस्थित** - स्थित **(घ) बालू का संस्तारक** - बालू, रेती का बिछौना

इसे साँप न डस ले, चोर कष्ट न पहुँचाये, डाँस-मच्छर न काटे, वात, पित्त, सन्निपात आदि तत्काल मारी जाने वाली बीमारियों से यह पीड़ित न हो, इसे भूख-प्यासादि परीषह तथा देवादिकृत संकट न हो, जिसके लिए हर समय ऐसा ध्यान रखते हैं, उस शरीर का हम अन्तिम उच्छवास-नि:श्वास पर्यन्त त्याग करते हैं, ममता हटाते हैं[9]।

इस प्रकार उन परिव्राजकों[क] ने कषाय और शरीर का परित्याग किया तथा चारों आहार का त्याग कर संलेखना करते हुए कटे हुए वृक्ष की भाँति शरीर को चेष्ठा शून्य बना लिया और मृत्यु की कामना न करते हुए शान्त भाव से स्थित रहे। इस प्रकार बहुत समय तक अनशन करते हुए वे मृत्यु को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक कल्प[ख] में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ उनका आयुष्य दस सागरोपम का है[10]।

अम्बड़ के विषय में गौतम-पृच्छा

इस प्रकार का प्रसंग अम्बड़ के शिष्यों का बना। इधर भगवान काम्पिल्यपुर में विराज रहे थे। गौतम स्वामी गोचरी पधारे। उन्होंने अम्बड़[11] के बारे में विविध चर्चाएँ सुनी। जिससे उनके मन में कुछ जिज्ञासाएँ प्रादुर्भूत[ग] हुईं। वे भगवान से पूछने लगे- भगवन्! जब मैं गोचरी गया तो बहुत से लोग इस प्रकार बोल रहे थे कि काम्पिल्यपुर नगर में अम्बड़[12] परिव्राजक सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है अर्थात् एक ही समय में वह सौ घरों में आहार करता हुआ, सौ घरों में निवास करता हुआ दिखता है तो भगवन् यह कैसे?

भगवान महावीर कहते हैं :- बहुत से लोग परस्पर एक-दूसरे को यह कहते हैं कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर में सौ घरों में आहार करता है, यावत् सौ घरों में निवास करता है, यह सत्य है। गौतम! मैं भी ऐसा ही कहता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर में एक साथ सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है।

गौतम स्वामी पूछते हैं - भगवन्! आप जो फरमा रहे हैं कि अम्बड़ परिव्राजक एक साथ सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है तो इसमें क्या रहस्य है?

भगवान कहते हैं :- गौतम! अम्बड़ प्रकृति से सौम्यव्यवहारी, परोपकार करने वाला एवं शान्त है। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ स्वाभवत:

(क) परिव्राजकों - संन्यासियों **(ख) ब्रह्मलोक कल्प** - पाँचवां देवलोक **(ग) प्रादुर्भूत** - पैदा

क्षीणकाय हो गये हैं। वह अत्यन्त कोमल स्वभाव युक्त, अहंकार रहित, गुरुजनों की आज्ञा के प्रति समर्पित तथा विनयवान है। उसने बेले-बेले की तपस्या करते हुए अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर, सूर्य के सामने मुँह करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए तप का अनुष्ठान किया। फलत: शुभ परिणामों से, उत्तम मन:संकल्प से, शुभ लेश्या से उसको वैक्रिय लब्धि तथा अवधिज्ञान[IV] उत्पन्न हुआ। अतएव अब वह लोगों को आश्चर्यचकित करने के लिए काम्पिल्यपुर नगर में एक ही समय में सौ घरों से आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है।

गौतम स्वामी :- भगवन्! क्या वह अम्बड़ परिव्राजक आपके पास मुण्डित होकर अणगार बनेगा?

भगवान :- गौतम! वह मेरे समीप दीक्षा नहीं लेगा। अम्बड़ परिव्राजक श्रमणोपासक है, जिसने जीव-अजीव आदि तत्वों को जान लिया है। वह दूसरों की सहायता का अनिच्छुक आत्मनिर्भर है। उसको देव-दानव आदि कोई भी निर्ग्रन्थ प्रवचन[क] से विचलित नहीं कर सकता। उसके अस्थि-मज्जा में धर्म के प्रति अनुराग है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही सारभूत मानता है।

वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या व पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध करता है और श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशनादि 14 प्रकार की वस्तुओं का दान देता हुआ आत्मा को भावित करता है।

अम्बड़ परिव्राजक ने जीवन भर के लिये स्थूल प्राणातिपात[ख], स्थूल असत्य, स्थूल अदत्तादान[ग], स्थूल परिग्रह तथा सभी प्रकार के अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान ले रखा है।

अम्बड़ परिव्राजक को मार्ग गमन के अतिरिक्त गाड़ी की धुरी प्रमाण जल में भी शीघ्रता से उतरना नहीं कल्पता। अम्बड़ परिव्राजक को गाड़ी आदि पर सवार होना नहीं कल्पता। उनको गंगा की मिट्टी के अतिरिक्त अगर, चन्दन या केसर से लिप्त करना नहीं कल्पता इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

अम्बड़ परिव्राजक को आधाकर्मी[घ] तथा औद्देशिक[ङ] छ: काय के जीवों

(क) निर्ग्रन्थ प्रवचन - वीतराग भगवन्तों द्वारा प्ररूपित प्रवचन **(ख) स्थूल प्राणातिपात** - स्थूल हिंसा **(ग) स्थूल अदत्तादान** - मोटी-चोरी **(घ) आधाकर्मी** - साधुओं के निमित्त बनाया हुआ **(ङ) औद्देशिक** - विशेष साधु के उद्देश्य से बनाया हुआ

की हिंसा करके साधु के निमित्त बनाया गया भोजन, मिश्रजात-साधु तथा गृहस्थ दोनों के उद्देश्य से तैयार किया गया भोजन, अध्यवपूर- साधु के लिए अधिक मात्रा में बनाया गया भोजन, पूतिकर्म-गृहस्थ के लिए बनने वाल भोजन में साधु के निमित्त थोड़ा और मिला देना, क्रीतकृत- साधु के लिए खरीद कर लाया गया भोजन, प्रामित्य-साधु के निमित्त उधार लिया हुआ भोजन, अनिसृष्ट- गृहस्वामी या घर के मुखिया से बिना पूछे दिया जाने वाला भोजन, रचित- एक विशेष प्रकार का, उद्दिष्ट- अपने लिए संस्कारित भोजन, कान्तारभक्त- जंगल पार करते हुए घर से अपने पाथेय के रूप में लिया हुआ भोजन, दुर्भिक्षभक्त- दुर्भिक्ष के समय भिक्षुओं तथा अकाल-पीड़ितों के लिए बनाया हुआ भोजन, ग्लानभक्त- बीमार के लिए बनाया हुआ भोजन अथवा स्वयं बीमार होते हुए आरोग्य हेतु दान रूप में दिया जाने वाला भोजन, वार्दलिक भक्त- बादल आदि से घिरे दिन में, दुर्दिन में दरिद्र जनों के लिए तैयार किया गया भोजन, प्राधूर्णक भक्त- अतिथियों के लिए तैयार किया हुआ भोजन अम्बड़ परिव्राजक को खाना-पीना नहीं कल्पता[13]।

अम्बड़ को मूल, कन्द, फल, हरे तृण, बीजमय भोजन खाना-पीना नहीं कल्पता। अम्बड़ परिव्राजक ने चार प्रकार के अनर्थादण्ड- बिना प्रयोजन हिंसा और उस निमित्त अशुभ कार्यों का परित्याग किया है, यथा- अपध्यान चरित[क], प्रमादाचरित[ख], हिंस्रप्रदान[ग] और पाप कर्मोपदेश[घ/14]।

अम्बड़ को मागधमान के (मागधदेश के तौल के) अनुसार आधा आढ़क[ङ] जल लेना कल्पता है। वह भी बहता हुआ होना चाहिए और कीचड़ रहित स्वच्छ होना चाहिए। स्वच्छ होने के साथ-साथ बहुत साफ और निर्मल होना चाहिए। इसके साथ-साथ वस्त्र से छना हो तो कल्प्य है, अनछाना नहीं। उसको भी पापयुक्त जीव समझ कर ही लेता है, अजीव समझकर नहीं। ऐसा जल भी दिया हुआ कल्पता है, नहीं दिया हुआ नहीं। वह भी हाथ, पैर, चरू-काठ की कड़छी-चम्मच धोने के लिए या पीने के

(क) अपध्यान चरित - आर्त-रौद्र ध्यान के वशीभूत होकर इष्ट संयोग आदि की चिन्ता करना, किसी प्राणी को हानि पहुँचाने का विचार करना **(ख) प्रमादाचरित** - प्रमाद पूर्वक आचरण करना **(ग) हिंस्रप्रदान** - हिंसाकारी उपकरण तलवार आदि दूसरों को देना **(घ) पाप कर्मोपदेश** - बिना प्रयोजन जिन कामों में जीव की हिंसा होती है, ऐसे मकानादि बनवाने का उपदेश देना **(ङ) आधा-आढ़क** - दो प्रस्थ (सेर)

लिए ही कल्पता है, नहाने के लिए नहीं।

अम्बड़ को मागधमान के अनुसार इसी प्रकार का एक आढ़क पानी स्नान के लिए कल्पता है, लेकिन हाथ, पैर, चरू, चम्मच धोने अथवा पीने के लिए नहीं।

उस अम्बड़ को अर्हत या निर्ग्रन्थ साधुओं के अतिरिक्त अन्य संघ वाले पुरुष, देव या उनके साधुओं को वन्दन-नमस्कार करना, उनकी पर्युपासना करना नहीं कल्पता।

अम्बड़ की इस चर्या को श्रवण करके गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया- भगवन! अम्बड़ परिव्राजक काल आने पर काल करके देह त्याग कर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान ने फरमाया :- अम्बड़ परिव्राजक[V] विशेष सामान्य शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास द्वारा आत्मा को भावित करते हुए, आत्मोन्मुख रहता हुआ बहुत वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन करेगा। वैसा करके एक मास की संलेखना संथारा करके आलोचना प्रतिक्रमण करके मृत्यु के सामने आने पर वह समाधिपूर्वक देह त्याग करेगा और ब्रह्मलोक में देवरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ उसकी स्थिति दस सागरोपम की होगी[15]।

वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर दृढ़प्रतिज्ञ नामक केवली होगा। इस प्रकार भगवान महावीर ने दृढ़प्रतिज्ञ केवली का वृत्तान्त बतलाया, जिसे श्रवण करके गौतम स्वामी आत्मविभोर हो उठे और कहने लगे- भन्ते! आपने जैसा फरमाया वैसा ही है।

दृढ़ प्रतिज्ञ का वर्णन

गौतम स्वामी - भगवन्! अम्बड़ देव अपना आयु-क्षय, भव-क्षय, स्थिति क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवकर[क] कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान :- गौतम! महाविदेह क्षेत्र में धनाढ्य, प्रभावशाली, स्वाभिमानी, सम्पन्न, भवन, शयन, आसन, वाहन आदि विपुल सामग्री सम्पन्न, सोने-चाँदी आदि प्रचुर धन के स्वामी जो विशिष्ट कुल हैं, जो नीति पूर्वक धन उपार्जन करते हैं, जिनके यहाँ भोजन करने के पश्चात् प्रचुर धन सामग्री

(क) च्यवकर - च्यवन करके, मर करके

बचती है, जिनके घरों में विपुल मात्रा में नौकर, नौकरानियाँ, गायें, भैंसें, बैल, पाड़े, भेड़, बकरियाँ आदि होते हैं, जो इतने रोबीले कुल हैं कि उनका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, ऐसे कुलों में से किसी एक कुल में वह पुरुष रूप में उत्पन्न होगा।

अम्बड़ शिशु के रूप में जब गर्भ में आयेगा, तब उसके माता-पिता की धर्म में आस्था दृढ़ होगी। इस प्रकार भक्ति-रंग में अनुरंजित[क] माँ अपने शिशु को गर्भ में श्रेष्ठ संस्कार देने लगेगी। तब नौ माह साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर बालक का जन्म होगा।

सुकुमार हाथ-पैर वाला वह बालक परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों वाला, उत्तम लक्षण, व्यंजन[ख], तिल, मिस आदि चिह्नों तथा गुणों से युक्त होगा। वह लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई आदि दृष्टियों से परिपूर्ण तथा सर्वांग सुन्दर होगा। वह चन्द्र के समान सौम्य, कान्तिवान, दर्शनीय और सुरूप होगा।

तत्पश्चात् माता-पिता पहले दिन उस बालक का कुल क्रमानुसार पुत्र-जन्मोचित अनुष्ठान करेंगे। दूसरे दिन चन्द्र-सूर्य के दर्शन नामक जन्मोत्सव करेंगे। छठे दिन रात्रि जागरिका करेंगे। ग्यारहवें दिन अशुचि-निवारण करेंगे और बारहवें दिन माता-पिता यह सोचकर नामकरण करेंगे कि इस बालक के गर्भ में आते ही हमारी धार्मिक आस्था दृढ़ हुई थी, इसलिए उस बालक का गुण निष्पन्न नाम 'दृढ़प्रतिज्ञ' रखेंगे।

इस प्रकार वह बालक दृढ़प्रतिज्ञ शनैः शनैः बड़ा होने लगेगा। जब वह बालक आठ वर्ष से कुछ अधिक का होगा तब उसे शुभतिथि, शुभकरण, शुभदिवस, शुभनक्षत्र एवं शुभमुहूर्त में शिक्षण हेतु कलाचार्य के पास ले जायेंगे।

वह वहाँ बहत्तर कलाओं[16] का अभ्यास कर उसमें निष्णात[ग] हो जायेगा तो कलाचार्य उसे माता-पिता को सौंप देंगे।

तब दृढ़प्रतिज्ञ के माता-पिता कलाचार्य को विपुल अशन[घ], पान[ङ], खादिम[च], स्वादिम[छ], वस्त्र, गन्ध, माला तथा अलंकार द्वारा सत्कार-सम्मान करेंगे। सत्कार-सम्मान करके उनको विपुल जीविका योग्य पुरस्कार

(क) अनुरंजित - रंगा हुआ **(ख) व्यंजन** - शरीर के शुभाशुभ चिह्न **(ग) निष्णात** - पारंगत **(घ) अशन** - अनाज **(ङ) पान** - पीने योग्य पेय पदार्थ **(च) खादिम** - मेवा आदि **(छ) स्वादिम** - मुँह साफ करने के पदार्थ

देकर विदा करेंगे।

तब वह दृढ़प्रतिज्ञ बहत्तर कलाओं में मर्मज्ञ नौ अंगों- दो कान, दो नेत्र, दो घ्राण[क], एक जिह्वा, एक त्वचा, एक मन की चेतना-संवेदना के जागरण से युक्त यौवन अवस्था में विद्यमान, अठारह देशी भाषाओं में निपुण, गीतप्रिय, संगीत विद्या, नृत्य कला आदि में प्रवीण, अश्वयुद्ध[ख], गजयुद्ध[ग], रथयुद्ध और बाहुयुद्ध में प्रवीण अत्यन्त निर्भीक, प्रत्येक कार्य में साहसी दृढ़प्रतिज्ञ यों सांगोपांग विकसित संवर्द्धित होकर सर्वथा भोग भोगने में समर्थ हो जायेगा।

उसके माता-पिता बहत्तर कलाओं में मर्मज्ञ अपने पुत्र दृढ़प्रतिज्ञ को सर्वथा भोग भोगने में समर्थ जानकर उत्तम खाद्य पदार्थ, उत्तम पेय पदार्थ, सुन्दर गृह में निवास, उत्तम वस्त्र, उत्तम शय्या, बिछौने आदि सुखप्रद सामग्री के उपभोग करने का आग्रह करेंगे।

लेकिन वह कुमार दृढ़प्रतिज्ञ अन्न, पान, गृह, वस्त्र, शयन आदि भोगों में आसक्त नहीं होगा, लोलुप नहीं होगा, मोहित नहीं होगा, मन नहीं लगायेगा।

जैसे उत्पल[घ], पद्म[ङ], कुमुद[च], नलिन[छ], सुभग[ज], सुगन्ध, पुण्डरीक[झ], महापुण्य, शतपत्र[ञ], सहस्त्रपत्र[ट], शत सहस्त्रपत्र[ठ] आदि विविध प्रकार के कमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं, जल में बढ़ते हैं पर जलकणों से लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ कुमार काममय जगत् में उत्पन्न होगा, भोगमय जगत् में बड़ा होगा, लेकिन वह पाँच इन्द्रियों, भोगों में लिप्त नहीं होगा तथा अपने मित्र, सजातीय, भाई, बहिन, नाना, मामा इत्यादि परिवार में आसक्त नहीं होगा।

वह वीतराग भगवन्तों की आज्ञा में विचरण करने वाले स्थविर भगवंतों के पास विशुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा तथा संसार त्यागकर श्रमण-जीवन[ड] स्वीकार करेगा।

वे दृढ़प्रतिज्ञ अणगार संयम लेकर पाँच समिति और तीन गुप्तियों का नियमत: पालन करेंगे। इस प्रकार साधनामय जीवन जीते हुए दृढ़प्रतिज्ञ

(क) घ्राण - नाक **(ख) अश्वयुद्ध** - घोड़े का युद्ध **(ग) गजयुद्ध** - हाथियों का युद्ध **(घ) उत्पल** - नील-कमल **(ङ) पद्म** - कमल **(च) कुमुद** - श्वेत-कमल **(छ) नलिन** - कमल **(ज) सुभग** - सौभाग्यशाली **(झ) पुण्डरीक** - श्वेत-कमल **(ञ) शतपत्र** - सौ पत्ते **(ट) सहस्र पत्र** - हजार पत्ते **(ठ) शत सहस्त्रपत्र** - एक लाख पत्ते **(ड) श्रमण-जीवन** - साधु-

अणगार को केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवलीपर्याय का पालन करेंगे और अन्त में एक मास की संलेखना तथा एक मास का अनशन[क] स्वीकार करके जिस लक्ष्य के लिए शारीरिक संस्कारों के प्रति अनासक्ति, सांसारिक सम्बन्ध तथा ममत्व का त्याग करके श्रमणजीवन की साधना, स्नान नहीं करना, मंजन नहीं करना, केशलुंचन, ब्रह्मचर्यवास, छत्रधारण नहीं करना, जूते नहीं पहनना, भूमि अथवा लकड़ी के पाटे पर सोना, दूसरों के घर से भिक्षा लाना, भिक्षा मिलने या न मिलने पर उनका तिरस्कार न करना, मर्म का उद्घाटन नहीं करना, निन्दा-गर्हा नहीं करना, कटुवचन, प्रताड़ना, अपमान, व्यथा, इन्द्रियों के लिए कष्टकारी अवस्था सहन करना, बाईस परीषह, देवकृत उपसर्ग आदि स्वीकार किये उसे पूर्णकर अपने अन्तिम उच्छ्वास-नि:श्वास में सिद्ध होगें, मुक्त होंगे, निर्वाण को प्राप्त करेंगे तथा सभी दु:खों का अन्त करेंगे[17]।

वर्षावास-वैशाली में

इस प्रकार काम्पिल्यपुर में धर्म की पावन जाह्नवी[ख] प्रवाहमान थी। कुछ समय तक भगवान वहाँ विराजे, उसके पश्चात् भगवान ने विदेह भूमि की ओर प्रस्थान किया तथा यह चातुर्मास करने हेतु वैशाली पधार गये[18]।

(क) एक मास का अनशन - एक मास का संथारा **(ख) जाह्नवी** - गंगा

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के उन्नीसवें वर्ष के सन्दर्भ

1. (क) श्रमण भगवान महावीर / पं. कल्याण विजय जी / पृष्ठ 165
   (ख) भगवान महावीर एक अनुशीलन / श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. / पृष्ठ 525
2. (क) श्रमण भगवान महावीर / पं. कल्याण विजय जी / पृष्ठ 165
   (ख) भगवान महावीर एक अनुशीलन / श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. / पृष्ठ 525
3. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास / डॉ. जगदीश जैन / भाग 2 / पृष्ठ 25
4. जैनागम साहित्य में भारतीय समाज / डॉ. जगदीश जैन / पृष्ठ 418
5. स्थानाङ्ग सूत्र / स्थान 9 / सूत्र 61
6. औपपातिक सूत्र / सूत्र 102-116
7. यश्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यति इत्यमिधीयते सोऽन्य: इति सम्भाव्यते / स्थानांग वृत्ति / पत्र 434
8. ध्यान विचार / सम्पा. पं. गिरीशकुमार परमानन्द शाह / प्रका. जैन साहित्य विकास मण्डल, मुम्बई / सन् 1986 / पृष्ठ 25
9. तुलना की जिए :- जैन योग ग्रन्थ चतुष्टय / रचनाकार - श्री हरिभद्रसूरि / सम्पा. छगनलाल शास्त्री / प्रका. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर / सन् 1982 / गाथा 364 / पृष्ठ 182
10. औपपातिक सूत्र / सूत्र संख्या 82-88
11. दीघनिकाय के अम्बट्ठसुत्त में अंबट्ठ नाम के एक पंडित ब्राह्मण का वर्णन है।

12. निशीथचूर्णि पीठिका भगवान महावीर अम्बट्ठ को धर्म में स्थिर करने के लिए राजगृह पधारे थे। **निशीथ चूर्णि पीठिका / पृष्ठ 20**
13. अपश्चिम तीर्थंकर / भाग 2 / पृष्ठ 159
14. अपश्चिम तीर्थंकर / भाग 2 / पृष्ठ 220
15. औपपातिक सूत्र / सूत्र संख्या 100
16. अपश्चिम तीर्थंकर भगवान महावीर / भाग 2 / पृष्ठ 142-44
17. औपपातिक सूत्र / सूत्र संख्या 101-16
18. श्रमण भगवान महावीर / पं. कल्याण विजय जी / पृष्ठ 167

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के उन्नीसवें वर्ष के टिप्पण

I	कौशल
II	साकेत
III	काम्पिल्यपुर
IV	अवधिज्ञान
V	अम्बड़

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के उन्नीसवें वर्ष के टिप्पण

I कौशल :-

अयोध्या का अपर नाम कौशल (कोसला/कोसल) था। भगवान महावीर के नौवें गणधर अचलभ्राता की यह जन्मभूमि थी।

भगवान महावीर : एक अनुशीलन / पृ. 48

II साकेत :-

यह कौशल देश का प्रसिद्ध नगर किसी समय इस देश की राजधानी रह चुका है। इसी कारण कहीं-कहीं इसे अयोध्या का पर्याय बताया गया है। इसके समीप उत्तरकुरू नामक उद्यान था, जहाँ पाशामृग यक्ष का मन्दिर था। तत्कालीन राजा का नाम मित्रनन्दी और रानी का श्रीकान्ता था। महावीर यहाँ अनेक बार पधारे थे और अनेक भद्र मनुष्यों को निर्ग्रन्थ श्रमण बनाया था।

फैजाबाद जिला में फैजाबाद से पूर्वोत्तर छः मील पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित वर्तमान अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत नगर था, ऐसा निर्णय हुआ।

श्रमण भगवान महावीर / पृ. 398-399

III काम्पिल्यपुर :-

भारत वर्ष का प्राचीन नगर था। महाभारत आदि पर्व 137/73, उद्योग पर्व 189/13, 192/14, शांति पर्व 139/5 में काम्पिल्य का उल्लेख आया है। आदि पर्व तथा उद्योग पर्व के अनुसार यह उस समय के दक्षिण पाञ्चाल प्रदेश का नगर था। यह राजा द्रुपद की राजधानी थी। द्रौपदी का स्वयंवर यहीं हुआ था।

ज्ञाताधर्म के 16वें अध्ययन में भी पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद के यहाँ

काम्पिल्यपुर में द्रौपदी के जन्म आदि का वर्णन है।

भगवान महावीर के समय यह अत्यन्त समृद्ध नगर था। श्रमणोपासक कुण्डकौलिक यहीं का निवासी था।

इस समय यह बदायूं और फर्रूखाबाद के बीच बूढ़ी गंगा के किनारे कम्पिल नामक ग्राम के रूप में विद्यमान है।

IV अवधिज्ञान :-

इन्द्रिय तथा मन की सहायता बिना, मर्यादा को लिये हुए रूपी द्रव्य का ज्ञान करना अवधिज्ञान कहलाता है।

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग 1/पृ. 262

V अम्बड़ :-

अम्बड़ का वर्णन श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह में इस प्रकार मिलता है- एक बार भगवान महावीर चम्पा नगरी में पधारे। नगरी के बाहर देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। देशना के अन्त में अम्बड़ नाम का विद्याधारी श्रावक खड़ा हुआ। विद्या के बल से वह कई प्रकार के रूप पलट सकता था। वह राजगृही का रहने वाला था। उसने कहा- प्रभो! आपके उपदेश से मेरा जन्म सफल हो गया। अब मैं राजगृही जा रहा हूँ।

भगवान ने फरमाय् राजगृही में सुलसा नाम वाली श्राविका है। वह धर्म में परम दृढ़ है।

अम्बड़ ने मन में सोचा, सुलसा श्राविका बड़ी पुण्यशालिनी है, जिसके लिए भगवान ने उसे धर्म में दृढ़ बताया। मैं उसके सम्यक्त्व की परीक्षा करूँगा। यह सोचकर उसने परिव्राजक (संन्यासी) का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा- आयुष्मति! मुझे भोजन दो, इससे तुम्हें धर्म होगा। सुलसा ने उत्तर दिया- जिन्हें देने से धर्म होता है, उन्हें मैं जानती हूँ।

वहाँ से लौटकर अम्बड़ ने आकाश में पद्मासन रचा और उस पर बैठकर लोगों को आश्चर्य में डालने लगा। लोग उसे भोजन के लिए निमंत्रित करने लगे, किंतु उसने किसी का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। लोगों ने पूछा- भगवान! ऐसा कौन भाग्यशाली है, जिसके घर का भोजन ग्रहण करके आप पारणा करेंगे।

अम्बड़ ने कहा- मैं सुलसा के घर का आहार-पानी ग्रहण करूँगा। लोग सुलसा को बधाई देने आए। उन्होंने कहा- सुलसे! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे घर भूखा संन्यासी भोजन करेगा।

सुलसा ने उत्तर दिया- मैं इसे ढोंग मानती हूँ।

लोगों ने यह बात अम्बड़ से कही। अम्बड़ ने समझ लिया- सुलसा परम सम्यग्दृष्टि है, जिससे महान् अतिशय देखने पर भी वह श्रद्धा में डाँवाडोल नहीं हुई।

इसके बाद अम्बड़ श्रावक ने जैनमुनि का रूप बनाया। 'णिसीहि-णिसीहि' के साथ नमुक्कार मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसने सुलसा के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने मुनि जानकर उसका उचित सत्कार किया। अम्बड़ श्रावक ने अपना असली रूप बता कर सुलसा की बहुत प्रशंसा की। भगवान महावीर द्वारा की हुई प्रशंसा की बात उससे कही। इसके बाद वह अपने घर चला गया।

सम्यक्त्व में दृढ़ होने के कारण सुलसा ने तीर्थंकर गोत्र बाँधा। आगामी चौबीसी में उसका जीव पन्द्रहवें तीर्थंकर के रूप में उत्पन्न होगा और उसी भव में मोक्ष जायेगा।

(ठा. 9 उ. 3 सूत्र 691 टीका) (हरि. आव. नि.गा. 1284)

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का
बीसवाँ वर्ष

विषय-वस्तु

क्र.सं. विषय

1. भगवान महावीर का वैशाली से विदेह भूमि की ओर विहार
2. भगवान का वाणिज्य ग्राम पर्दापण
3. गांगेय की जिज्ञासाएँ, समाधान भगवान द्वारा
4. भगवान महावीर के सान्निध्य में गांगेय द्वारा संयम अंगीकार
5. भगवान का वर्षावास वैशाली में

अनुत्तर ज्ञान-चर्या का बीसवाँ वर्ष
'गांगेय-समर्पण'

वैशाली से विदेह भूमि

वैशाली में सर्वत्र हर्ष का पारावर हिलोरें ले रहा है। चहुँओर वीर वाणी की अनुगूँज[क] से वातावरण में असीम आनन्द अठखेलियाँ कर रहा है। हृदय के द्वीप में प्राणिमात्र का वात्सल्य प्रकाशित करने वाली दिव्य देशना से जनता में निर्वैर[ख] भावना का प्रस्फुटिकरण[ग] हो रहा है। भव्यजन विविध प्रकार से आत्मावलोकन के पथ पर गतिमान होते हुए अपनी आन्तरिक शक्तियों को जागृत कर रहे थे।

प्रभु-वाणी को श्रवण करने हेतु जत्थे-जत्थे लोग निरन्तर लाभ उठा रहे थे। अहा! यह कैसा स्वर्णिम समय, जिसमें स्वयं परमात्मा के श्रीमुख से अमृतोपम वचनों को श्रवण करने का सौभाग्य मिल रहा था। भगवान के दिव्य दर्शन कर नयन स्थिर होकर अपलक[घ] हो गये। करुणा का अजस्र-स्रोत[ङ] बहाने वाली मन्दाकिनी[च] में डुबकी लगाकर भव्यात्माएँ स्वयं को तरोताजा महसूस कर रही थीं। एक-एक प्रवचन श्रवण करके कोई श्रमणोपासक योग्य बारह व्रत धारण कर रहा था तो कोई भौतिक ऐश्वर्य का परित्याग कर सर्वविरति अणगार[1] बन रहा था। स्वयं का स्वयं से मिलन करने का यह भव्य अवसर प्राणियों के लिये वरदान रूप बनकर आया।

श्रावण की मेघ-घटाएँ अम्बर[छ] से उतर कर धरती की ओर पदाधान[ज] कर रही थी तो आसमान मेघ-घटाओं से संवलित[झ] होकर मरीचिमाली[ञ] को आवृत्त[ट] कर रहा था। ठण्डी-ठण्डी बयार[ठ] वृक्ष के पल्लवों को दुलरा रही थी। इस

(क) अनुगूँज - गुंजन **(ख) निर्वैर** - वैर-रहित **(ग) प्रस्फुटिकरण** - प्रकटीकरण **(घ) अपलक** - पलक झपकाये बिना **(ङ) अजस्र-स्रोत** - समाप्त नहीं होने वाला स्रोत **(च) मन्दाकिनी** - गंगा **(छ) अम्बर** - आकाश **(ज) पदाधान** - गमन **(झ) संवलित** - युक्त **(ञ) मरीचिमाली** - सूर्य **(ट) आवृत्त** - ढकना **(ठ) बयार** - हवा

सुहावने मौसम में तप करने की उत्कृष्ट इच्छा भव्यजनों के मन में उत्ताल तरंगें पैदा कर रही थी। उपवास, बेला, तेला आदि विविध तप करते हुए श्रावकगण अपने मन और इन्द्रियों को तपाकर राग-द्वेष युक्त विकारों को जला रहे थे। वीतराग वाणी से अपने आत्मधन को सजाते हुए बाहर से भीतर की यात्रा कर रहे थे। जीवन की क्षणभंगुरता को जानकर आलस्य से विरत होकर स्वीकृत प्रत्याख्यानों में पुरुषार्थ कर रहे थे। वैर-परम्परा का समूल नाश कर निर्वैर की धरती पर निर्मलभावों का उत्स[क] प्रवाहित कर रहे थे। समय अति त्वरित-गति[ख] से गतिमान था। दिन पर दिन व्यतीत होते हुए अन्तरमन के भीतरी कोनों को प्रकाशमान बना रहे थे।

सर्वत्र एक ही चर्चा कि श्रमण भगवान महावीर का यह सुखद सान्निध्य मिला है, लाभ उठाना हो उतना उठा लो, क्योंकि वक्त किसी का इंतजार नहीं करता। वक्त बेशकीमती है। इसमें दो ऐसे महत्त्वपूर्ण गुण होते हैं, जो अन्यत्र परिलक्षित[ग] नहीं होते। एक तो वक्त किसी का इंतजार नहीं करता और दूसरा वह कभी लौटाया नहीं जा सकता। वक्त और अध्यापक उसमें इतना ही अंतर है कि वक्त पहले परीक्षा लेता है, फिर सिखाता है, जबकि अध्यापक पहले सिखाता है, बाद में परीक्षा लेता है। वक्त बड़ा नाजुक होता है। उसे अपना बना लेना असामान्य है।

वैशाली नगरवासियों का स्वर्णिम वक्त गुजरता ही चला जा रहा था। सभी उस वक्त की नजाकत[घ] का फायदा उठा कर कदम दर कदम आगे बढ़ते चले जा रहे थे। चातुर्मास अपनी परिसमाप्ति की ओर चलने लगा और सभी का मन विरह वेदना से आपूरित[ङ] हो गया। विरह के कांटे मन में गड़कर अथाह वेदना को पैदा कर रहे थे। मन उन्मुक्त बनकर प्रभु की शरण में ही रहने को छटपटा रहा था, लेकिन गृह-बन्धन[च] मजबूरी की सलाखों में उसे डालकर कैद करना चाहता था। मन मधुप[छ] तो प्रभु-भक्ति रूपी कमलिनी के पत्तों में सदा के लिए बन्द होकर सर्वतोभावेन समर्पित होना चाहता था। अहा! यह कैसा बन्धन... बन्धन... जिसे बन्धन कहें या मुक्ति? यह परमात्मा के प्रति प्रेम... इस प्रेम की नदी कभी मरुस्थल बन सकती है? ना... ना... यह प्रेम-सरिता[ज] तो सर्वस्व

(क) उत्स - झरना **(ख) त्वरित-गति** - शीघ्र-गति **(ग) परिलक्षित** - दिखना **(घ) नजाकत** - सौम्यता **(ङ) आपूरित** - युक्त **(च) गृह-बन्धन** - गृहस्थ का बन्धन **(छ) मधुप** - भँवरा **(ज) प्रेम-सरिता** - प्रेम की नदी

खोकर भी भगवान को प्राप्त करना चाहती है। परन्तु... परमात्मा... उनको कैसे रोका जा सकता था? चातुर्मास समाप्ति का अवसर नहीं चाहते हुए भी आखिरकार आ ही गया। भगवान महावीर वैशाली से विहार करने लगे। अश्रुसिंचित[क] कपालों[ख] से युक्त धरती पर निगाहें टिकाये लोग भगवान की विहार यात्रा में अन्यमनस्क[ग] हो जा रहे थे।

आखिर कुछ दूर चलकर लोगों ने विराम लिया। अपने कदमों को थामे भगवान को निहारे जा रहे थे। प्रभु कुछ दूर पधारे, दृष्टिपथ से ओझल हुए और लोग उदासीन होकर अपने-अपने घरों की ओर लौट गये। वैशाली नीरव[घ], सुनसान सी लगने लगी।

भगवान ने काशी[I] कौशल[II] के प्रदेशों की ओर अपने चरणों को बढ़ाया और समस्त शीतकाल में उधर ही विचरण किया। अनेक भव्यात्माओं को सत्पथ बतलाते हुए हेमन्त[ङ], शिशिर[च] और वसन्त[छ] ऋतु का काल व्यतीत हो गया। ग्रीष्म ऋतु ने अपने पाँव पसार दिये। सूर्य अपनी प्रखर रश्मियों से धरती को उतप्त करने लगा, तब भगवान ने पुन: अपने कदमों को विदेह भूमि की ओर गतिमान किया। शनै: शनै: विहार करते हुए भगवान वाणिज्यग्राम पधारे। वहाँ के दुतिपलाश उद्यान में तप-संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

गांगेय की जिज्ञासाएँ : समाधान भगवान द्वारा

भगवान के आगमन के समाचार को श्रवण करके वाणिज्यग्राम के कण-कण में उमंगें प्रस्फुटित होने लगी। समूह के समूह लोग[3] प्रभु की अमृत देशना श्रवण करने हेतु एकत्रित होकर जाने लगे। भगवान ने दिव्य देशना प्रारम्भ की, जिसे श्रवण करके भव्य जन मंत्र-मुग्ध होकर अभिभूत हो गये। सत्यं... निशंकं... सच्चं... सच्चं की ध्वनियों से भव्यजनों ने वातावरण को अभिगूँजित कर दिया। दिव्य देशना श्रवण करके सभी अपने-अपने स्थानों की ओर लौटने लगे। इसी समय भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य गांगेय अणगार जो कि उस समय वाणिज्यग्राम में थे, उन्होंने जैसे ही श्रवण किया कि भगवान महावीर वाणिज्यग्राम में पधारे हैं तो उनके मन में इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ

(क) अश्रुसिंचित - आँसुओं से सिंचित **(ख) कपोलों** - गालों **(ग) अन्यमनस्क** - अनमना मन **(घ) नीरव** - शांत **(ङ) हेमन्त** - मिगसर-पौष की ऋतु **(च) शिशिर** - माघ-फाल्गुन की ऋतु **(छ) वसन्त** - चैत्र-वैशाख की ऋतु

कि मैं भी श्रमण भगवान महावीर के समीप जाकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करूँ। ऐसा विचार करके वे श्रमण भगवान महावीर के पास आये। जैसे ही भगवान महावीर को देखा, उन्होंने वन्दन-नमस्कार किया और भगवान के न अति निकट, न अति दूर रहकर उन्होंने भगवान से पृच्छा की-

भगवन्! नरकावास में नारक, सान्तर-अंतर सहित उत्पन्न होते हैं या निरंतर?

भगवान महावीर :- गांगेय! नारक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरंतर भी।

गांगेय :- भगवन्! असुर कुमारादि भवनपति देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरंतर?

भगवान महावीर :- असुर कुमारादि भवनपति देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरंतर भी।

गांगेय :- भगवन्! पृथ्वीकायिकादि जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?

भगवान :- गांगेय! पृथ्वीकायिकादि जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते। वे अपने-अपने स्थानों में निरंतर उत्पन्न होते रहते हैं।

गांगेय :- भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर* उत्पन्न होते हैं या निरंतर?

भगवान :- गांगेय! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरंतर भी।

गांगेय :- भगवन्! नैरयिक सान्तर च्यवता** है या निरंतर च्यवता है?

भगवान :- गांगेय! नैरयिक सान्तर भी च्यवता है और निरंतर भी च्यवता है।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यंच मनुष्य तथा देव भी कभी सान्तर और कभी निरन्तर च्यवते[क] हैं, परन्तु पृथ्वीकायिकादि निरंतर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय[III] निरंतर ही च्यवते हैं।

गांगेय :- भगवन्! प्रवेशनक[ख] कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भगवान :- गांगेय! प्रवेशनक चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा- 1. नैरयिक प्रवेशनक 2. तिर्यंचयोनि प्रवेशनक 3. मनुष्य प्रवेशनक 4. देव प्रवेशनक। उसके पश्चात् भगवान ने विभिन्न नैरयिकों के प्रवेश के सम्बन्ध में विस्तृत

---

* **सान्तर और निरंतर - जीवों की उत्पत्ति आदि में समय आदि काल का अंतर व्यवधान हो तो वह सान्तर और उत्पत्ति आदि में समयादि काल का अंतर व्यवधान न हो तो वह निरंतर कहलाता है।**

** **जीवों के जन्म या उत्पत्ति को उपपात और मरण या च्यवन को उद्वर्तन कहते हैं। वैमानिक और ज्योतिष्क देवों का मरण च्यवन कहलाता है, जबकि नारकादि का मरण उद्वर्तन।**

(क) च्यवते - मृत्यु को प्राप्त होते **(ख) प्रवेशनक** - प्रवेश करने सम्बंधी

जानकारी फरमायी।

गांगेय :- भगवन्! तिर्यंचयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भगवान :- गांगेय! पाँच प्रकार के कहे गये हैं। यथा- एकेन्द्रीय योनिक प्रवेशनक* यावत् पंचेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक। इनका विस्तृत स्वरूप भगवान ने फरमाया।

गांगेय :- भगवन्! मनुष्य प्रवेशनक कितने प्रकार के हैं?

भगवान :- गांगेय! मनुष्य प्रवेशनक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा- सम्मूर्च्छिम मनुष्य[क] प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य[ख] प्रवेशनक। इसका विस्तृत वर्णन भगवान ने अपने श्री मुख से फरमाया[4]।

गांगेय :- भगवन्! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है?

भगवान :- गांगेय! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है। 1. भवनवासी देव 2. वाणव्यन्तर 3. ज्योतिष्क 4. वैमानिक[IV]।

इनका विस्तृत वर्णन भगवान ने फरमाया।

गांगेय :- भगवन्! सत् नारक, सत् तिर्यंच, सत मनुष्य और सत् देव उत्पन्न होते हैं या असत् नारकादि उत्पन्न होते हैं?

भगवान :- गांगेय! सभी सत् उत्पन्न होते हैं। कोई भी असत् उत्पन्न नहीं होता। गांगेय! इसी प्रकार सभी जीव सत् मरते हैं और सत् ही च्यवन करते हैं।

गांगेय :- भगवन्! सत् की उत्पति कैसी और मरे हुए की सत्ता किस प्रकार?

भगवान महावीर :- गांगेय! पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्वनाथ[V] ने लोक को शाश्वत कहा है। उसमें सर्वथा असत् की उत्पति नहीं होती और सत्[VI] का सर्वथा नाश भी नहीं होता।

गांगेय :- भगवन्! यह वस्तुतत्व आप स्वयं आत्म-प्रत्यक्ष से जानते हैं या किसी हेतु प्रयुक्त अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से!

भगवान :- गांगेय! यह सभी मैं स्वयं जानता हूँ। किसी भी अनुमान अथवा आगम आधार पर मैं नहीं कहता हूँ। आत्म-प्रत्यक्ष[VII] से जानी हुई बात ही कहता हूँ।

गांगेय :- भगवन्! अनुमान और आगम[ग] के आधार के बिना इस विषय में कैसे जाना जा सकता है?

*** प्रवेशनक :- एक गति से मरकर दूसरी गति में उत्पन्न होना प्रवेशनक है। गतियाँ चार होने से प्रवेशनक भी चार प्रकार का ही है।**

(क) सम्मूर्च्छिम मनुष्य - कफादि में अपने आप पैदा होने वाले मनुष्य **(ख) गर्भज मनुष्य** - गर्भ से पैदा होने वाले मनुष्य **(ग) आगम** - शास्त्र

भगवान :- गांगेय! केवली पूर्व से जानता है, पश्चिम से जानता है, उत्तर और दक्षिण से जानता है[5]। केवली परिमित[क] जानता है और अपरिमित[ख] भी जानता है। केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष होने से उसमें सर्व वस्तुतत्व प्रतिभासित[ग] होते हैं।

गांगेय :- भगवन्! नरक में नारक, तिर्यंच, मनुष्य गति में मनुष्य और देवगति में स्वयं[VIII] देव उत्पन्न होते हैं या किसी की प्रेरणा से? वह अपनी गतियों से स्वयं निकलते हैं या उन्हें कोई निकालता है?

भगवान :- आर्य गांगेय! सभी जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार शुभाशुभ गतियों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकलते हैं। उसमें दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं है[6]।

इस प्रकार गांगेय अणगार ने भगवान के श्रीमुख से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान किया। समाधान श्रवण करके उनके मन में परिपूर्ण निष्ठा हो गयी कि भगवान सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। तब उन्होंने भगवान महावीर को त्रिदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और भगवान के सान्निध्य में पंच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार कर लिया।

वर्षावास वैशाली में :-

गांगेय अणगार अपनी संयम चर्या में लीन है*। अब प्रभु ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अपने श्रीचरणों से मेदिनी[घ] के कण-कण को पावन करने लगे। वर्षावास का समय समीप आ गया और भगवान वैशाली पधार गये एवं चातुर्मास यहीं करने का विनिश्चय किया। चातुर्मास का प्रारम्भ हुआ, वैशाली[8] की धार्मिक जनता जिनवाणी का पावन लाभ लेने लगी। भगवान की भवजलशोषिणी[ङ] वाणी को श्रवण करके कई भव्य आत्माओं ने अहंकार के ऐरावत हाथी का त्याग कर विनय का वटवृक्ष भीतर पल्लवित कर लिया। अपने अस्तित्व का विलीनीकरण कर समर्पणा के महासागर में डुबकियाँ लगाने लगे। दूसरों को झुकाना छोड़कर स्वयं ही झुकने हेतु तत्पर बनने लगे। संघर्षों की अग्नि को बुझाकर आपसी तालमेल रूपी सरिता में स्नान करने लगे। अशाश्वत

* **टिप्पण :- गांगेय अणगार ने कालास्यवेषी पुत्र अणगार के समान संयम का निर्वाह किया यावत् मुक्ति का वरण किया।**

(क) परिमित - सीमित **(ख) अपरिमित** - असीमित **(ग) प्रतिभासित** - दिखलाई देते हैं
(घ) मेदिनी - पृथ्वी **(ङ) भवजल शोषिणी** - संसार-सागर को सुखाने वाली

जीवन, क्षणभंगुर जीवन, विनश्वर तन, नश्वर पदार्थ, अस्थायी रिश्ते की मार्मिक व्याख्या को आत्मसात् कर अहं के वहम का परित्याग कर सोऽहं[क] की साधना में लीन हो गये।

अपने भीतर रही हुई अद्वितीय शक्तियों के अनावरण[ख] में तत्पर बन गुण चयन करने हेतु समुत्सुक[ग] बनने लगे। जैसे सूर्य के आने से पहले ही अंधकार पलायन[घ] कर देता है, वैसे ही उन भव्यों को गुणचयन में तत्पर देखकर दोष इधर-उधर भागने लगे। वे यश: कीर्ति की कामना से कोसों दूर अपने आप को प्राप्त करने के लिए आतुर[ङ] बन गये। मन में एक ही ललक- अरे मन! अब तू महावीर बन जा! अब तू वीर बन जा...

वर्षावास के इस अद्भुत सुहावने माहौल में सभी अपने-अपने जीवन को शील और सद्गुणों की सुगन्ध से भर रहे थे।

(क) सोऽहं - मैं आत्मा हूँ **(ख) अनावरण** - प्रकट करने में **(ग) समुत्सुक** - उत्साहित
(घ) पलायन - भागना **(ङ) आतुर** - तत्पर, लालायित

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के बीसवें वर्ष के सन्दर्भ

1. श्रीमद् धर्मबिन्दुप्रकरणम् / मुनि चन्द्राचार्यकृत वृत्ति / प्रका. आगमोदय समिति / सन् 1924 / पत्राकार / पत्र 62
2. भगवती सूत्र / शतक 9/32
3. धर्मोपदेशे नराणां प्राधान्यात्।
   पञ्चाशक ग्रंथ / रचयिता - हरिभद्रसूरि / टीका - अभयदेव सूरि / प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर / सन् 1912 / पृष्ठ 111 (पत्राकार)
4. (क) भगवती सूत्र / शतक 9/32 (विस्तृत वर्णन यहीं पर उपलब्ध है)
   (ख) भगवती सूत्र के थोकड़े / शतक 3-4
5. भगवती सूत्र / शतक 5/4/4-2
6. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 455
7. भगवती सूत्र / अभयदेव वृत्ति / पत्रांक 455
8. श्रमण भगवान महावीर / पं. श्री कल्याण विजय जी / पृष्ठ 170

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के बीसवें वर्ष के टिप्पण

I	काशी
II	कौशल
III	एकेन्द्रिय
IV	वैमानिक
V	पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्वनाथ
VI	सत्
VII	आत्म प्रत्यक्ष
VIII	स्वयं

अनुत्तर ज्ञान-चर्या के बीसवें वर्ष के टिप्पण

I काशी :-

काशी जनपद पूर्व में मगध, पश्चिम में वत्स (बंस), उत्तर में कोसल और दक्षिण में 'सोन' नदी तक विस्तृत था।

काशी जनपद की सीमाएँ सदा एक समान नहीं रही हैं। काशी और कोसल में परस्पर संघर्ष भी चलता रहा है। कभी काशी निवासियों ने कोसल पर अधिकार किया तो कभी कोसल निवासियों ने काशी पर। उत्तराध्ययन की टीका में लिखा है कि हरिकेशबल वाराणसी के तिन्दुक उद्यान में ठहरे हुए थे। वहाँ पर कोसल राज की पुत्री भद्रा यक्षपूजन के लिए उपस्थित हुई। प्रस्तुत प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि उस समय काशी पर कोसल का आधिपत्य था।

आगमों में गिनाए गये साढ़े पचीस आर्य देशों एवं सोलह महाजनपदों में काशी का भी उल्लेख प्राप्त होता है। भारत की दस प्रमुख राजधानियों में वाराणसी का भी नाम मिलता है। यूआन चुआङ्ग ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना है। उसने वाराणसी देश का विस्तार चार हजार 'ली' और नगर का विस्तार लम्बाई में अठारह 'ली' और चौड़ाई में छह 'ली' बताया है।

जातक के अनुसार काशी राज्य का विस्तार 300 योजन था[5]। वाराणसी काशी जनपद की राजधानी थी। यह नगर 'वरना' (वरुणा) और असी नाम की दो नदियों के बीच स्थित था[6], अत: इसका नाम वाराणसी पड़ा। यह नैरूक्त नाम है[7]। आधुनिक वाराणसी गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर गंगा और वरुणा के संगमस्थल हैं।

काशी, कोसल आदि 18 गणराज्यों ने वैशाली के अधिपति चेटक की ओर से राजा कोणिक से युद्ध किया था[8]। काशी और कोसल के अठारह

गणराजा भगवान महावीर के परिनिर्वाण के समय वहाँ पर उपस्थित थे[9]। काशी नरेश शंख ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी।

काशी भगवान पार्श्व की जन्मस्थली है।

1. उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र 174
2. व्याख्या प्रज्ञप्ति 15 पृ. 387
   तुलना करें अंगुत्तर निकाय 113, पृ. 197
3. (क) स्थानांग सूत्र, 10
   (ख) निशीथ सूत्र, 9/19
   (ग) दीघनिकाय, महापरिनिव्वाण सूत्र
4. युआन चुआङ्गस ट्रेवेल्स इन इंडिया भाग 2, पृ. 46 से 48
5. धजविहेट्ठ जातक (सं. 391) जातक भाग 3, पृ. 454
6. दी एन्सिएंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ. 499
7. विविध तीर्थकल्प, पृ. 72
8. निरयावलिका सूत्र 1
9. कल्पसूत्र
10. स्थानांग, 8/621
11. (क) कल्पसूत्र, 149, पृ. 213
    (ख) समवायांग, 250/24

II कोसल :-

फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, बाराबंकी के जिले तथा आसपास के कुछ भाग, अवध, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़ और जौनपुर जिलों का कुछ भाग उत्तरकोसल अथवा कोसल जनपद कहलाता था। महावीर के समय में इसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

श्रमण भगवान महावीर / पृ. 362

III एकेन्द्रिय :-

ये जीव प्रतिसमय उत्पन्न होते और प्रतिसमय मरते हैं। इसलिए उनकी उत्पत्ति और उद्वर्तन सान्तर नहीं निरंतर होता है। एकेन्द्रिय के सिवाय शेष सभी जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु में अंतर सम्भव है। इसलिए वे सान्तर एवं निरन्तर, दोनों प्रकार से उत्पन्न होते और मरते हैं।

1. भगवती सूत्र (अर्थ-विवेचन) भा. 4, (पं. घेवरचन्द जी) पृ.1617

IV वैमानिक :-

वैमानिक देव सबसे कम होते हैं और उनमें जाने वाले (प्रवेशनक) जीव भी सबसे थोड़े होते हैं, इसलिए अल्पबहुत्व में पारस्परिक तुलना की दृष्टि से कहा गया है कि वैमानिक देव-प्रवेशनक सबसे अल्प हैं।

1. भगवती. अ. वृत्ति पत्र 453

V पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्वनाथ :-

केवलज्ञान के बाद भगवान गर्जनपुर[1], मथुरा[2], वीतमय[3], श्रावस्ती[4], गजपुर[5] (हस्तिनापुर), मिथिला[6], काम्पिल्य[7], पोतनपुर चम्पा[8], काकन्दी, शुक्तिमती[9], कोसलपुर[10], रत्नपुर[11] आदि नगरों में विहार करते हुए वाराणसी[12] गये। वाराणसी से आप आमलकप्पा[13] और सम्मेत शिखर[14] गये। यहीं पर आपका निर्माण (निर्वाण) हुआ।

भगवान पार्श्वनाथ के आठ गणधर[15] थे 1. शुभ[16] (शुभदत्त) 2. आर्यघोष 3. वसिष्ठ 4. ब्रह्मचारी 5. सोम 6. श्रीधर 7. वीरभद्र 8. यशस्वी। उनके 1600 साधु थे। उनमें प्रमुख आर्यदत्त थे। 38000 साध्वियाँ थी। उनमें प्रमुख पुष्पचूला थी। 164000 व्रतधारी श्रावक थे। उनमें प्रमुख सुव्रत थे। 327000 श्राविकाएँ थी। उनमें प्रमुख सुनन्दा थी। इनके अतिरिक्त उनके और भी परिवार थे।

भगवान पार्श्वनाथ ने चतुर्याम[17] धर्म का उपदेश दिया।

1. प्राणातिपात विरमण - किसी भी जीव की हिंसा न करना
2. मृषावाद विरमण - किसी प्रकार का झूठ न बोलना
3. अदत्तादान विरमण - किसी प्रकार की चोरी न करना
4. परिग्रह विरमण - आरम्भ-समारम्भ की वस्तुओं का त्याग[18]

साधनावस्था के 83 दिन निकाल कर शेष 70 वर्षों तक भगवान ने धर्मोपदेश किया।

30 वर्ष गृहस्थावस्था, 83 दिन छद्मावस्था, 83 दिन कम 70 वर्ष केवली अवस्था। इस प्रकार कुल 100 वर्षों का आयुष्य बिताकर श्रावण सुदी 8 दिन (777 ई. पू.) में सम्मेत शिखर नामक पर्वत पर एक मास का अनशन करके 33 पुरुषों के साथ भगवान पार्श्वनाथ ने समाधिपूर्वक निर्वाण-पद प्राप्त किया।

जैन शास्त्रों में भगवान महावीर के निर्वाण से 250 वर्ष पूर्व भगवान

पार्श्वनाथ का निर्वाण बतलाया गया है।

1. पासनाह-चरियं, देवभद्र-रचित पत्र 22
2. पासनाह-चरियं, देवभद्र-रचित पत्र 480, वर्तमान मथुरा
3. जैन-ग्रन्थों में इसे सिन्धु-सौवीर की राजधानी बताया गया है
4. जैन-ग्रन्थों में इसे कुणाल की राजधानी बताया गया है।
5. जैन-ग्रन्थों में इसे कुरु की राजधानी बताया गया है। यह स्थान मेरठ जिले में है।
6. जैन-ग्रन्थों में इसे विदेह की राजधानी बताया गया है।
7. यह पाञ्चाल की राजधानी थी। फर्रूखाबाद जिले में कायमगंज से पाँच कोस की दूरी पर स्थित है।
7. यह अंग देश की राजधानी थी। भागलपुर जिले में आज भी इसी नाम से विख्यात है।
8. यह चेदि की राजधानी थी।
9. यह कौशल की राजधानी थी। वर्तमान अयोध्या।
11. यह रत्नपुर (नौराई) अयोध्या से 14 मील की दूरी पर है।
12. पासनाह-चरिअं, पत्र 481
13. बौद्ध-ग्रन्थों में इसे बुलिय जाति की राजधानी बताया गया है। यह 10 योजन विस्तृत था। इसका संबंध वेठद्वीप के राजवंश से बताया गया है। श्री बील का कथन है कि वेठद्वीप का द्रोण ब्राह्मण शाहाबाद जिले में मसार से वैशाली जाने वाले मार्ग में रहता था। अतः अल्लकप्प वेठद्वीप से बहुत दूर न रहा होगा। (संयुक्त-निकाय, बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ 7) यह अल्लकप्प ही जैन-साहित्य में वर्णित आमलकप्पा है। यहाँ नगर से बाहर अबसाल चैत्य में महावीर का समवसरण हुआ था। यहाँ महावीर ने सूर्याभ के पूर्वभव का निरूपण किया था।
14. पार्श्वनाथ पर्वत
15. (अ) तस्याष्टौ 'गणाः' समानवाचन क्रियाः (साधु) समुदायाः अष्टौ 'गणधराः' तन्नायकाः सूरयः। इदं च प्रमाणं स्थानाङ्गे (सूत्र 617) पर्युषणाकल्पे (सूत्र 156) च श्रूयते। दृश्यते च किल आवश्यके अन्यथा, तत्र चोक्तम्- ''दसनवगं, गणाण माणं जिणिंदाणं'' (निर्यु. गा. 268) ति, कोऽर्थ? पार्श्वस्य दश गणा गणधराश्च, तदिह द्वयोरल्पायुषत्वादिकारणेना विवक्षाऽनुमातव्येति

पवित्र कल्पसूत्र, पृथ्वीचन्द्र सूरि प्रणीत कल्पसूत्र-टिप्पनकम् पृ. 17

(आ) श्रीपार्श्वस्य अष्टौ, आवश्यके (आवश्यक निर्युक्ति गाथा 290) तु दश गणाः, दश गणधराश्चोक्ताः।
इह स्थानाङ्गे च द्वौ अल्पायुष्कत्वादि कारणान्नौक्तौ इति टिप्पनके

व्याख्यातं :- कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पत्र 38
आवश्यक निर्युक्ति में गणधरों की संख्या 10 बतलायी गयी है, पर उनमें दो अल्पायु होने के कारण यहाँ नहीं गिनाये गये हैं। ऐसा ही उल्लेख आवश्यक निर्युक्ति की मलयगिरि की टीका (पत्र 209) एक विंशति स्थान प्रकरएम् (पत्र 30), प्रवचनसारोद्धार पूर्वभाग (पत्र 86) में भी आया है।

16. स्थानाङ्ग 8 में पार्श्वनाथ के गणधरों के नाम हैं। वहाँ प्रथम गणधर का नाम शुभ है। पासनाह-चरियं में उनका नाम शुभदत्त है। (पत्र 202)
समवाय में आया 'दिन्न' शब्द भी वस्तुत: यही द्योतित करता है। कल्पसूत्र में यही नाम शुभ तथा आर्यदत्त दोनों रूपों में आया है। स्पष्ट है कि शुभ, शुभदत्त, दत्त तथा आर्यदत्त वस्तुत: एक ही व्यक्ति के नाम हैं।
17. चाउज्जामोय जो धम्मो, जो इमो पंच सिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेणं, पासेण य महामुणी ।। 23 ।।
उत्तराध्ययन सूत्र त्रयोविंशतिमहययनम् 'नेमिचन्द्राचार्यकृत टीका' पत्र 297-1
18. 'वय' त्ति व्रतानि-महाव्रतानि तानि च द्वाविंशति जिन साधूनां चत्वारि, यतस्ते एवं जानन्ति यत् अपरिगृहीताया: स्त्रिय: मोगाऽसंभवात् स्त्री अपि परिग्रह एवेति, परिग्रहे प्रत्याख्याते स्त्री प्रत्याख्यातव प्रथमचरण जिनसाधूनां तु तथा ज्ञानाऽभावात् पञ्च व्रतानि।
कल्प सूत्र, सुबोधिका-टीका पत्र, 5

VI सत् :-

जो जीव नरक में उत्पन्न होते हैं, पहले से उत्पन्न हुए सत् नैरयिकों में समुत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिकों में नहीं, क्योंकि लोक शाश्वत् होने से नारक आदि जीवों का सदैव सद्भाव रहता है।

सत् अर्थात्-द्रव्यार्थतया विद्यमान नैरयिक आदि ही नैरयिक आदि में उत्पन्न होते हैं, सर्वथा असत् (अविद्यमान) द्रव्य तो कोई भी उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वह तो गधे के सींग के समान असत् है। इन जीवों में सत्त्व (विद्यमानत्व या असितत्व) जीवद्रव्य की अपेक्षा से अथवा नारक-पर्याय की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि भावी नारक पर्याय की अपेक्षा से द्रव्यत: नारक ही नारकों में उत्पन्न होते हैं। अथवा यहाँ से मरकर नरक में जाते समय विग्रह गति में नारकायु का उदय हो जाने से वे जीव भाव नारक होकर ही नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं।

1. भगवती. अ. वृति, पत्र 455
2. भगवती. अ. वृति, पत्र 455

VII आत्म प्रत्यक्ष :-

भगवान की अतिशय ज्ञान सम्पदा की सम्भावना करते हुए गांगेय ने जो प्रश्न किया है, उसके उत्तर में भगवान ने कहा- मैं अनुमान आदि के द्वारा नहीं, किंतु (बल्कि) स्वयं आत्मा द्वारा जानता हूँ तथा दूसरे पुरुषों के वचनों को सुनकर अथवा आगमत: सुनकर नहीं जानता, अपितु बिना सुने ही आगमनिरपेक्ष होकर स्वयं, यह ऐसा है, इस प्रकार जानता हूँ, क्योंकि केवलज्ञानी का स्वभाव पारमार्थिक प्रत्यक्ष रूप केवलज्ञान द्वारा समस्त वस्तु समूह को प्रत्यक्ष (साक्षात्) करने का होता है। अत: भगवान द्वारा केवलज्ञान के स्वरूप और सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है।

1. भगवती. अ. वृति, पत्र 455

VIII स्वयं :-

यहाँ पर नैरयिक से लेकर वैमानिक तक 24 दण्डकों के जीवों की स्वयं उत्पत्ति बताई गई है, अस्वयं यानी पर-प्रेरित नहीं। इस सिद्धान्त कथन का रहस्य यह है, कतिपय मतावलम्बी मानते हैं कि 'यह जीव अज्ञ है, अपने लिए सुख-दु:ख उत्पन्न करने में असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से यह स्वर्ग अथवा नरक में जाता है।' जैन सिद्धान्त से विपरीत इस मत का यहाँ खण्डन हो जाता है, क्योंकि जीव कर्म करने में जैसे स्वतंत्र है, उसी प्रकार कर्मों का फल भोगने के लिए वह स्वयं स्वर्ग या नरक में जाता है। किंतु ईश्वर के भेजने से नहीं जाता।

1. अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मन: सुख-दुखयो:।
ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्ग वा श्वभ्रमेव वा।।

विषयानुक्रमणिका

प्रथम परिशिष्ट

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	विभंग ज्ञान की सप्तभंगी	200
	प्रथम परिशिष्ट (अ)	
2.	वाद्य	203
3.	नाट्य-नृत्य और अभिनय कला	204
	प्रथम परिशिष्ट (क)	
4.	सेनाएं एवं सेनापति	205
	प्रथम परिशिष्ट (ख)	
5.	संगीत-कला	209
6.	गीत-गेय	213

द्वितीय परिशिष्ट

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	अम्बड़ के पूर्वभव की कथाएँ	216

प्रथम परिशिष्ट

विभंग ज्ञान की सप्तभंगी

1. एक दिग्लोकाभिगम :-

एक दिशा में सम्पूर्ण लोक को जानने वाला। जब तथारूप श्रमण माहन को विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से पूर्व दिशा को या पश्चिम दिशा को या उत्तर दिशा को या ऊर्ध्व दिशा को सौधर्मकल्प तक इन पाँच दिशाओं में से किसी एक दिशा को देखता है। उस समय उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है- मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं इस एक दिशा में ही लोक को देख रहा हूँ। कितने ही श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि लोक पाँचों दिशाओं में है। ऐसा जो कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह प्रथम विभंग ज्ञान है।

2. पंचदिग्लोकाभिगम :-

पाँचों दिशाओं में ही सर्वलोक को जानने वाले श्रमण माहन को विभंग ज्ञान उत्पन्न होने पर वह पूर्व दिशा, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर और ऊर्ध्व दिशा को सौधर्मकल्प तक देखता है। उस समय उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मुझे सातिशय ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं पाँचों दिशाओं में ही लोक को देख रहा हूँ। कितने श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि लोक एक ही दिशा में है, जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह दूसरा विभंग-ज्ञान है।

3. जीव को कर्मावृत्त नहीं, किंतु क्रियावरण मानने वाला :-

जब तथारूप श्रमण माहन को विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से जीवों की हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, अदत्त ग्रहण करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह करते हुए और रात्रि भोजन करते हुए देखता है, किंतु उन कार्यों के द्वारा किये जाते हुए कर्मबन्ध को नहीं देखता, तब

उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है- मुझे सातिशय ज्ञान, दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव क्रिया से ही आवृत्त है, कर्म से नहीं, जो श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव क्रिया से आवृत्त नहीं है, वे मिथ्या कहते हैं। यह तीसरा विभंग ज्ञान है।

4. मुदग्ग जीव :-

जीव के शरीर को मुदग्ग-पुद्गल निर्मित ही मानने वाला। ऐसे श्रमण-माहन को जब चौथा विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से देवों को बाह्य और आभ्यान्तर पुद्गलों को ग्रहण कर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्गलों का स्पर्श कर, इनमें हलचल पैदा कर, उनका विस्फोट कर, भिन्न-भिन्न काल और विभिन्न देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देखकर उनके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है, मुझे सातिशय ज्ञान, दर्शन प्राप्त हुआ है। कितने श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव शरीर पुद्गलों से बना हुआ नहीं है, जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह चौथा विभंग ज्ञान है।

5. अमुदग्ग जीव :-

जीव के शरीर को पुद्गल निर्मित नहीं मानने वाला। श्रमण-माहन को पाँचवां विभंग ज्ञान उत्पन्न होने पर वह देखता है, देवों को बाह्य और आभ्यान्तर पुद्गलों को ग्रहण किये बिना उत्तर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्गलों का स्पर्शकर उनमें हलचल उत्पन्न कर उनको स्फोट कर भिन्न-भिन्न काल और देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देखकर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है। मुझे सातिशय ज्ञान, दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव पुद्गलों से बना है जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह पाँचवां विभंग ज्ञान है।

6. रूपी जीव :-

जीव को रूपी ही मानने वाला। श्रमण माहन को छठा विभंग ज्ञान उत्पन्न होने पर वह उस ज्ञान से देवों को बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण किये बिना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्शकर उनमें हलचल पैदाकर, उनका स्फोट कर भिन्न-भिन्न काल और देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देखकर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है

कि मुझे सातिशय ज्ञान, दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव रूपी ही है। कितने श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव अरूपी है, जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या हैं। यह छठा विभंग ज्ञान है।

7. यह सर्व जीव :-

इस सर्वदृश्यमान जगत को जीव ही मानने वाला। श्रमण माहन को सातवाँ विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है तो वह इसी ज्ञान से सूक्ष्म (मंद) वायु के स्पर्श से पुद्गल काय को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पन्दित होते हुए, दूसरे पदार्थों का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए और नाना प्रकार के पर्यायों में परिणत होते हुए देखता है। तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है- मुझे सातिशय ज्ञान, दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि ये सभी जीव ही जीव है। कितने श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव भी है और अजीव भी है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। उस विभंग ज्ञानी को पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक इन चार जीवनिकायों का सम्यक् ज्ञान नहीं होता। वह इन चार जीव निकायों पर मिथ्या दण्ड का प्रयोग करता है। यह सातवाँ विभंग ज्ञान है।

टीकाकार ने सातों प्रकार के विभंग ज्ञानों की विभंगता या मिथ्यापन का खुलासा करते हुए लिखा है- विभंगता शेष दिशाओं में लोक निषेध करने के कारण है। दूसरे प्रकार में विभंगता एक दिशा में लोक का निषेध करने से है, तीसरे प्रकार में विभंगता कर्मों के अस्तित्व को अस्वीकार करने से है। चौथे प्रकार में विभंगता जीव को पुद्गल जनित मानने से है। पाँचवें प्रकार में विभंगता देवों की विक्रिया को देखकर उनके शरीर के पुद्गल जनित होने पर भी उसे पुद्गल निर्मित नहीं मानने से है। छठे प्रकार में विभंगता जीव को रूप ही मानने से है तथा सातवें प्रकार में विभंगता पृथ्वी आदि चार निकायों के जीवों को नहीं मानने से बताई गई है।[1]

1. (क) स्थानांग
   (ख) जैनागमों का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

प्रथम परिशिष्ट (अ)

वाद्य

अनेक प्रकार के वाद्यों का उल्लेख जैन सूत्रों से उपलब्ध होता है।

1. **तत** - वीणा आदि
2. **वितत** - ढोल आदि
3. **धन** - कांस्य ताल आदि
4. **शुषिर** - बांसुरी आदि।[1]

राज प्रश्नीय सूत्र में भी निम्नलिखित वाद्यों का उल्लेख है-

शंख, शृंग, शंखिका, खरमुही, पेथा, पिरिपिरिया, पणव - छोटा पटह पटह, भंभा - ढक्का, होरंभ - महाढक्का, भेरी, झल्लरी, दुंदुभि, मुरज - संकटमुखी, मृदंग, नंदीमृदंग, आलिंग, कुस्तुब, गोमुखी, मृदं, वीणा, विपंची - त्रितंत्री वीणा, वल्लकी, सामान्य-वीणा, महत्ती - शततंत्रिका वीणा, कच्छपी, चित्रवीणा, बद्धीसा, सुघोषा, नंदीघोषा, भ्रामरी, षड्भ्रामरी, परवादनी - सप्ततंगी वीणा, तूणा, तुंब वीणा, आमोद, झंझा, नकुल, मुकुंद, हुडक्की, विचिक्की, करटा, डिंडिम, किणित, कंडब, दर्दरिका - गोहिया, दर्दरक, कलशी, मडुक, तल, ताल, कांस्यताल, रिंगिसिया, लत्तिया, मगरिया, संसुमारिया, वंश, वेणु, वाली, परिल्ली और बद्धगा।[2]

1. स्थानांग 4/4/632
2. (क) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, 321-322
   (ख) जैन आगमों का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

नाट्य-नृत्य और अभिनय कला

1. अंचित नाट्य - ठहर-ठहर कर या रुक-रुक कर नाचना।

2. रिभित - संगीत के साथ नाचना।

3. आरभट - संकेतों से भावाभिव्यक्ति करते हुए नाचना।

4. भषोल - झुककर या लेटकर नाचना।[1]

नाट्य विधि में अभिनय का होना जरूरी होता है, यह नितान्त आवश्यक है। इसलिए जैन-सूत्रों में चार अभिनयों का उल्लेख मिलता है :-

1. द्राष्टान्तिक - किसी घटना विशेष का अभिनय करना।

2. प्राति श्रुत - रामायण, महाभारत आदि का अभिनय करना।

3. सामान्यतोविनिपातिक - राजा, मंत्री आदि का अभिनय करना।

4. लोक मध्यावसित - मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अभिनय करना।[2]

इनके अलावा कई बार अभिनय शून्य नाटक भी दिखलाये जाते थे, जैसे- उत्पात- आकाश में उछलना, निपात - नीचे गिरना, संकुचित, प्रसारित, भ्रान्त, संभ्रान्त आदि।

राज प्रश्नीय सूत्र में बत्तीस प्रकार की नाट्य विधि का उल्लेख है।

1. स्थानांग 4/4/633-637
2. (क) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, 323
   (ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका, 5/418
   (ग) जैनागमों का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

प्रथम परिशिष्ट (क)

सेनाएं एवं सेनापति

1. असुरेन्द्र असुरकुमार राज चमर की सात सेनाएं और इनके सात सेनाधिपति कहे गये हैं -

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	द्रुम
2. अश्व सेना	अश्वराज सुदामा
3. हस्ति सेना	हस्तिराज कुन्थु
4. महिष सेना	लोहिताक्ष
5. रथ सेना	किन्नर
6. नर्तक सेना	रिष्ट
7. गन्धर्व सेना	गीतरति[1]

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की सेनाएं और सेनापति :-

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	महाद्रुम
2. अश्व सेना	अश्वराज महासुदामा
3. हस्ति सेना	हस्तिराज मालंकार
4. महिष सेना	महा लोहिताक्ष
5. रथ सेना	किम्पुरुष
6. नर्तक सेना	महारिष्ट
7. गायक सेना	गीतयश[2]

नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज चरण की सेनाएं और सेनाधिपति :-

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	भद्रसेन
2. अश्व सेना	अश्वराज यशोधर
3. हस्ति सेना	हस्तिराज सुदर्शन
4. महिष सेना	नीलकण्ठ
5. रथ सेना	आनन्द
6. नर्तक सेना	नन्दन
7. गन्धर्व सेना	तेतली

इसी प्रकार दक्षिण दिशा के भवनवासी देवों के इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष की सेनाएं और सेनापति कहे गये हैं।[3]

नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज भूतानन्द की सेनाएं और सेनापति :-

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	दक्ष
2. अश्व सेना	अश्वराज सुग्रीव
3. हस्ति सेना	हस्तिराज सुविक्रम
4. महिष सेना	श्वेत कण्ठ
5. रथ सेना	नन्दोत्तर
6. नर्तक सेना	रति
7. गन्धर्व सेना	मानस

जिस प्रकार भूतानन्द की सेनाएं एवं सेनाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार भवनवासी देवों के इन्द्र, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्नि मानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमित वाहन, प्रभंजन और महाघोष की सेनाएं और सेनापति कहे गये हैं।[4]

देवेन्द्र देवराज शक्र की, देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, ब्रह्म, शक्र, आनत और आरण इन सभी दक्षिणेन्द्रों की सेनाएं और सेनापति :-

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	हरिणगमैषी
2. अश्व सेना	अश्वराज
3. हस्ति सेना	हस्तिराज एरावण
4. महिष सेना	दामर्द्धि
5. रथ सेना	माठर
6. नर्तक सेना	श्वेत
7. गन्धर्व सेना	तुम्बरु[5]

देवेन्द्र देवराज ईशान एवं देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र, लान्तक, सहसार, प्राणत और अच्युत की सेनाएं और सेनापति :-

सेना	सेनाधिपति
1. पदाति सेना	अश्वराज महावायु
2. अश्व सेना	हस्तिराज महावायु
3. हस्ति सेना	हस्तिराज पुष्पदन्त
4. महिष सेना	महादामर्द्धि
5. रथ सेना	महामाठर
6. नर्तक सेना	महाश्वेत
7. गन्धर्व सेना	रत[6]

सेना के भेद :-

1. जेत्री न पराजेत्री - कोई सेना, शत्रु सेना को जीतती है लेकिन पराजित नहीं होती।

2. पराजेत्री न जेत्री - कोई सेना शत्रु सेना से पराजित होती

है, लेकिन जीतती नहीं।

3. जेत्री भी, पराजेत्री भी - कोई सेना शत्रु को जीतती भी है, पराजित भी होती है।

4. न जेत्री, न पराजेत्री - कोई सेना न जीतती है और न पराजित होती है।

सेना के अन्य भेद :-

1. जित्वा, पुन: जेत्री - कोई सेना एक बार शत्रु सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर फिर भी जीतती है।

2. जित्वा, पुन: पराजेत्री - कोई सेना एक बार शत्रु सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर उससे पराजित होती है।

3. पराजित्य, पुन: जेत्री - कोई सेना एक बार शत्रु सेना से पराजित होकर दुबारा युद्ध होने पर उससे जीतती है।

4. पराजित्य, पुन: परजेत्री - कोई सेना एक बार पराजित होकर पुन: पराजित होती है।[7]

1. स्थानांग 7/113
2. स्थानांग 7/114
3. स्थानांग 7/115
4. स्थानांग 7/116
5. स्थानांग 7/116
6. स्थानांग 7/120-22
7. (क) स्थानांग 4/2/280-281
   (ख) जैनागमों का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

प्रथम परिशिष्ट (ख)

संगीत कला

संगीत, गीत, स्वर

संगीत, गीत, स्वर आदि का स्थानांग में जो उल्लेख मिलता है, वह इस प्रकार है :-

स्वर -

(1) षड्ज (2) ऋषभ (3) गान्धार
(4) मध्यम (5) पंचम (6) धैवत
(7) निषाद।

(1) षड्ज : नसिका, कण्ठ, उदस्, तालु, जिह्वा और दन्त। इन छह स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर '**सा**'।

(2) ऋषभ : नाभि से उठकर कण्ठ और शिर से समाहत होकर ऋषभ (बैल) के समान गर्जना करने वाला स्वर '**रे**'।

(3) गान्धार : नाभि से समुत्थित एवं कण्ठ शीर्ष से समाहत तथा नाना प्रकार की गन्धों को धारण करने वाला स्वर '**ग**'।

(4) मध्यम : नाभि से उठकर वक्ष और हृदय से समाहत तथा नाना प्रकार की ग्रन्धों को धारण करने वाला स्वर - '**म**'।

(5) पंचम : नाभि, वक्ष, हृदय, कण्ठ और शिर इन पाँच स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर '**प**'।

(6) धैवत : पूर्वोक्त सभी स्वरों का अनुसंधान करने वाला स्वर '**ध**'।

(7) निषाद : सभी स्वरों को समाहित करने वाला स्वर '**नि**'।[1]

स्वर-स्थान :-

1. **षड्ज का स्थान** : जिह्वा का अग्रभाग।
2. **ऋषभ का स्थान** : उर: स्थल।
3. **गान्धार का स्थान** : कण्ठ।
4. **मध्यम का स्थान** : जिह्वा का मध्यम भाग।
5. **पंचक का स्थान** : नासा।
6. **धैवत का स्थान** : दन्त, ओष्ठ संयोग।
7. **निषाद का स्थान** : शिर।[2]

जीव-नि:सृत स्वर :-

1. मयूर षड्ज स्वर में बोलता है।
2. कुक्कुट ऋषभ स्वर में।
3. हँस- गान्धार।
4. गवेलक-भेड़ मध्यम स्वर।
5. कोयल- वसंत ऋतु में पंचम-स्वर में।
6. क्रौंच और सारस- धैवत स्वर में।
7. हाथी- निषाद स्वर में।[3]

अजीव नि:सृत स्वर :-

1. मृदंग से षड्ज-स्वर निकलता है।
2. गोमुखी से ऋषभ स्वर।
3. शंख से गान्धार।
4. झल्लरी से मध्यम।
5. चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका पंचम स्वर।
6. ढोल से धैवत स्वर।
7. महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है।[4]

स्वर-लक्षण :-

1. षड्ज स्वर वाला मनुष्य आजीविका प्राप्त करता है, उसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। उसके गायें मित्र और पुत्र होते हैं। वह स्त्रियों को प्रिय होता है।
2. ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य, सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गन्ध, आभूषण, स्त्री, शयन और आसन को प्राप्त करता है।
3. गान्धार स्वर वाला मनुष्य गाने में कुशल, वादित्र-वृत्ति वाला, कलानिपुण, कवि, प्राज्ञ और अनेक शास्त्रों का पारगामी होता है।
4. मध्यम स्वर वाला पुरुष सुख से खाता, पीता, जीता और दान देता है।
5. पंचम स्वर वाला पुरुष भूमिपाल, शूरवीर, संग्राहक और अनेक गणों का नायक होता है।
6. धैवत स्वर वाला पुरुष कलहप्रिय, पक्षियों को मारने वाला, हिरण, सुअर और मच्छी को मारने वाला होता है।
7. निषाद स्वर वाला पुरुष चाण्डाल, वधिक, मुक्केबाज, गौ घातक, चोर और अनेक प्रकार के पाप करने वाला होता है।[5]

गीत-गुण :-

1. **पूर्ण-गुण** : स्वर के आरोह-अवरोह आदि से परिपूर्ण गाना।
2. **रक्त-गुण** : गाये जाने वाले राग से परिष्कृत गाना।
3. **अलंकृत-गुण** : विभिन्न स्वरों से सुशोभित गाना।
4. **व्यक्त-गुण** : स्वष्ट स्वर से गाना।
5. **अविधुष्ट-गुण** : नियत या नियमित स्वर से गाना।
6. **मधुर-गुण** : मधुर स्वर से गाना।
7. **सम-गुण** : ताल, वीणा आदि का अनुसरण करते हुए गाना।
8. **सुकुमार-गुण** : ललित, कोमल लय से गाना।

9. **उरोविशुद्ध** : जो स्वर उर: स्थल में विशाल होता है।
10. **कण्ठ-विशुद्ध** : जो स्वर कण्ठ में नहीं फटकता।
11. **शिरो-विशुद्ध** : जो स्वर शिर से उत्पन्न होकर भी नासिका से मिश्रित नहीं होता।
12. **मृदु** : जो राग कोमल-स्वर से गाया जाता है।
13. **रिभित** : घोलना, बहुत आलाप के कारण खेल सा करता हुआ स्वर।
14. **पद बद्ध** : गेय पदों से निबद्ध रचना।
15. **समताल-पदोत्क्षेप** : जिसमें ताल, झांझ आदि का शब्द और नर्तक का पाद-निक्षेप ये सम हो, अर्थात् एक-दूसरे से मिलते हों।
16. **सप्त स्वर सीभर** : जिसमें सातों स्वर तंत्री आदि के सम हो।[6]

गीत-दोष :-

1. **भीत दोष** : डरते हुए गाना।
2. **द्रुत दोष** : शीघ्रता से गाना।
3. **ह्रस्व दोष** : शब्दों को लघु बनाकर गाना।
4. **उत्ताल दोष** : ताल के अनुसार न गाना।
5. **काक स्वर दोष** : काक के समान कटु-स्वर से गाना।
6. **अनुनास दोष** : नाक के स्वर से गाना।[7]

1. स्थानांग सूत्र 7/39
2. स्थानांग सूत्र 7/41
3. स्थानांग सूत्र 7/41
4. स्थानांग सूत्र 7/42
5. स्थानांग सूत्र 7/43
6. स्थानांग सूत्र 7/44
7. स्थानांग सूत्र 7/48

गीत-गेय

गेय :-

1. **निर्दोष** : बत्तीस दोष-रहित होना।
2. **सारवन्त** : सारभूत तत्त्व से युक्त होना।
3. **हेतु-युक्त** : अर्थ साधक हेतु से संयुक्त होना।
4. **अलंकृत** : काव्य-गत अलंकारों से युक्त होना।
5. **उपनीत** : उपसंहार से युक्त होना।
6. **सोपचार** : कोमल, अविरुद्ध, अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना अथवा व्यंग्य या हँसी से संयुक्त होना।
7. **मित्त** : अल्प पद या अल्प अक्षर वाला होना।
8. **मधुर** : शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की अपेक्षा प्रिय होना।[1]

गेय-प्रकार :-

1. **उक्रिवत्त** - उत्क्षिप्त
2. **पत्रय** - पादात्त
3. **मंदय** - मंदक
4. **रोविंदय अथवा रोइयावसाण** - रोचितावसान।[2]

वृत्त-छन्द :-

1. **सम** : जिसमें चरण और अक्षर सम हो अर्थात् चार चरण हो और उनमें गुरु, लघु अक्षर भी समान हो अथवा जिसके चारों चरण सरीखें हो।

2. अर्धसम : जिसके चरण और अक्षरों में से कोई एक सम हो अथवा विषम चरण होने पर भी उनमें गुरु, लघु अक्षर समान हो अथवा जिसके प्रथम और तृतीय चरण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हो।

3. सर्व विषम : जिसमें चरण और अक्षर विषम हो अथवा जिसके चारों चरण विषम हो।[3]

मूर्च्छनाएं :-

षड्ज ग्राम की आरोह-अवरोह या उतार-चढ़ाव की मूर्च्छनाएं -

1. मंगी 2. कौरवीया 3. हरित्
4. रजनी 5. सारकान्ता 6. सारसी
7. शुद्ध षड्जा

मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं :-

1. उत्तरमन्द्रा 2. रजनी 3. उत्तरा
4. उत्तरायत 5. अश्वकान्ता 6. सौवीरा
7. अभिरुद्ध-गता

गान्धार-ग्राम की मूर्च्छनाएं :-

1. नन्दी 2. क्षुद्रिका 3. पूरका
4. शुद्ध गान्धार 5. उत्तर गान्धार 6. सुष्ठुतर आयमा
7. उत्तरायता कोटिया।[4]

सप्त-स्वर सीभर की व्याख्या :-

1. तंत्री सम : तंत्री स्वरों के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।

2. ताल सम : ताल वादन के साथ-साथ गाया जाने

वाला गीत।

3. पाद सम : स्वर के अनुकूल निर्मित गेय पद के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

4. लय सम : वीणा आदि को आहत करने पर जो लय उत्पन्न होती है, उसके अनुसार गाया जाने वाला गीत।

5. ग्रह सम : वीणा आदि के द्वारा जो स्वर पकड़े जाते हैं, उसी के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

6. निःश्वसितोच्छवसित सम : सांस लेने व छोड़ने के क्रमानुसार गाया जाने वाला गीत

7. संचार सम : सितार आदि के साथ गाया जाने वाला गीत।[5]

1. स्थानांग सूत्र 7/48
2. (क) स्थानांग सूत्र 4/4/64
   (ख) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज 322
3. स्थानांग सूत्र 7/48-9
4. स्थानांग सूत्र 7/45-47
5. (क) स्थानांग सूत्र 7/48-13
   (ख) जैन आगमों का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विवेचन

द्वितीय परिशिष्ट

अम्बड़ पुत्र कुरुबक और श्रीवासनरेश विक्रमसिंह

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले श्रीवास नामक नगर में विक्रमसिंह नाम का राजा राज्य करता था। श्रीवास नगर के स्वामी नरपाल विक्रमसिंह प्रजा वत्सल, धीर, वीर, योद्धा और न्याय परायण शासक थे। राजा विक्रमसिंह को स्वयं भी अपने वैभव, साहस और शौर्य पर गर्व था, लेकिन ऊंट जब पहाड़ के निकट से गुजरता है, तभी उसे अपनी ऊँचाई का पता लगता है।

एक बार राजा विक्रमसिंह सभासदों के मध्य राज दरबार में बैठा था। राज दरबार में कोई भी व्यक्ति बेरोक-टोक आ सकता था और अपने मन की बात बिना झिझक कह भी सकता था। एक व्यक्ति राज दरबार में उपस्थित हुआ। देखने से पता लगता था कि वह व्यक्ति बहुत निर्धन है और कुछ मांगने की आशा से ही राज दरबार में आया है। दरबारोचित शिष्टाचार के साथ उस व्यक्ति ने राजा को अभिवादन किया। सभी लोग जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। राजा भी उसके आने का प्रयोजन और उसका परिचय जानने के लिए उत्सुक हुआ, तभी उस व्यक्ति ने कहा -

'पृथ्वीनाथ! मेरा नाम कुरुबक है और मैं राजा अम्बड़ का पुत्र हूँ। स्वर्गीय वीर अम्बड़ की बत्तीस रानियों में से चन्द्रावती नाम की रानी मेरी माता थी।'. अम्बड़ का नाम सुनते ही सब दरबारी चकित रह गए। वीर अम्बड़ के यश-वैभव, पौरुष, साहस और औदार्य का डंका चारों और बजता था। उनका राज्य बहुत विशाल था- यह सभी जानते थे। ऐसे महिमाशाली राजा वीर अम्बड़ का पुत्र ऐसे दरिद्र वेश में यहाँ क्यों आया, इसका सभी को आश्चर्य था। कुरुबक ने राजा विक्रमसिंह को अपने आने का कारण बताते हुए कहा-

राजन्! धनगिरी पर्वत पर जहाँ गोरखयोगिनी ध्यान करती थी, वहाँ उनकी ध्यान-कुण्डलिका के निकट एक विशाल धन भण्डार है। धन-भण्डार का

नाम सुनते ही राजा के कान खड़े हो गए। उसने कुरुबक से पूछा- 'उक्त भण्डार (निधान) के बारे में तुम्हें कैसे जानकारी हुई? उस निधान के बारे में मुझे क्यों बताना चाहते हो?'

कुरुबक ने राजा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा- सबकुछ बताने के लिए ही तो मैं यहाँ आया हूँ। मेरे पिता स्वनाम धन्य वीर अम्बड़ से आप अपरिचित न होंगे। उन्हें 'विद्यासिद्ध' नाम से कौन नहीं जानता? आज वे इस धरा पर नहीं हैं, किंतु उनका बल-पराक्रम और शौर्य आज भी अमर है। हर स्थान पर उनकी यशोगाथा गूँज रही है। उनका पूर्व वृत्त कैसा था, इससे आपमें से कोई भी संभवत: परिचित नहीं है। जैसे राई से पर्वत बन जाना एक अद्भुत बात है, ऐसे ही उनके वैभवपूर्ण जीवन की तुलना में उनका पूर्व वृत्त भी एक महान आश्चर्य है। वे क्या थे, क्या से क्या हो गए और कैसे हो गए- ये सब बातें बड़ी ही अद्भुत, रोचक और साहस की गाथाएं हैं। आप सुनना चाहें तो मैं कहूँ। राजा ने जिज्ञासा प्रकट की तो कुरुबक कहने लगा-

मेरे पिताजी जन्म से ही निर्धन थे। धन प्राप्त करने के लिए उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हो पाये। बीच में ही राजा ने पूछ लिया- 'तो सभी प्रयत्नों के विफल होने पर वे एक महान राजा और ऐश्वर्य सम्पन्न कैसे बन गए?' यही तो चमत्कार है और यही साहस का सुफल है। कुरुबक ने आगे कहा- मेरे पिताजी ने धनोपार्जन के लिए तंत्र, मंत्र, औषध, अनुष्ठान, यात्रा, परिश्रम- सबकुछ किया; कोई भी उपाय और प्रयास नहीं छोड़ा, फिर भी लक्ष्मी उनके हाथ न लगी। धन प्राप्त करने की धुन में घूमते-घूमते एक बार वे धनगिरी नामक पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने एक दिव्य योगिनी को देखा- वह गोरखयोगिनी थी। उसके दिव्य प्रभाव से चमत्कृत होकर योगिनी को प्रणाम किया और उसके समीप ही बैठ गए।

पूर्व-भव में कितने ही पुण्यों का संचय किया हो, पर जब पूर्वभव के पाप उदय में आते हैं तो सब प्रयास निष्फल हो जाते हैं और पापोदय की बेला समाप्त होने के अनन्तर पुण्योदय होता है तो प्रयास एक बहाना भर होता है। हाँ तो, मेरे पिता अम्बड़ को अपने पास बैठे देख गोरखयोगिनी के मन में सहज ही वात्सल्यपूर्ण ममता जाग्रत हुई। उसने उनसे पूछा- 'वत्स! तुम्हें क्या कष्ट है? बहुत उदास क्यों हो? अपने मन की बात मुझसे कहो। मैं तुम्हारा दु:ख दूर करूँगी।' राजन्! गोरखयोगिनी की बात सुनकर मेरे पिता अम्बड़ ने कहा-

'मातेश्वरी! आप ऐसे वरदान दें, जिससे मेरी मनोकामना पूर्ण हो जाए।' अपनी कामना तो मुझे बताओ। आखिर तुम चाहते क्या हो? पिताजी ने कहा- 'माँ! मुझे लक्ष्मी चाहिए।' गोरखयोगिनी ने कहा- 'साहस, पराक्रम और सूझबूझ के बिना लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। अगर तुझमें इतना साहस हो कि मेरे आदेशों का पालन कर सके तो तू इस भूतल पर सबसे बड़ा ऐश्वर्यवान बन सकता है। बोल है साहस?'

राजन्! अपनी कर्म परीक्षा के अभिप्राय से कुछ सोचने के बाद मेरे पिता अम्बड़ ने गोरखयोगिनी से दृढ़तापूर्वक कहा-

'मातेश्वरी! आप जो भी आदेश देंगी, मैं उनका पालन करूँगा। आपका आदेश कितना ही दुष्कर और कठिन हो, प्राणों की बाजी लगाकर भी मैं उसे पूरा करूँगा। संसार में सफलता उसे ही मिलती है, जो प्राणों से उसका मूल्य चुकाने को तैयार हो।' राजन्! मेरे पिता की दृढ़ता देखकर योगिनी ने कहा- 'वत्स! तुझे मेरे सात आदेशों का पालन करना होगा। इनका पालन करने के बाद तुझे आशातीत सफलता मिलेगी।'

सभी दरबारी और राजा विक्रमसिंह कुरुबक के मुँह की तरफ देख रहे थे। आगे का वृत्तान्त जानने के लिए सभी उत्सुक थे। कुछ देर मौन रहने के बाद अम्बड़ पुत्र कुरुबक ने पुन: कहा- बातों के सिलसिले में गोरखयोगिनी ने पिताजी की गहराई को आँक लिया था। वह पूर्ण विश्वस्त हो गई कि इस व्यक्ति में साहस, धैर्य और पराक्रम कूट-कूट कर भरा है, यह अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्राणों की भी परवाह नहीं करेगा। कुछ रुककर कुरुबक बोला-

राजन्! आज मैं इतना ही कहूँगा। कल यथासमय दरबार में उपस्थित होकर मैं बताऊँगा कि गोरखयोगिनी ने मेरे पिता को कौन-कौन से सात आदेश दिये और किन धैर्य तथा साहस के साथ उन्होंने सफलता प्राप्त की। असम्भव से लगने वाले कार्यों को भी उन्होंने सम्पन्न किया। इसके बाद राजा विक्रमसिंह ने राजसभा विसर्जित कर दी। वीर अम्बड़ पुत्र को भी सम्मान सहित अतिथि कक्ष में ठहराया। दूसरे दिन यथासमय नरश्रेष्ठ विक्रमसिंह का दरबार लगा। सभासद् गोरखयोगिनी की बातें सुनने को उतावले हो रहे थे। अम्बड़ पुत्र कुरुबक ने गोरखयोगिनी के सातों आदेश और अपने पिता अम्बड़ द्वारा उनकी पूर्ति एक-एक करके श्रीवासनरेश विक्रमसिंह तथा उनके सभासदों को सुनाना आरम्भ किया।

पहला-आदेश

शतशर्कराफल की प्राप्ति और चन्द्रावती के साथ विवाह

गोरखयोगिनी ने अम्बड़ को पहला आदेश देते हुए कहा-

वत्स अम्बड़! यहाँ से पूर्व दिशा में एक सुन्दर वाटिका है, जो 'गुणवदना' नाम से प्रसिद्ध है। उस वाटिका में शत-शर्करा नामक एक वृक्ष है। तुम मेरे लिए उस वृक्ष का शत शर्करा नामक फल लाकर दो। इस कार्य को पूरा करने के बाद मैं तुम्हें दूसरा आदेश दूंगी।

गुणवदना वाटिका कहाँ है, यहाँ से कितनी दूर है, उसका रक्षक कौन है तथा शत शर्करा फल कैसे मिलेगा आदि के बारे में अम्बड़ पूर्णत: अनभिज्ञ था। लेकिन उसके मन में आज विशेष उत्साह था। उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं। गोरखयोगिनी का आदेश शिरोधार्य कर अम्बड़ शत शर्करा फल लेने पूर्व दिशा की ओर चल दिया। अम्बड़ दिन में चला और रातभर चलता रहा। चलते-चलते सवेरा हुआ तो वह कुंकममण्डल के निकट सरोवर पर पहुँचा। थका-हारा अम्बड़ सरोवर के समीप लेटकर सुस्ताने लगा। जब सूरज की सुनहरी किरणें धरती पर फैल गयी तो हरियाली और भी चमक उठी। अम्बड़ ने एक अंगड़ाई ली और चारों ओर नजर घुमाई तो एक अद्‌भुत दृश्य देखकर दंग रह गया। उसने देखा, पुरुष सिर पर घड़े रखकर पानी ला रहे हैं और महिलाएं घोड़ों पर सवार होकर चहल-कदमी कर रही है। यहाँ उल्टी गंगा बह रही थी। अबला, सबला बनी हुई थी और पुरुष भीगी बिल्ली बनकर काम कर रहे थे। पुरुष पर नारी का शासन था। यहाँ ऐसा क्यों होता है, अम्बड़ यह जानने को उत्सुक था। अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए वह एक पुरुष के पास पहुँचा और जैसे ही उससे कुछ पूछने को उद्धत हुआ कि जलघटधारी उस पुरुष ने होठों पर उंगली रखकर चुप रहने का संकेत किया। अम्बड़ भी सहमकर चुप हो गया। फिर उस पुरुष ने चारों ओर देखकर धीरे से फुसफुसाहट के स्वरों में अम्बड़ से कहा- चुप रहने में ही खैर है। यदि हमारी बातचीत किसी ने सुन ली तो लेने के देने पड़ जायेंगे, जान पर आ बनेगी।

चौंककर विस्मय-विमुग्ध अम्बड़ के मुँह से सहसा निकला- 'स्त्रियों से

भय?' वहाँ घूमती भद्रा नामक एक वृद्धा ने अम्बड़ के ये शब्द सुन लिये। वह अम्बड़ को कुछ बताना चाहती थी कि तभी 'हटो-हटो' का शब्द सबने सुना। उधर से राजसवारी आ रही थी। एक स्त्री स्वर्ण अम्बारी से कसे हाथी पर विराजमान थी। उसके चेहरे पर तेज था। उसके आगे-पीछे, दाएं-बाएं सशस्त्र सिपाहियों की अनुशासित सेना चल रही थी। अम्बड़ के चेहरे पर कुतूहल के भावों का चढ़ाव-उतार था। भद्रा नामक वृद्धा अम्बड़ के भावों को पढ़ रही थी। ज्यों ही राजसवारी आगे निकली कि भद्रा नामक वृद्धा ने अम्बड़ से कहा- अम्बड़! तुझे यदि अपनी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान पाना है तो मेरे घर चल, मैं तुझे सभी कुछ बतलाऊँगी।

क्षत्रिय अम्बड़ में उत्साह और साहस दोनों ही भरपूर थे। वह भद्रा नाम की वृद्धा के साथ उसके घर की ओर चल दिया। वृद्धा एक भव्य भवन के आगे रुकी। भवन की अनुपम दिव्यता देखकर अम्बड़ चमत्कृत हुआ और भद्रा नामक वृद्धा के साथ महल के विशाल प्रांगण में आया। वहाँ चौकोर बने एक विशाल मण्डप में एक षोडशी बाला कुन्दुक क्रीड़ा कर रही थी। उसका सौन्दर्य अप्रतिम था, मानों वह सौन्दर्य की साकार प्रतिमा थी। ऐसा लगता था स्वयं उर्वशी ही आकर खेल रही हो। वह अकेली सूर्य, चन्द्र, मंगल और राहु नामक चार ग्रह कन्दुकों से खेल रही थी। उसके हाथ इतने सधे हुए थे कि चारों गेंदों को वह ऊपर उछालती और धरती पर आने से पहले ही लपक लेती। कोई भी गेंद नीचे नहीं गिरने देती। खड़ा-खड़ा अम्बड़ विस्मय के साथ चन्द्रावती नाम की उस राजकुमारी की कन्दुक क्रीड़ा देख रहा था। तभी भद्रा ने आकर उससे कहा- 'अगर तुझे शत शर्करा फल को प्राप्त करना है तो तुझे कुछ दिन यहाँ रहना पड़ेगा। यहाँ तुझे कोई कष्ट नहीं होगा। मेरी पुत्री चन्द्रावती अकेली ही गेंदों से खेल रही है। तू भी उसके साथ कन्दुक क्रीड़ा कर।' अम्बड़ वृद्धा को कुछ भी जवाब नहीं दे पाया। वह कुछ सोच ही रहा था कि तभी चन्द्रावती ने उसके पास आकर कहा- 'भद्र! तुम चिन्तातुर क्यों हो? आओ मेरे साथ इन गेंदों से खेलो। मैं तुम्हारे जैसे साथी की खोज में थी। आज हम दोनों आनन्द से खेलेंगे।'

अम्बड़ पहले तो कुछ सकुचाया, पर दूसरे ही क्षण चन्द्रावती के साथ कन्दुक क्रीड़ा के लिए राजी हो गया। चन्द्रावती ने खेल का नियम बताया। 'हमारे खेल का नियम यह है कि गेंदों को उछालते व पकड़ते समय जिसके हाथ से गेंद गिर जायेगी, वह हारा हुआ माना जाएगा और जो हार जायेगा, उसे जीते हुए की

चरण-सेवा करनी पड़ेगी।' अम्बड़ ने चन्द्रावती की शर्त स्वीकार कर ली। पहली पारी चन्द्रावती की थी। चन्द्रावती चारों गेंदों को आकाश में उछालने लगी। जब वह सूर्य कन्दुक को ऊपर आकाश में फेंकती तो दिन का तीव्र आलोक चारों ओर फैल जाता, चन्द्र कन्दुक को उछालने पर पूर्णिमा की चाँदनी छिटक जाती तथा मंगल और राहु नामक गेंदों को फेंकने से संध्या का सा अंधेरा मिला सुरमई प्रकाश चारों ओर फैल जाता। चन्द्रावती बहुत देर तक चारों गेंदो को उछालती रही। उसके हाथ सधे हुए थे, कोई भी गेंद भूमि पर नहीं गिरी। इस तरह जब काफी देर हो गई तो ऊबकर अम्बड़ ने कहा- 'अब मुझे भी तो अवसर दो।'

चन्द्रावती ने चारों गेंद अम्बड़ के हाथों में थमा दी। अम्बड़ ने सूर्य कन्दुक को ज्यों ही देखा कि उसके असह्य आलोक से उसकी आँखें चुंधिया गई। वह असह्य ताप से व्याकुल हो उठा और सूर्य बिम्ब में गिर पड़ा। चन्द्रावती ने सूर्य बिम्ब में गिरे अम्बड़ सहित सूर्य कन्दुक को आकाश में स्थिर कर दिया। उस सूर्य कन्दुक के साथ अम्बड़ भी स्थिर हो गया। निश्चिन्त होकर चन्द्रावती अन्य कार्य में लग गई।

नागड़ सूर्य का पुत्र और साथ ही उसका सारथि था। उसने सूर्य बिम्ब में पड़े मूर्च्छित अम्बड़ को देखा तो उसका हृदय पिघल गया और उसने मूर्च्छित अम्बड़ को जीवनदान देने का विचार किया। मूर्च्छित अम्बड़ को सचेत करने के लिए अमृत की आवश्यकता थी। अमृत लेने के अभिप्राय से नागड़ चन्द्रमण्डल की ओर दौड़ा, किंतु उसे वहाँ चन्द्रदेव नहीं मिला, बल्कि उस स्थान पर चन्द्र की पत्नी रोहिणी रोती हुई मिली। नागड़ को देखकर वह और भी फूट-फूट कर रोने लगी और नागड़ को अपनी व्यथा बताते हुए बोली- 'सारथि नागड़! तुम सूर्य पुत्र हो। अमिट बलशाली भी हो। मेरी सहायता करो। मेरे पति चन्द्रदेव का चन्द्रावती ने अपहरण कर लिया है। वे उसकी कारा में बन्द हैं। उनके बिना मेरा जीवन सूना है। मेरे इस दु:ख का निवारण करो।'

नागड़ ने चन्द्रप्रिया रोहिणी को धीरज बंधाया और चन्द्रावती के चंगुल से चन्द्रदेव को मुक्त करने के अभिप्राय से उसके घर की ओर चल दिया। चन्द्रावती ने नागड़ को अपनी ओर आते देखा तो 'अवसर चूका सो गया' की उक्ति का विचार कर उसने पहले ही नागड़ को लक्ष्य कर नागपाश बाण छोड़ दिया। नागड़ नागपाश से बंध गया और धरती पर गिर पड़ा। चन्द्रावती अपने शत्रु नागड़ से निश्चिन्त होकर अपनी माता भद्रा के साथ बातें करने लगी। इधर

नागड़ की बहिन 'सर्पदुष्टशृंखला' को रोहिणी से पता लगा कि उसका भाई नागड़ चन्द्रावती के पास गया है तो उसका हृदय भावी अनिष्ट की आशंका से घबरा गया। भाई की खोज खबर लेने वह चन्द्रावती के घर की ओर चली। उसने अपने भाई नागड़ को नागपाश में बंधा देखा तो गरुड़बाण का प्रयोग किया। फलस्वरूप नागड़ नागपाश के बन्धन से मुक्त हो गया। बन्धन मुक्त होते ही नागड़ चन्द्रावती से बदला लेने को उद्धत हुआ। उसे क्रुद्ध देख चन्द्रावती ने तत्काल सूर्य की गति रोक दी, उसे स्तम्भित कर दिया। अपने ज्ञान बल से सूर्य ने समस्त वृत्तान्त जान लिया। उसने पुत्र नागड़ को समझाया- 'पुत्र! तुम चन्द्रावती से विरोध मत करो। अपने से अधिक बलशाली के सामने झुकने में ही भलाई है। चन्द्रावती शक्तिरूपा योगिनी है। उसे परास्त करना हँसी खेल नहीं है। वह जब चाहती है, तब मुझे भी समय-समय पर स्तम्भित कर देती है। मैं भी उसकी शक्ति का कायल हूँ।'

सूर्य का आदेश मानकर नागड़ उस स्थान से हट गया और उसने माया कुण्डलिनी की आराधना प्रारम्भ की। फलस्वरूप उसने शक्ति प्राप्त की और चन्द्रावती की माता भद्रा को मारकर अपनी शक्ति का परिचय दिया। अब चन्द्रावती भी नागड़ का लोहा मान गई और उसके क्रोध को शान्त करने में ही भलाई समझी। उसने नागड़ से क्षमायाचना की। उसका अहंकार चूर-चूर हो गया। नागड़ ने चन्द्रावती से चन्द्रदेव को मुक्त कराया और रोहिणी को सौंप दिया। चन्द्रदेव से मिलकर रोहिणी को अपार हर्ष हुआ। नागड़ ने रोहिणी से कहा- 'रोहिणी! तुम्हारा काम हो गया। मुझे अभी एक पुरुष का उद्धार करना है। अत: मुझे अमृत चाहिए।' रोहिणी ने अपने उपकारी नागड़ को अमृत दिया। नागड़ सूर्य मण्डल में आया और मूर्च्छित अम्बड़ पर अमृत के छींटे डाले। अम्बड़ ऐसे उठ बैठा, मानो सोते से जागा हो। अम्बड़ ने सूर्य की भक्तिपूर्वक वन्दना की। सूर्य उससे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अम्बड़ को वरदान देते हुए कहा- 'वीर अम्बड़! आज से तू कामजयी अर्थात् अनंगजेता हो गया। किसी भी कामिनी के कामबाण तुझे घायल नहीं कर पायेंगे।' बिना माँगे इस वरदान को पाकर अम्बड़ बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सूर्य की भक्ति की और बार-बार उसकी वन्दना की। इससे सूर्य और भी प्रसन्न हुआ तथा उसने अम्बड़ को आकाशगामिनी तथा इन्द्रजाल नामक दो विधाएं भी प्रदान की। सच है, विनय एवं भक्ति से देवता प्रसन्न होते ही हैं। इसके बाद अम्बड़ ने सूर्य से शत शर्करा फल

की माँग की। सूर्य ने वह फल लाकर अम्बड़ को दे दिया।

अम्बड़ को अनंगजेता का वरदान आकाशगामिनी तथा इन्द्रजाल नामक दो विधाएं प्राप्त हो गई तो उसने अपनी सामर्थ्य का अनुभव किया। शत शर्करा फल पाकर उसके मनोरथ सफल हो गए। क्योंकि गोरखयोगिनी के पहले आदेश की पूर्ति हो चुकी थी। लेकिन धनगिरी पहुँचने से पहले वह चन्द्रावती को परास्त करना चाहता था, क्योंकि एक तो उसने अपने क्षेत्र के समस्त पुरुषों को गुलाम बना रखा था और दूसरे अम्बड़ के साथ भी विश्वासघात किया था। उसे सूर्य मण्डल के साथ ही मूर्च्छित अवस्था में आकाश में स्तम्भित कर दिया था। अम्बड़ के मन में चन्द्रावती से बदला लेने की भावना बलवती हो उठी। सूर्यपुत्र नागड़ ने अम्बड़ को धरती पर लाकर छोड़ दिया। अम्बड़ ने सूर्य प्रदत्त दोनों विधाएं सिद्ध की और चन्द्रावती को पराजित करने चल पड़ा। इन्द्रजाल नामक विद्या से उसने महादेव का रूप धारण किया और चन्द्रावती के सम्मुख उपस्थित हुआ। स्वयं महादेव को ही साक्षात् अपने आँगन में खड़ा देख चन्द्रावती बहुत चकित हुई और उसने अपने भाग्य को भी सराहा। उसने महादेव रूपी अम्बड़ को साष्टांग प्रणाम करने के बाद कहा- आज मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि नन्दी नामक वृषभ पर सवारी करने वाले त्रिशूलपाणि, चन्द्रशेखर, गिरिजापति स्वयं मेरे घर पधारे हैं।

अम्बड़ ने चन्द्रावती के प्रशस्ति कथन का कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि शिव रूपधारी अम्बड़ रोने लग गया। रोते-रोते उसकी हिचकी बँध गई। महादेव रूपी अम्बड़ के इस आचरण से चन्द्रावती को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा-

हे देव! देवों में सबसे बड़े होने के कारण आप महादेव हैं। भक्तों पर शीघ्र ही प्रसन्न होने के कारण आप आशुतोष हैं। संसार का कल्याण करने के कारण आप शिव हैं। विश्व का भरण-पोषण करने के कारण आप विश्वम्भर हैं। कामदेव को भस्म करके अनंग रूप में उसका अस्तित्व कायम रखने के कारण आप कामारि हैं। फिर आपको ऐसा कौन-सा दु:ख है कि आप मनुष्यों की तरह रो रहे हैं? चन्द्रावती की बात सुनने के बाद महादेव रूपी अम्बड़ ने कहा- चन्द्रावती! तू ठीक कहती है। लेकिन मैं इसलिए दु:खी हूँ कि आज मैं 'आधा' रह गया हूँ। मेरा आधा अस्तित्व समाप्त हो गया है। नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी होती है। उसी से पुरुष पूर्ण होता है। मेरी प्रिय पार्वती मेरी शक्ति थी, उसी के कारण मैं अर्द्ध-नारीश्वर भी कहलाता हूँ। मेरी पार्वती मर गई है। अगर तुम....। महादेव के आगे

कुछ कहने से पहले ही चन्द्रावती बोल उठी- प्रभो! मेरे योग्य जो भी सेवा होगी, मैं प्रसन्न मन से करूँगी। शिव ने कहा- चन्द्रावती! अब तुम पार्वती का स्थान ग्रहण करके मेरी अर्द्धांगिनी की पूर्ति करो। कुछ अचकचाकर चन्द्रावती बोली- किंतु आप देव और मैं मानुषी...? यह कैसे होगा? इसकी चिन्ता तुम मत करो। अम्बड़ ने शिव के रूप में कहा- मेरे साथ रहकर तुम भी देवी बन जाओगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे। मैंने जो कुछ कहा है, आगे की सोच-विचार कर ही कहा है। चन्द्रावती के लिए इससे अच्छा और क्या हो सकता था। वह शिव की पार्वती बनने के लिए सहर्ष तैयार हो गई। मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा- प्रभो! मैं आपकी चरण सेवा करूँ, यह मेरा अहोभाग्य है। अपनी योजना को सफल देख अम्बड़ ने दूसरा जाल फेंका। बोला- अब तुझे मेरे अनुकूल दुलहन वेश सजाना पड़ेगा। भक्त लोग मुझे पशुपति और दिगम्बर भी कहते हैं। मैं गले में मुण्डों की माला पहनता हूँ और सर्पों को धारण करता हूँ। अधोवस्त्र के रूप में बाघाम्बर पहनता हूँ और शरीर पर मरघट की राख लगाता हूँ। तुझे मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनने होंगे तथा मुँह पर कालिख पोत कर गधे की सवारी करनी होगी। इस तरह तू मेरे अनुरूप दुल्हन बन जा। दोपहर के समय मैं नन्दी वृषभ पर बैठकर तुझे कैलाश ले जाने के लिए अकेला आऊँगा। तू तैयार रहना।

चन्द्रावती ने नाटकीय महादेव की सब शर्तें स्वीकार कर ली और दोपहर होने से पहले ही उसने शिव की दुलहन का वेश बना लिया। मुँह काला करके और मैले कपड़े पहनकर गधे पर सवार हो गई और शिव की प्रतीक्षा करने लगी। यथासमय एक वृषभ पर सवार होकर महादेव रूपी अम्बड़ आ गया। चन्द्रावती को गधे पर बिठाकर शिव भवन से बाहर आये। जनता का विशाल समूह चन्द्रावती को विदा करने आया। दर्शक नर-नारी चन्द्रावती के भाग्य की सराहना कर रहे थे- चन्द्रावती कितनी भाग्यशालिनी है कि शिव की अर्द्धांगिनी बनकर कैलाश पर जा रही है। अब तो वह देवी बनकर शिवलोक में रहेगी।

लोगों के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह फूली नहीं समा रही थी। इतने में ही ऐन्द्रजालिक अम्बड़ ने चमत्कार किया। चन्द्रावती का वाहन गर्दभ बिदक गया और उसने चन्द्रावती को नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, उसके दुलत्ती भी जमा दी। यह कौतुक देख जन-समूह हँस पड़ा। चन्द्रावती बहुत झेंपी और इतने लोगों के सामने अपमानित होने के कारण क्षुब्ध हो गई। पर कहावत है न कि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं' इसलिए वह शिव से कुछ कह भी नहीं सकती

थी। अत: अपने क्षोभ को पी कर उसने कहा- स्वामी! आपने मेरी ऐसी मजाक क्यों कराई? जनता के सामने मुझे नीचा दिखा दिया और...

चन्द्रावती पूरी बात कह भी नहीं पाई थी कि शिव वाहन वृषभ ने भी उसके लातें जमा दी और उसे मारने के लिए सींगों को आगे किया। चन्द्रावती पीछे हटकर बच गई। लेकिन जब उसने मुड़कर देखा तो न वहाँ शिवजी थे और न उनका वाहन वृषभ ही था। यह देख चन्द्रावती मन ही मन कुढ़ने लगी- यह तो कोई मायावी इन्द्रजालिया था। मैं तो आज बुरी तरह अपमानित हुई। एक पुरुष से मुँह की खा गई। चन्द्रावती को यों पछताते देख लोगों ने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए व्यंग्य वचनों में कहा- चन्द्रावती! कैलाश से बहुत जल्दी लौट आई? एक रात भी शिव के साथ नहीं रही? क्या शिवजी से कहा-सुनी हो गई थी?

अम्बड़ भी यह तमाशा देख रहा था। अब वह अपने असली रूप में चन्द्रावती के सामने उपस्थित हुआ। अम्बड़ को देखकर उसका खून खौलने लगा। मनुष्य को कितना ही क्रोध आए, अपने से अधिक शक्तिशाली के सामने वह दब जाता है। चन्द्रावती अम्बड़ की विद्या शक्ति का परिचय पा चुकी थी, अत: क्रोध को पीने का प्रयास करने लगी। फिर भी क्रोधावेश को दबाते-दबाते इतना तो उसके मुँह से निकल ही गया- आपने स्वयं को क्यों छिपाया? क्या सचमुच गधे हो? अम्बड़ ने भी आँखें तरेर कर कहा- अब भी यदि तेरी अक्ल ठिकाने नहीं आयेगी तो तुझे और भी कष्ट झेलने पड़ेंगे। चन्द्रावती मन मसोस कर रह गई। भावी कष्ट की आशंका से वह थर-थर काँपने लगी। अम्बड़ ने पुन: कन्दुक क्रीड़ा करने के लिए आह्वान किया। वह भी राजी हो गई। इस बार अम्बड़ जीत गया। शर्त के अनुसार चन्द्रावती को अम्बड़ की चरण सेवा के लिए बाध्य होना ही था। अत: अम्बड़ ने कहा- चन्द्रावती! या तो चरण सेवा करो या मेरे साथ विवाह करो। चन्द्रावती ने अम्बड़ से विवाह करना ही उचित समझा। अम्बड़-चन्द्रावती का विवाह सम्पन्न हो गया। अब अम्बड़ ने अपनी पत्नी चन्द्रावती से पूछा- प्रिये! मेरी इस जिज्ञासा को शान्त करो कि इस नगर में पुरुष तो कार्य करते हैं और स्त्रियां उन पर शासन करती हैं। यहाँ ऐसी उलटी रीति क्यों है? चन्द्रावती ने बताया- प्राणाधार! यह नगर मैंने ही अपनी शक्ति से बसाया है। मेरी इच्छा के विरुद्ध यहाँ का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जैसा मैं चाहती हूँ, यहाँ सब वैसा ही होता है। मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता। लोक परम्परा के विरुद्ध कोई जो कुछ यहाँ होता है, वह सब मेरी ही शक्ति का

चमत्कार समझिए। प्रिये! तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी शक्ति है, जिसके बल पर सबको नाच नचाया करती हो? अम्बड़ के पूछने पर चन्द्रावती ने बताया- स्वामी! आकाशगामिनी, चिन्तितगामिनी, रूप परावर्तिनी, आकर्षणी मेरे पास ये चार विद्याएं हैं, जिनके बल पर मैं सबकुछ दुष्कर कार्य करती हूँ। अब ये चारों विद्याएं आपको समर्पित हैं।

अम्बड़ और चन्द्रावती दोनों ही शक्ति सम्पन्न तथा विद्या सम्पन्न थे। दोनों के दिन आनन्द से कटने लगे। पराक्रमी अम्बड़ चन्द्रावती के साथ सुवर्ण, रत्न आदि लेकर अपने नगर रथनूपुर में आया। गोरखयोगिनी के प्रथम आदेश की पूर्ति सुनाने के बाद कुरुबक ने राजा विक्रमसिंह से कहा-

राजन्! इसके बाद अम्बड़ ने अन्य इकतीस कन्याओं के साथ और भी विवाह किये। उनकी बत्तीस पत्नियों में से प्रथम पत्नी यही चन्द्रावती मेरी माता थी। इसके बाद मेरे पिताजी वीर अम्बड़ मेरी माता चन्द्रावती और शत शर्करा फल लेकर गोरखयोगिनी के पास धनगिरी पर्वत पहुँचे। विधिवत् गोरखयोगिनी की वंदना कर वीर अम्बड़ ने शत शर्करा फल भेंट किया और दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

दूसरा आदेश

आन्धारिका-हरण

प्रथम आदेश की पूर्ति से सन्तुष्ट होने के बाद गोरखयोगिनी ने दूसरा आदेश देते हुए कहा-

वत्स अम्बड़! दक्षिण दिशा में विशाल समुद्र के बीच 'हरिछत्र' नामक द्वीप है। वहाँ कमलकांचन नाम का एक योगी रहता है। उसी योगी की कन्या का नाम 'आन्धारिका' है। तू उस आन्धारिका को लेकर आ। अम्बड़ के पास गगनगामिनी विद्या थी तथा इन्द्रजाल नाम की विद्या के अलावा चन्द्रावती प्रदत्त चार विद्याएं और भी थी। अब बड़े से बड़े कार्य करने को वह समर्थ था। सूझ-बूझ तो उसके पास थी ही। अत: योगिनी का दूसरा आदेश पूर्ण करने के लिए अम्बड़ उत्साह भरे दिल से आकाश मार्ग से दक्षिण दिशा की ओर चल दिया। कुछ ही समय बाद वह समुद्र स्थित 'हरिछत्र' नामक द्वीप के उद्यान में पहुँच गया। फल-फूलों से शोभित उद्यान में अम्बड़ विश्राम करने लगा और

कमलकांचन योगी की कुटी तक पहुँचने का विचार करने लगा। कुछ देर बाद अम्बड़ उठा। अंगड़ाई भरी और उद्यान में आगे कदम बढ़ाया ही था कि उसे सामने से आता एक व्यक्ति मिला। अम्बड़ उस व्यक्ति से कमलकांचन योगी की कुटिया के बारे में पूछना चाहता ही था कि व्यक्ति ने अम्बड़ से कहा- 'अम्बड़! बहुत दिनों बाद आज तुम यहाँ आये हो?'

एक अनजान आदमी के मुँह से अपना नाम सुनकर अम्बड़ चकित रह गया। अपने आश्चर्य को दबाकर अम्बड़ ने उस व्यक्ति से अपने मतलब का प्रश्न किया- 'यहाँ कहीं कमलकांचन योगी रहते हैं? उनका आश्रम कहाँ है? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' उस व्यक्ति ने कहा- जिसके पास तुम आये हो और जिसे देखना चाहते हो, मैं वही कमलकांचन योगी तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। योगी कमलकांचन अम्बड़ से आगे कुछ और कहता कि उसने एक लड़की के रोने की आवाज सुनी। योगी उसे देखने चल पड़ा। अम्बड़ भी उसके पीछे-पीछे हो लिया। लड़की के पास पहुँचकर योगी ने कहा- बेटी! तू रो क्यों रही है? क्या बात है, मुझे भी तो बता। लड़की ने कहा- पिताजी! आपके साथ यह जो अम्बड़ नाम का व्यक्ति है, यह बड़ा ही धूर्त है। यह एक दुष्ट विचार लेकर आया है। यह मुझे हरण करके ले जायेगा, लेकिन आपको तो सब कुछ मालूम है। सब जानते हुए भी ऐसे अनजान बनकर आप क्यों पूछ रहे हैं?

अपनी पुत्री आन्धारिका की बात सुनकर योगी कमलकांचन ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा- बेटी! मेरे रहते कोई तेरा अपहरण नहीं कर सकता। आखिर मैं भी योगी कमलकांचन हूँ। और योगी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फिराया। कुटिया के बाहर खड़ा अम्बड़ पिता-पुत्री की बातें सुन रहा था। अपने गुप्त उद्देश्य को यों प्रकट होते देख अम्बड़ हैरान रह गया। फिर भी अपने भाग्य बल और विद्या बल पर भरोसा रख वह शान्त रहा। योगी कुटिया से बाहर आया और कठोर निगाहों से घूरकर अम्बड़ से रोबीले स्वर में बोला- 'क्या तुम गोरखयोगिनी द्वारा भेजे गए यहाँ आये हो?' अम्बड़ ने स्वीकार किया और अब आगे क्या होगा, इसकी प्रतीक्षा करने लगा।

उद्यान में स्थित योगी की कुटिया से कुछ दूर उस योगी का घर था, जहाँ कागी और नागी नाम की उसकी दो पत्नियाँ रहती थी। योगी ने अपने एक अनुचर के साथ अम्बड़ को अपने घर भेज दिया। योगी की दोनों पत्नियाँ भी अम्बड़ के रहस्य को जानती थी। दोनों ने उसका स्वागत किया और

गोरखयोगनी की कुशलक्षेम पूछी। कागी-नागी ने सुस्वादु भोजन बनाया और अपने हाथों से परोसकर अम्बड़ को खिलाया। भोजन करने के बाद अम्बड़ लेटकर विश्राम करने लगा कि लेटे-लेटे ही अचानक वह मुर्गा बन गया। अपने इस रूप परिवर्तन को देखकर वह बहुत दुःखी व खिन्न हुआ। उसी समय कागी-नागी बिल्लियाँ बन गई और मुर्गे रूपी अम्बड़ पर पंजा मार-मारकर उसे त्रास देने लगी, तभी योगी कमलकांचन भी घर आया। मुर्गे को सम्बोधित कर उसने कहा- 'तुने मेरी पुत्री आन्धारिका के अपहरण का इरादा किया था। उसी दुष्ट इरादे का यह फल तुझे मिल रहा है।'

अम्बड़ विवश था। उसे मुर्गे के रूप में ही वहाँ रहना पड़ा। मनुष्य का भाग्य प्रबल होता है तो उसके शत्रु की बुद्धि भी फिर जाती है। एक दिन कागी-नागी ने अपने पति योगी कमलकांचन से कहा- 'इस मुर्गे को जंगल में छोड़ आओ। जंगल में रहकर ही यह अपने किए का फल पाता रहेगा।' योगी ने मुर्गे के रूप में अम्बड़ को वन में छोड़ दिया। अब वह भाग्य भरोसे निर्भय होकर जंगल में घूमने लगा। घूमते-घूमते वह एक बावड़ी के निकट पहुँच गया और उसका जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। वापी का जल पीते ही अम्बड़ का मुर्गे का रूप बदल गया और वह पूर्ववत् मनुष्य रूप में हो गया। अब अम्बड़ अपने निजी रूप में वन में विचरण करने लगा।

एक दिन अम्बड़ ने किसी स्त्री के रोने का शब्द सुना। रोने की आवाज को पकड़कर उस स्त्री के निकट पहुँच गया। अम्बड़ ने उससे सहानुभूतिपूर्वक पूछा- भद्रे! इस भयावह अरण्य में तुम क्यों रो रही हो? तुम्हें क्या कष्ट है, मुझे बताओ। शायद मैं तुम्हारे कुछ काम आ सकूँ। उस स्त्री को अम्बड़ की सहानुभूति से कुछ तसल्ली हुई। उसने अपनी व्यथा-कथा अम्बड़ को इस प्रकार सुनाई- रोलापुर नामक नगर में हँस नाम का राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम श्रीमती है। राजा हँस की आत्मजा और रानी श्रीमती की अंगजात राजकन्या का नाम राजहँसी है। हे भद्र! मैं वही राजहँसी हूँ। मैं यहाँ वन में अकेली क्यों भटक रही हूँ, अब मैं इसका रहस्य बताऊँगी। मैं जब युवती हुई तो मेरे पिता राजा हँस ने राजकुमार हरिशचन्द्र के साथ मेरा विवाह करना चाहा और उसके साथ मेरा विवाह पक्का कर दिया। विवाह के दिन राजपुत्र हरिशचन्द्र मुझे ब्याहने मेरे पिता की राजधानी रोलापुर नगर में आया। मेरे पास सूर्यदेव प्रदत्त एक कंचुकी थी। विवाह के समय मैं उस कंचुकी को पहने हुई थी। जब मैं विवाह

मण्डप में जा रही थी तो सूर्य कंचुकी लेने के अभिप्राय से एक दुष्ट मानव मुझे लेकर आकाश में उड़ गया। आकाश में स्थिर कर वह मेरी कंचुकी छीनने लगा। मैंने भी अपने बल का प्रयोग किया और अपनी कंचुकी को नहीं छोड़ा। काफी छीना-झपटी के बाद पुरुष जब मुझसे कंचुकी नहीं छीन पाया तो खिसियाकर उसने मुझे इस जंगल में गिरा दिया और स्वयं कहीं गायब हो गया। इस समय मैं असहाय हूँ। इस जंगल से निकलने का कोई भी मार्ग मुझे नहीं मालूम। दूसरे मैं उस दुष्ट से भी डरती हूँ। पता नहीं, किस समय वह यहाँ आ धमके और मुझे कष्ट दे। हे भद्र! यही मेरे रोने का कारण है। इसके बाद अम्बड़ ने राजकुमारी राजहँसी से कहा- सुभगे! अब तुम उस दुष्ट नराधम की चिन्ता मत करो। उसे मैं देख लूंगा। पर मेरी एक जिज्ञासा है, शान्त करो। इस सूर्य कंचुकी का क्या रहस्य है। वह तुम्हें क्योंकर प्राप्त हुई तथा इसमें क्या विशेषताएं है?

अम्बड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए राजकुमारी राजहँसी ने कहा- 'बाल्यावस्था' पार कर जब मैं विद्याग्रहण करने योग्य हुई तो मेरे पिता ने हमारे राज्य के महापण्डिता सरस्वती नाम की आचार्या के पास मुझे विद्याध्ययन हेतु भेजा। मेरे साथ अन्य कुलीन छात्राएं भी शिक्षा पाती थी। मुझे मिलाकर सरस्वती से शिक्षा ग्रहण करने वाली आठ छात्राएं थी। हम आठों में बड़ा स्नेह था। गुरुजी के पास रहकर ही हम विद्या प्राप्त करती थी। हमारा अध्ययन विधिवत् चलता था। एक समय की बात है। आधी रात के समय हमारी सरस्वती पण्डिता ने धरती पर एक मण्डल बनाया। उनके आह्वान पर चौसठ योगिनियां उस मण्डल में आकर बैठ गई और क्रीड़ा करने लगी। उनके आमोद-प्रमोद के अनन्तर सरस्वती पण्डिता ने उनसे सिद्धि की याचना की। योगिनियों ने कहा- पहले तुम हमें पिण्ड अर्पित करो। फिर तुम्हें सिद्धि सहज सुलभ होगी। हम आठों पाठशाला में सो रही थीं। अचानक हम सभी की आँख खुल गई और कपटनींद का अभिनय कर हम सब सरस्वती पण्डिता ने हमारी ओर इशारा करके कहा- ये आठों कन्याएं तुम्हें पिण्ड देने के उद्देश्य से ही यहाँ लाई गई हैं। आप मुझे पिण्ड देने का विधि-विधान बतायें, आपके निर्देशन के अनुसार पिण्डदान का कार्य सम्पन्न हो जायेगा। हमें देखकर सभी योगिनियों के मुँह में पानी आ गया।

उन्होंने सरस्वती पण्डिता से कहा- कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का रविवार ही सर्वोत्तम दिन है। उस दिन दोपहर के समय हम तेरे यहाँ आयेंगी। तुम इन आठों छात्राओं को नैवेद्य सहित तैयार रखना। हे भद्र! इसके बाद सभी

योगिनियां चली गई। अब आगे क्या हुआ, वह मैं बताती हूँ। कुछ देर मौन रहने के बाद राजहँसी ने अम्बड़ से पुन: कहना आरम्भ किया- हे भद्र! बलि का नाम सुनते ही हमारा कलेजा काँपने लगा। हम आठों सखियों ने मिलकर इससे बचने के उपाय पर विचार किया। मैंने अपनी सखियों को परामर्श दिया कि मेरे पिता राजा हँस के पास जाकर सारी बातें बता देनी चाहिए और उसके बाद सूर्यदेव की आराधना करके बचाव की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। मेरी सलाह को सबने माना। प्रात: काल हम राजा के पास पहुँची और उन्हें रात्रि का समस्त वृत्तान्त सुनाया। यह सब वृत्तान्त सुनने के बाद मेरे पिता राजा हँस बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने वधिकों को हुक्म दिया कि सरस्वती पण्डिता का तत्काल वध कर दिया जाय। मैंने पिताजी को रोका और बताया, हमें उसके खून से अपने हाथ नहीं रंगने चाहिए। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। हमें तो यही उचित है कि किसी तरह उसके षड्यन्त्र से अपनी रक्षा करें। इस पर पिताजी ने मुझसे पूछा कि तुम किस तरह अपनी और सखियों की रक्षा करोगी। मैंने उन्हें बताया कि हम सूर्य की आराधना करेंगी। उनकी कृपा से निश्चय ही हमारी विजय होगी। इसके बाद हम सब सूर्य की आराधना करने लगी, यथा समय सूर्यदेव हम पर प्रसन्न हुए और हमें प्रत्यक्ष दर्शन देकर पूछा- 'तुम्हें क्या कष्ट है? किसलिए मुझे याद किया है?' हमने अपनी व्यथा-कथा सूर्यदेव को सुनाई। सूर्यदेव ने मुझे एक कंचुकी दी और मेरी सातों सखियों को एक-एक गुटिका दी और फिर हम सबसे कहा- पुत्रियों! जब तुम्हारी आचार्या सरस्वती पण्डिता योगिनियों द्वारा दी गई साड़ी पहने तो राजकुमारी राजहँसी को मेरे द्वारा दी गई यह कंचुकी पहननी चाहिए और तुम सब इन गुटिकाओं को अपने-अपने मुँह में रख लेना। फिर उस दुष्टा सरस्वती पण्डिता की दाल नहीं गलेगी। तुम सब बच जाओगी और सरस्वती अपनी मौत मर जाएगी। इसके बाद सूर्यदेव अन्तर्ध्यान हो गए और हम आठों अध्ययन में लीन हो गयी। किसी को कुछ पता नहीं चला। इधर सरस्वती पंडिता कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का इंतजार कर रही थी। चतुर्दशी से दो-चार दिन पहले उस दुष्टा ने हमसे कहा- पुत्रियों! मुझे अपने ज्ञान बल से ऐसा विदित हुआ है कि तुम सब पर भारी विपत्ति आने वाली है। यदि तुम चाहो तो मैं इस विपत्ति का निवारण कर सकती हूँ। हम सबने बनावटी भय प्रदर्शित करते हुए आचार्या से कहा- आपके अलावा हमारी रक्षा करने वाला कौन है? जैसे भी बने, आप हमें संकट से बचाइये। सरस्वती पण्डिता हमारे उत्तर से आश्वस्त हो गई और दो दिन बाद

बोली- मेरे रहते हुए कोई भी तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। जैसा मैं कहूँ तुम वैसा करो। आज रविवार का दिन है। दोपहर के समय तुम सब मेरे घर आना। तुम्हारे अमंगल को टालने के लिए मैं एक विशेष अनुष्ठान करूँगी।

हे भद्र! सरस्वती पण्डिता अपनी योजना पर प्रसन्न हो रही थी। वह हमें मूर्ख समझ रही थी और हम उसे बुद्धू समझ रही थीं। निर्दिष्ट समय पर हम आठों उसके पास पहुँच गई। पण्डिता ने आठ कुण्डल (वृत्त, गोला) बनाये और प्रत्येक में हमको बैठा दिया। धूप-दीप नैवेद्य से पूजा की गई। उसके बाद पण्डिता घर के अन्दर गई और योगिनी प्रदत्त साड़ी पहनने लगी। अवसर देख मैंने भी सूर्य प्रदत्त कंचुकी पहन ली और मेरी सखियों ने एक-एक गुटिका अपने मुँह में रख ली और चुपचाप यथावत् अपने-अपने मण्डल में बैठी रही। यथासमय पण्डिता साड़ी पहनकर बाहर आई। उसी समय हम सब उस पर टूट पड़ी। वह एकदम बौखलाकर बोली- 'छोकरियों! यह क्या करती हो? तुम्हारा दिमाग तो ठीक है।' हमने कहा- 'हम अपने अमंगल का निवारण कर रही हैं। अगर ऐसा नहीं करेंगी तो तेरी बुलाई गई योगिनियां हमारा भक्षण करेंगी।' इस रहस्योद्घाटन से वह भौचक्की होकर दाँत पीसने लगी। लेकिन हमने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और उसकी साड़ी तार-तार कर डाली। वह वहीं मर गई। रोलापुर की जनता ने जब इस सब घटना का मर्म जाना तो उसने हमें बधाई दी। अपनी राम-कहानी सुनाने के बाद राजहँसी ने अम्बड़ को देखकर मन ही मन कहा- यह पुरुष तो साक्षात् देवकुमार सा है। निश्चय ही इसके साथ मैं दैत्य, दानव, विद्याधर आदि सभी से सुरक्षित हूँ। यह तो बहुत ही प्रतिभा सम्पन्न और बलशाली मालूम पड़ता है। राजहँसी ने मन ही मन अम्बड़ का वरण किया और अपने को समर्पित कर दिया। उसके बाद राजहँसी ने अपना मनोभाव अम्बड़ को भी बताया। अम्बड़ ने उसे पत्नी रूप में स्वीकार किया।

अम्बड़ को गोरखयोगिनी के दूसरे आदेश के पालन-स्वरूप आन्धारिका को प्राप्त करना था। अत: कार्य पूरा होने से पहले वह अपने नगर को कैसे लौट सकता था। अत: उसी वन में राजहँसी को लेकर रहने लगा। एक दिन ऐसा हुआ कि अनजाने में राजहँसी ने किसी वृक्ष का फल खा लिया। फल खाते ही वह गर्दभी बन गई। राजकुमारी को गर्दभी के रूप में देख अम्बड़ को चिन्ता हुई, पर उसने धीरज नहीं खोया। अम्बड़ को एक नया रहस्य हाथ लगा कि इस वृक्ष का फल खाने से मनुष्य गर्दभ हो जाता है। चिन्ता इसलिए नहीं थी कि पुन:

असली रूप में लाने के लिये वापी जल का रहस्य उसे मालूम ही था। अत: अम्बड़ गर्दभी रूपी राजहँसी को उसी वापी के पास ले गया, जिसका जल पीकर वह मुर्गे से मनुष्य बना था। अम्बड़ ने गर्दभी को वापी का जल पिलाया, जल पीते ही गर्दभी पुन: अपने वास्तविक रूप में आ गई। उसके बाद अम्बड़ ने रूप परावर्तनकारी वृक्ष के कुछ फल तोड़कर अपने पास रख लिये और गगन-गामिनी विद्या के बल से राजहँसी को लेकर रोलापुर पहुँचा। अम्बड़ स्वयं तो रोलापुर नगर के बाहर राजोद्यान में ठहर गया और राजहँसी अपने पिता के महलों में पहुँची। राजा हँस और रानी श्रीमती ने जब अचानक अपनी पुत्री को देखा तो खुशी के मारे उछल पड़े। राजा ने पूछा- बेटी! तू कहां गुम हो गई थी? तेरे बिना हम तो जीवित होकर मरे हुए के समान थे। राजकुमारी राजहँसी ने अथ से इति तक समस्त वृत्तान्त सुनाया और कहा- 'आपके जामाता तो उद्यान में ठहरे हुए हैं।' राजा तत्काल उद्यान पहुँचा और प्रेम व सम्मान के साथ अम्बड़ से मिला। बड़ी धूम-धाम से अम्बड़ का नगर प्रवेश हुआ और राजकीय आडम्बर के साथ राजहँसी तथा अम्बड़ का विवाह सम्पन्न हुआ। इतना ही नहीं, राजहँसी की अन्य सातों सखियों का विवाह भी अम्बड़ के साथ हुआ। अपनी आठ पत्नियों के साथ अम्बड़ कुछ दिन ससुराल में ही आनन्द करता रहा।

एक दिन अम्बड़ को कमलकांचन योगी का ध्यान आया। उसकी कागी-नागी नाम की दोनों पत्नियों ने उसे मुर्गा बनाकर जो यातनाएं दी थी, उन्हें वह भूला नहीं था। अत: अपने अपमान का बदला लेने तथा गोरखयोगिनी के आदेश स्वरूप योगी की कन्या आन्धारिका का अपहरण करने हेतु अम्बड़ आकाशगामिनी विद्या द्वारा आनन-फानन में हरिछत्र द्वीप पहुँच गया। इधर कमलकांचन योगी अपनी सफलता पर गर्व करता हुआ अपनी बेटी आन्धारिका से कह रहा था- बेटी! तेरे अपहरण के इरादे से आने वाला अम्बड़ तो अब तक काल का ग्रास बन गया होगा। तेरी माताओं ने उसे मुर्गा बनाकर वन में छुड़वा दिया था। अब तक उसे कोई न कोई वनबिलाव खा गया होगा। हरिछत्र द्वीप पहुँचकर अम्बड़ ने कमलकांचन योगी का वेश बनाया और सीधा योगी के घर पहुँचा। योगी वेशी अम्बड़ ने कागी-नागी नाम की दोनों पत्नियों को रूप-परावर्तनकारी वृक्ष का फल देकर कहा- 'काट-छीलकर इस फल की सब्जी बनाओ। मुझे अभी भोजन करना है।' फल देकर अम्बड़ स्नानादि करने के बहाने घर से बाहर आया और कागी-नागी का रूप बनाकर योगी के पास गया

और बोला- स्वामी! चलिये भोजन तैयार है, शाक और रोटियाँ बड़ी ही स्वादिष्ट बनी हैं। देर करने से सब स्वाद बेस्वाद हो जायेगा। योगी कमलकांचन भोजन करने घर आया। अब आन्धारिका कुटिया में अकेली रह गई। मौका देखकर अम्बड़ उसे उठाकर चलता बना और उसे राजहँसी को सौंपकर पुन: अपने असली रूप में योगी के घर आया। फल के प्रभाव से कागी-नागी तथा योगी तीनों ही प्राणी गर्दभ रूप हो गए थे। तीनों एक-दूसरे पर दुलत्तियाँ मार रहे थे और रेंक-रेंक कर अपनी व्यथा कह रहे थे। पर उनकी व्यथा सुनने-समझने वाला कौन था? आस-पास के लोग तमाशा देखने लगे। अम्बड़ ने तीनों से कहा- क्यों, अब भी अम्बड़ को मुर्गा बनाओगे? यह कहकर उसने तीनों को पीटना शुरू किया और कमलकांचन योगी से कहा- तू इसी रूप में रहने लायक है। अब देख, तेरी पुत्री आन्धारिका का मैंने अपहरण कर लिया और ले जा रहा हूँ। तीनों ही प्राणियों ने आँसू बहाकर अम्बड़ से अपने अपराध की माफी माँगी। उनके क्रन्दन और अश्रुपात में जैसे हृदय की असीम पीड़ा प्रकट हो रही थी। दयालु अम्बड़ का हृदय पसीजा और उसने वापी का जल पिलाकर उन्हें पुन: मनुष्य बना दिया। अम्बड़ ने आन्धारिका गोरखयोगिनी को सौंप दी। अम्बड़ के इस अति साहसी कार्य से गोरखयोगिनी बहुत प्रसन्न हुई। उसने अम्बड़ से कहा-

अम्बड़! वास्तव में तू वीर और साहसी है। तेरी सूझ-बूझ भी अनोखी है। ऐसा दुसम्भव कार्य और कोई नहीं कर पाता। योगिनी को प्रणाम कर अम्बड़ अपने घर आ गया और चन्द्रावती तथा राजहँसी सहित अपनी नौ पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगा। कुछ दिन बाद वह तीसरे आदेश को प्राप्त करने के लिए गोरखयोगिनी के पास धनगिरी पर्वत पर पहुँचा।

तीसरा आदेश

शिवप्रदत्त रत्नमाला का अधिग्रहण

अपने सम्मुख उपस्थित देखकर गोरखयोगिनी ने अम्बड़ से कहा- अम्बड़! अब तुम मेरा तीसरा आदेश सुनो। सिंहलद्वीप में सोमचन्द्र नाम का राजा राज्य करता है। चन्द्रावती उसकी रानी का नाम है। सोमचन्द्र की एक मात्र पुत्री चन्द्रयशा बड़ी ही रूपवती और गुणागार है। उस राजा के भण्डार में एक रत्नमाला है। तू उस रत्नमाला को लेकर मेरे पास आ।

योगिनी का आदेश प्राप्त कर अम्बड़ सिंहलद्वीप की ओर चला। पहले दो दुष्कर आदेशों को पूर्ण करने के कारण उसका हौसला भी बढ़ गया था। कठिन काम में सफलता प्राप्त कर लेने पर सहज ही साहस चौगुना हो जाता है और अनुभव तो उसकी शक्ति को और भी प्रचण्ड बना देता है। उत्साह, पुरुषार्थ, भाग्य और चातुर्य चारों सफल साहसी अम्बड़ के अमोघ अस्त्र थे। अम्बड़ सिंहलद्वीप के मनोरम उद्यान में रुका और राजमहल में प्रविष्ट होने की युक्ति सोचने लगा। अचानक ही उसने एक दिव्य सुन्दरी युवती को देखा। युवती का होना तो कोई आश्चर्य नहीं था, पर युवती के मस्तक पर एक उद्यान लहलहा रहा था। इससे अम्बड़ विस्मय सागर में डूब गया। युवती स्वयं ही उसके पास आई। अम्बड़ ने अनुमान लगाया कि हो न हो राजा सोमचन्द्र की पुत्री चन्द्रयशा यही हो। अत: अंधेरे में तीर छोड़ते हुए उसने चन्द्रयशा नाम से पुकार कर कहा- राजकुमारी चन्द्रयशा! इस उपवन में आप अकेली कैसे घूम रही हो?

सुन्दरी ने कहा- 'तुम मुझे परदेशी मालूम पड़ते हो। मैं चन्द्रयशा नहीं हूँ, बल्कि उसकी सखी हूँ और मेरा नाम राजल देवी है। मेरे पिता का नाम वैरोचन है और वे यहाँ के प्रधानमंत्री हैं।' अम्बड़ को इस बात से कोई विशेष प्रयोजन न था कि यह युवती कौन है। उसकी मुख्य जिज्ञासा तो यही थी कि इसके मस्तक पर यह उद्यान क्यों है। अत: उसने राजलदेवी से पूछा- 'सुभगे! तेरे मस्तक पर यह उद्यान क्यों है? मैं इसका रहस्य जानना चाहता हूँ।' राजलदेवी ने अम्बड़ की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा- परदेशी! एक बार मैं अपनी सखी राजकुमारी चन्द्रयशा के साथ वनभ्रमण के लिए गई। वहाँ हमने एक विचित्र वृद्धा को देखा। हम दोनों ही उस वृद्धा को देखकर डर गई। वृद्धा हमारे निकट आई और बोली- तुम दोनों कहाँ जा रही हो? साहस बटोरकर हमने कहा- हम तो आपकी ही सेवा में आई हैं। वृद्धा हमारे उत्तर से प्रसन्न हो गई और हमसे बोली- यदि तुम मेरे साथ चलो तो मैं तुम्हें साक्षात् महादेव के दर्शन करा दूँगी। परदेशी! हमने वृद्धा की बात का विरोध करते हुए कहा- महादेव कहाँ रहते हैं? हम उनके पास कैसे पहुँच सकती हैं? हमारे प्रश्नों का उत्तर देते हुए वृद्धा ने कहा- महादेव अपनी प्रिया पार्वती के साथ कैलास पर्वत पर रहते हैं। मैं उनकी प्रतिहारी हूँ। मैं अपनी शक्ति से तुम दोनों को उनके पास पहुँचा दूंगी। हम दोनों उस वृद्धा के साथ कैलास पर्वत जाने को तैयार हो गयी और वह हमें शिवलोक ले पहुँची। शिव और शिवा के दर्शन कर हमने अपने को धन्य माना और हमने

शिव-शिवा को साष्टांग प्रणाम किया। शिव ने अपनी प्रतिहारी उक्त वृद्धा से हमारे बारे में पूछा। वृद्धा ने बताया- ये दोनों आपके दर्शनों के लिए बहुत उत्सुक थी। अत: मैं इन्हें आपके दर्शनार्थ यहाँ ले आई। शिवजी हम पर प्रसन्न हुए और उन्होंने एक रत्नमाला राजकुमारी चन्द्रयशा के गले में डाल दी और मुझे कूर्मदण्ड दिया। परदेशी! इन दोनों देवाधिष्ठित वस्तुओं का प्रभाव इस प्रकार है। रत्नमाला को धारण करने वाला यथेच्छ रूप बना सकता है और उक्त मालाधारी जहाँ भी जायेगा, सफल मनोरथ होगा। शिव प्रदत्त कूर्मदण्ड को धारण करने वाला समस्त शत्रुओं का नाश करने में सफल होता है।

इस दण्ड के प्रभाव से दुस्साध्य और असाध्य रोगों का निवारण भी सहज में ही हो जाता है। अयाचित रूप से शिवजी ने हमें दो वस्तुएं देकर कृतार्थ किया। अत: हमने शिवजी से हाथ जोड़कर निवेदन किया- हे आशुतोष! आपने अनुग्रह करके हमें दो दिव्य वस्तुएं प्रदान की। किंतु हम तो नित्य आपके दर्शन करना चाहती हैं। अत: कोई ऐसी वस्तु भी प्रदान कीजिए, जिसके सहारे हम दोनों रोज कैलास आकर आपके दर्शन कर सकें। हमारी इस माँग पर कैलासपति बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने त्रिदण्ड नामक वृक्ष की ओर संकेत करके कहा- तुम इस वृक्ष को ले आओ। यह तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करेगा। परदेशी! त्रिदण्ड नामक वृक्ष लेकर हम धरती पर आ गई और वह वृक्ष अपने आंगन में रोप दिया। हम दोनों सखियाँ प्रतिदिन उस वृक्ष पर बैठकर आकाश मार्ग से हमको नित्य कैलास आते-जाते देखकर सूर्य बहुत चकराया। एक बार जब हम शिव के दर्शन कर कैलास से आ रही थी तो हमें देखकर सूर्य को भय मिश्रित सन्देह हुआ कि कहीं ये मुझे निगलने तो नहीं आ रही है! जब हम सूर्य के निकट पहुँची तो हमें मानवी रूप में देख सूर्य का सन्देह दूर हो गया। उसने जब हमारे बारे में पूछा तो हमने भी उसे सब कुछ बता दिया। हम दोनों शिव की भक्त हैं, यह जानकर सूर्य देव को बहुत प्रसन्नता हुई और उसने हमसे वर माँगने के लिये कहा। हमने सूर्य से कहा- हमें तो बस शिव की भक्ति ही चाहिए। हमें किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। हमारी निस्पृहता और शिव-चरणों में अटल अनुराग देखकर सूर्यदेव हमसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी ओर से ही राजकुमारी चन्द्रयशा को एक तिलकाभरण दिया। तिलकाभरण के दिव्यलोक से रात में भी दिन सा आलोक बिखर जाता है। सूर्यदेव ने मुझे यह रसमय उद्यान प्रदान किया जो सदा मेरे मस्तक पर लहराता रहता है। अब हम प्रतिदिन शिव के

दर्शन करती हैं और आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करती हैं।

राजलदेव के मुँह से सब वृत्तान्त सुनकर अम्बड़ का कुतूहल शान्त हुआ और शिवप्रदत्त रत्नमाला के द्विव्य प्रभाव के बारे में भी विशेष जानकारी प्राप्त हुई। उसे रत्नमाला प्राप्त करने की धुन लगी हुई थी। अम्बड़ राजलदेवी के साथ नगर में प्रविष्ट हुआ। अम्बड़ के दिव्य रूप व तेज को देखकर राजलदेवी उसे अपना हृदय दे बैठी थी। नगर में प्रविष्ट होने के बाद अम्बड़ ने नट-कलाकार का रूप बनाया और राजमार्ग के चौराहे पर नृत्य, संगीत आदि ललित कलाओं का प्रदर्शन करने लगा। मृदंग और नगाड़ों की मधुर ध्वनि ऐसी लग रही थी, मानों आकाश में बादल गरज रहे हों। धीरे-धीरे नट ने अपने विद्याबल से अनेक गायक साथी तथा नृत्यांगनाओं की सृष्टि भी कर ली। राजलदेवी भी नर्तकियों में मिलकर नृत्य करने लगी। जन-समूह इस दृश्य को देखकर मंत्र-मुग्ध हो गया। धीरे-धीरे अम्बड़ के कला-प्रदर्शन की चर्चा पूरे नगर में फैल गई। राज परिवार भी अम्बड़ का नृत्य-संगीत-प्रदर्शन देखने आया। सिंहलद्वीप का राजा सोमचन्द्र, रानी चन्द्रावती, राजकुमारी चन्द्रयशा तथा महामंत्री वैरोचन अपलक कला प्रदर्शन देख रहे थे। अचानक ही राजकुमारी चन्द्रयशा की दृष्टि अपनी सखी मंत्रिकन्या राजल पर पड़ी। उसे सबके साथ यों नृत्य करते देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने राजलदेवी की भर्त्सना करते हुए कहा- 'राजलदेवी! तुझे क्या हो गया? अपनी कुल मर्यादा का तुझे कुछ भी भान नहीं रहा? इस प्रकार सरेआम एक नट के साथ नृत्य करना क्या तुझे शोभा देता है? जल्दी से मेरे पास आ और यहाँ बैठकर संगीत का आनन्द ले।' राजलदेवी ने मुस्कराकर जवाब दिया- सखी! यह कोई मामूली नट नहीं है, बल्कि दिव्य कलाकार है, असाधारण पुरुष है। मेरी तो तेरे लिए भी यही सलाह है कि तू भी मेरे साथ नृत्य करके इस नटवर नागर को सहयोग दे। राजलदेवी की बात सुन राजकुमारी चन्द्रयशा ने उपेक्षा से मुँह सिकोड़ लिया। महामंत्री वैरोचन को भी अपनी पुत्री राजलदेवी का यह आचरण बहुत बुरा लगा। महामंत्री वैरोचन ने राजा सोमचन्द्र से कहा- राजन्! यह नट बहुत ही धूर्त व मायावी मालूम पड़ता है। इसने राजलदेवी को विद्याबल से फुसला लिया है। राजा संगीत-नृत्य में इतना डूबा हुआ था कि उसने मंत्री की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। जब प्रदर्शन समाप्त हुआ तो राजा ने प्रसन्न होकर अम्बड़ को रत्नाभूषण पुरुस्कार में देने चाहे, पर अम्बड़ ने अस्वीकार कर अपनी निस्पृहता का परिचय दिया। कार्यक्रम की

समाप्ति पर सबको ऐसा लगा, मानों सभी मधुर स्वप्न देखकर उठे हों। संसार का हर आकर्षण एक स्वप्न से अधिक कुछ भी नहीं है। सब अपने-अपने घर चले गए। राजलदेवी भी जब अपने माता-पिता के पास पहुँची तो उन्होंने उसे फटकारा- 'सिंहलद्वीप के महामंत्री की बेटी होकर एक बाजारू धूर्त नट के साथ नृत्य करते हुए तुझे शर्म भी नहीं आई? आज से तू...' पिताजी की बात को बीच में ही काटते हुए राजलदेवी ने कहा- पिताजी! वह धूर्त नहीं है। मैं तो उसको सब तरह से अपना बना चुकी हूँ। राजलदेवी की इस धृष्टता पर उसके माता-पिता बहुत खीझे। उसके पिता ने कहा- मैं भी देखूँगा तू कैसे उसके साथ जायेगी। राजलदेवी ने इस समय चुप रहना ही ठीक समझा। उसने सोचा जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा, फिर वाद-विवाद करने से क्या लाभ?

शाम को राजकुमारी चन्द्रयशा और राजलदेवी मिली। यद्यपि चन्द्रयशा ने अम्बड़ के साथ नृत्य करते देखकर राजलदेवी की भर्त्सना की थी, किंतु अम्बड़ की कला से राजकुमारी भी प्रभावित थी। उसके मन में भी प्रेमांकुर जगा था। अत: उसने राजलदेवी से कहा- सखी! यह पुरुष देखने में बहुत सधा हुआ कलाकार लगता है। उसके बारे में तुझे कुछ विशेष जानकारी हो तो मुझे बता। राजलदेवी ने वीर अम्बड़ के बारे में सब कुछ बता दिया। उसके बारे में सबकुछ जानकर राजकुमारी भी उसे अपना हृदय दे बैठी। उसने राजलदेवी से कहा- प्यारी सखी! तेरे हृदयदेव के साथ मैं भी अपना ब्याह करना चाहती हूँ। किसी तरह आज तू उन्हें रात को मेरे महलों में भेज दे। राजलदेवी ने मजाक में कहा- तो अब सखी का रूप छोड़कर तुम मेरी सौत बनना चाहती हो? चन्द्रयशा ने राजल की उंगली मरोड़ते हुए कहा- पगली! विवाह के बाद भी मैं तेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती। हम दोनों सौत की ईर्ष्या में क्यों जलें, बल्कि अपने सखी रूप का ही विस्तार करेंगी। दोनों ने इस तरह कुछ ठिठोली की। राजलदेवी ने रात को राजकुमारी के महलों में अम्बड़ को भेजना स्वीकार किया। फिर राजल ने अम्बड़ को भी सारी बातें बतायी। उसके विशेष आग्रह पर अम्बड़ रात्रि के दूसरे प्रहर में राजकुमारी के शयन कक्ष में पहुँच गया।

राजकुमारी चन्द्रयशा बड़ी उत्कटता से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने अम्बड़ का स्वागत किया। दोनों ने एक ही शय्या पर बैठकर बहुत देर तक बातें की। राजकुमारी के महलों से चलते समय अम्बड़ ने उसे एक पान का बीड़ा दिया। अम्बड़ ने हस्तलाघव से उस पान में रूप-परावर्तनकारी फल का चूर्ण भी

मिला दिया। मुँह में पान दबाकर राजकुमारी मीठी-मीठी यादों में सो गई। जब पान का रस उसके कण्ठ में पहुँचा तो वह मानवी से गर्दभी बन गई। प्रात:काल जब दासियाँ राजकुमारी के महलों में आयी तो राजकुमारी की जगह एक गर्दभी को देखकर दंग रह गयी। राजा सोमचन्द्र के कानों तक भी बात पहुँची। रनिवास में कुहराम मच गया। राजा अपनी पुत्री को गर्दभी के रूप में देखकर बहुत ही व्याकुल हुआ। उसने अनेक मन्त्रविदों और उपचारकों को बुलाया, पर कोई भी उसे पुन: मानवी नहीं बना सका। राज-परिवार के इस आकस्मिक और असह्य दु:ख से सिंहलद्वीप के नर-नारी भी बहुत दु:खी हुए।

जब सभी प्रयास और उपाय निष्फल हुए तो राजा सोमचन्द्र ने घोषणा कराई कि जो भी व्यक्ति मेरी पुत्री को गर्दभी से मानवी बनायेगा मैं उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करूँगा और साथ ही दहेज में आधा राज्य भी दे दूँगा। वीर अम्बड़ इसी अवसर की प्रतीक्षा में था। उसने तत्काल एक योगी का रूप बनाया और राजा के समक्ष उपस्थित होकर कहा- 'आपकी घोषणा को मैं स्वीकार करता हूँ।' राजा के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। अम्बड़ गगनगामिनी विद्या के प्रभाव से अपने कमण्डल में उक्त वापी का जल ले आया था। उसने झूठ-मूठ को देवाराधना किया और वापी का जल गर्दभी रूपी राजकुमारी को पिलाया। जल पीने के पश्चात् वह अपने निजी रूप में आ गई। योगी वेश अम्बड़ के चमत्कार को देखकर सभी लोग आश्चर्यमिश्रित हर्षित हुए। अपनी घोषणा के अनुसार राजा सोमचन्द्र ने राजकुमारी चन्द्रयशा का विवाह अम्बड़ के साथ किया। चन्द्रयशा ने शिवप्रदत्त रत्नमाला भी अम्बड़ को भेंट की। अम्बड़ के इस रहस्योद्घाटन से महामात्य वैरोचन भी बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी पुत्री राजलदेवी का विवाह भी अम्बड़ के साथ कर दिया। दोनों पत्नियों को और साथ ही शिवप्रदत्त रत्नमाला को लेकर अम्बड़ अपने नगर रथनूपुर आया। कुछ दिन अपनी नई-पुरानी पत्नियों के साथ आमोद-प्रमोद में गुजारे और फिर रत्नमाला लेकर अम्बड़ गोरखयोगिनी के समकक्ष पहुँचा। रत्नमाला प्राप्त कर गोरखयोगिनी ने उसके साहस, शौर्य और बुद्धिमत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अब अम्बड़ ने चौथे आदेश के बारे में निवेदन किया- मातेश्वरी! अब मुझे चौथे आदेश को पूर्ण करने की भी आज्ञा दें। योगिनी ने कहा- वत्स! ऐसी भी क्या जल्दी है? अभी कुछ दिन विश्राम कर। अम्बड़ ने कहा- मातेश्वरी! जब सिर पर उत्तरदायित्व का बोझ हो तो कुछ भी नहीं सुहाता। मुझे तो जो आनन्द

आपके आदेशों का पालन करने में आता है, वह निठल्ले रहकर आमोद-प्रमोद करने में नहीं आता।

सचमुच तू कर्मवीर है। योगिनी ने कहा- वत्स अम्बड़! सभी शक्तियाँ काम में लगा देने से अनिर्वचनीय सुख की प्राप्ति होती है। काम करने वाले के दिन यों ही कट जाते हैं। निठल्ला व्यक्ति कितना ही सुखी हो, उसे जीवन बोझ लगता है। अब मैं तुझे चौथा काम भी बताऊँगी।

चौथा आदेश

लक्ष्मी और बंदरिया की प्राप्ति

गोरखयोगिनी ने कहा-

'अम्बड़! नवलक्षपुर नामक नगर में राजा मलयचन्द्र राज्य करता है। उसकी पुत्री वीरमती अतीव सुन्दरी है। उसी नवलक्षपुर में एक बहुत बड़ा बोहित्थ अर्थात् समुद्री व्यापारी रहता है। उसके रूपिणी नाम की परम रूपवती कन्या है। रूपिणी का महल चारों ओर जल की खाई से रक्षित है तथा ताँबे का परकोटा महल के चारों तरफ बना हुआ है। रूपिणी अपने नाम को सार्थक करने वाली साक्षात् देवकन्या जैसी है। पाँच हजार सुभट उसके पहरेदार है। रूपिणी के पास एक लक्ष्मी और एक बंदरिया है। दोनों चीजें दिव्य और देवाधिष्ठित हैं। तू रूपिणी से लक्ष्मी और बंदरिया को लेकर आ।'

काम बहुत कठिन था। लेकिन कठिन और दुष्कर कार्यों से ही तो भाग्य अथवा कर्म की कसौटी होती है। जीत निश्चित होने पर तो कायर भी पराक्रम दिखा सकता है, पर हार की सम्भावना होने पर भी जो मैदान में उतरते हैं वे ही सच्चे वीर हैं। योगिनी के पास से चलकर अम्बड़ मार्ग में सुगन्ध वन नामक सदाबहार उद्यान में रुका। इस उद्यान में हमेशा वसन्त ऋतु रहती थी। वन की अनुपम सुषमा देखते-देखते ही अम्बड़ की थकान मिट गई। वह एक वकुल वृक्ष के नीचे बैठा नवश्री को देख रहा था कि उसने एक नवयौवना सुन्दरी को वन में घूमते देखा। उसके रूप को देखकर अम्बड़ मुग्ध हो गया। अम्बड़ उठकर बाला के पीछे-पीछे चल दिया। मेरे पीछे कौन आ रहा है, इसका कोई ध्यान किये बिना वह षोडशी चलती गई और एक सरोवर में पैठकर अदृश्य हो गई। अम्बड़ लुटा-पिटा सा उसे देखता रह गया। हाय! मैं तो इससे दो बातें भी नहीं कर पाया और

न उसका नाम-धाम पूछा। अब यह मुझे कहाँ मिलेगी? निराश होकर अम्बड़ लौट आया और उसी वकुल वृक्ष के नीचे बैठकर उक्त बाला का चिंतन करने लगा। भाग्यशाली की कामनाएं कभी भी अपूर्ण नहीं रहती। समय पाकर वे अवश्य पूर्ण होती हैं। समय से पूर्व तो निराशा होती ही है। समय से पहले कोई भी बीजांकुर लहलहाता वृक्ष नहीं बनता। अम्बड़ अपने चिंतन में डूबा हुआ था कि उद्यानरक्षक एक बटुक ने अम्बड़ को प्रणाम कर उसका ध्यान भंग किया और एक फल भेंट करते हुए अम्बड़ से कहा- महाभाग! तुम मेरे साथ चलो। तुम्हें अमरावती ने सादर आमंत्रित किया है। अम्बड़ चौंका। उसने पूछा- कौन अमरावती? मैं तो उसे नहीं जानता। बटुक ने कहा- जिसने आपको विरहाकुल बनाया है और जो अपनी झाँकी देकर सरोवर के मार्ग से अदृश्य हुई थी, वही अमरावती है। निश्चय ही आप उसका पूर्ण परिचय जानना चाहते होंगे। मैं उसका पूरा परिचय आपको बताता हूँ। अम्बड़ भी सँभल कर बैठ गया। बटुक भी उसके सामने जम गया और अमरावती के बारे में बताने लगा-

अग्निकुण्डपुर नामक नगर में देवादित्य नाम का राजा राज्य करता था। राजा देवादित्य बहुदार भोगी था। उसके अनेक रानियां थी। उसकी पटरानी का नाम था लीलावती। राजा देवादित्य के परम रूपवान् कई राजकुमार भी थे। एक बार एक रानी ने राजा को भोजन के लिए आमंत्रित किया। रानी ने राजा को प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजन के बाद राजा विश्राम करने लगा कि उस रानी ने जादू से राजा देवादित्य को तोता बना दिया। राजा के इस रूप परिवर्तन का समाचार समस्त अग्निकुण्डपुर नगर में फैल गया। सभी को बहुत शोक हुआ और सबने रानी की निन्दा की। लेकिन अब किसी की निंदा करने व शोक करने से क्या काम चलता? अब तो किसी न किसी तरह राजा को शुकरूप से मानव रूप में लाने की समस्या थी। देवादित्य के पुत्रों ने मिलकर उक्त रानी को निर्वासित कर दिया और वह तोता पट्टमहिषी लीलावती को सौंप दिया। राजमहिषी लीलावती प्राणपण से तोते की सेवा करने लगी। काया बदलने पर भी आखिर तो वह शुक लीलावती का स्वामी था।

अपने तिर्यंच जीवन से दु:खी होकर एक दिन तोते ने पटरानी लीलावती से कहा- प्रिये! मेरा यह जीवन किस काम का है? मैं तो अब अग्नि में जलकर मरना चाहता हूँ। राजा देवादित्य के इस निश्चय को सुनकर पटरानी, राजकुमार तथा महामंत्री आदि बड़े दु:खी हुए। शुक रूप में राजा जलने जा रहा

था और चारों ओर कुहराम मचा हुआ था, तभी आकाश मार्ग से महामुनि कुलचन्द्र ने यह दृश्य देखा तो नीचे आये और उन्होंने अपने तपोबल से शुक को मानवरूप में परिवर्तित कर दिया। राजा देवादित्य अपने असली रूप में आ गया। उसने भक्तिभाव पूर्वक मुनि कुलचन्द्र की वन्दना की। मुनि ने उपस्थित जन समूह को धर्मोपदेश दिया। राजा देवादित्य का हृदय पहले से ही वैराग्यपूरित था। मुनि के उपदेश से उसकी वैराग्य भावना और प्रबल हो गई। अत: उसने दीक्षा लेने का शुभ संकल्प किया। पटरानी लीलावती ने भी पति का अनुगमन किया और राजा-रानी दोनों ने मुनि कुलचन्द्र के समक्ष तापसी दीक्षा अंगीकार कर ली।

राजर्षि देवादित्य और राजसाध्वी लीलावती वन में रहकर तपश्चर्या करने लगे। कुछ ही दिनों बाद रानी का गर्भ दीखने लगा। मुनि देवादित्य ने आश्चर्य और शोक व्यक्त करते हुए साध्वी लीलावती से कहा- देवी! यह कैसा प्रपंच है? तपोवन में तूने यह कुकृत्य क्योंकर किया? साध्वी निर्दोष थी। फिर भी वह लज्जित हुई। उसने विनम्र वाणी में निवेदन किया- महामुने! यह गर्भ तो गृहवास के समय का है। दीक्षा लेने में कोई व्यवधान न पड़े, इसलिये मैंने इस रहस्य को गुप्त रखा था। अब तो उस गर्भस्थ शिशु को बाहर आना ही था। यथासमय साध्वी लीलावती ने एक कन्या रत्न को जन्म दिया। राजर्षि देवादित्य ने अनासक्त भाव से उस कन्या का पालन किया, क्योंकि कन्या को जन्म देते समय ही साध्वी लीलावती परलोक सिधार गई थी। वन के फलों का रस और वन गायों का दूध पिलाकर मुनि देवादित्य ने उस कन्या को बड़ा किया।

प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए सुगन्धवन के रक्षक वनपाल बटुक ने पैर सिकोड़ते हुए अम्बड़ से आगे कहा- हे महाभाग! राजर्षि देवादित्य और साध्वी लीलावती की उक्त कन्या का नाम ही अमरावती है। यौवन का आगमन होने पर अमरावती का सौन्दर्य इन्द्राणी को भी लज्जित करने लगा। एक दिन वह अकेली ही वन में बैठी थी। आकाश मार्ग से धनद नामक विद्याधर जा रहा था। धनद अमरावती के रूप लावण्य पर मुग्ध हो गया और उसे अपनी पत्नी बनाने के विचार से नीचे आया। उसने अमरावती से विवाह की प्रार्थना की और तीन रत्न उसको भेंट किये। तीनों ही रत्न चमत्कारी हैं। एक रत्न के प्रभाव से जल का उपद्रव समाप्त हो जाता है, दूसरे के प्रभाव से अग्नि का उपद्रव और तीसरे के प्रभाव से भूत-प्रेत आदि की व्याधि का शमन हो जाता है। तीनों रत्न प्राप्त करके

अमरावती ने आभार प्रदर्शित किया और धनद से कहा- आज से आप मेरे भाई हैं। भाई-बहिन के प्रेम के सामने सभी स्नेह फीके हैं। अमरावती की चतुराई काम कर गई। धनद के मन में भी अमरावती के प्रति बहिन का प्यार जाग्रत हुआ। तदनन्तर अमरावती ने धनद से कहा- भाई! अब आप मुझे एक ऐसी चीज भी दीजिए, जिससे कोई पराभव न कर सके। बहन अमरावती की प्रार्थना स्वीकार करने के अनन्तर विद्याधर धनद ने एक सरोवर का निर्माण किया और उसी सरोवर के मध्य एक रत्नमय आवास बनाया। राजर्षि देवादित्य भी वहाँ आ गए। उन्होंने धनद से अमरावती के वर के बारे में पूछा। अवधिज्ञान का प्रयोग करके धनद ने बताया- हे महामुने! इसका पति महापराक्रमी और सर्वांग सुन्दर अम्बड़ होगा। जो अनेक विद्याओं का धनी होगा। उसका वैभव इन्द्र के वैभव को भी पराजित करने वाला होगा।

धनद के इस कथन के उपरान्त अमरावती के तपस्वी पिता ने पूछा- हम कैसे जान पायेंगे कि यह वीर अम्बड़ है?

धनद ने बताया- आज से सातवें दिन वकुल वृक्ष के नीचे बैठा हुआ अम्बड़ अमरावती को दिखाई देगा।

आज सातवाँ दिन था। अम्बड़ ने अपने भाग्य की सराहना की और वनपाल बटुक के साथ अमरावती के आवास की ओर चल दिया। अमरावती अम्बड़ की प्रतीक्षा कर ही रही थी। बटुक के साथ पहुँचने पर उसने अम्बड़ का विशेष स्वागत-सत्कार किया। काफी देर बातचीत करने के बाद अम्बड़ ने राजर्षि देवादित्य से मिलने की इच्छा प्रकट की। अमरावती ने बटुक से कहा- इन्हें पिताजी के पास ले जाओ। बटुक राजर्षि के पास चला। पीछे-पीछे अम्बड़ भी चल दिया। अम्बड़ बटुक के पीछे अपनी धुन में चला जा रहा था। दोनों एक नदी के किनारे चल रहे थे। कुछ ही दूर चलने के बाद नदी से एक विशाल मछली निकली और अम्बड़ को निगल गई। अम्बड़ को उदरस्थ करने के बाद मछली पानी में सरक रही थी कि उस मछली को एक बगुला उठा ले गया। मछली को लेकर बगुला आकाश में उड़ा कि मछली सहित उस बगुले को एक गिद्ध ने धर दबोचा और दोनों को लेकर गायब हो गया। बटुक ने पीछे मुड़कर देखा तो अम्बड़ गायब था। बटुक ने चारों ओर अम्बड़ को खोजा, किंतु कहीं भी उसका पता न चला। बटुक ने राजर्षि देवादित्य और अमरावती को सारी वस्तुस्थिति बताई तो अमरावती तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। राजर्षि देवादित्य शीतलोपचार

से उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। मछली सहित बगुले को लेकर गिद्ध एक पेड़ पर बैठा।

उसी मार्ग से एक व्याध जा रहा था। उसने उक्त गिद्ध को देखा तो तीर का निशाना बना दिया। पंख फड़फड़ाता हुआ गिद्ध नीचे गिरा। बगुला उसके चंगुल से मुक्त होकर आकाश में उड़ गया और बगुले की चोंच से छूटकर मछली धरती पर गिरी। उस मछली को लेकर व्याध अपने घर आया। व्याध ने मछली को चीरा तो उसमें एक पुरुष निकला। मछली के पेट में काफी देर रहने के कारण अम्बड़ पीला पड़ गया था, पर अभी जीवित था। काफी देर मछली के पेट में रहने के बावजूद अम्बड़ मछली की जठराग्नि से मरा नहीं, इसमें किञ्चित भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। जिनका आयुष्य बल प्रबल होता है वे अग्नि में भी नहीं जलते, समुद्र में भी नहीं डूबते और मौत के मुँह में से भी जीवित निकल आते हैं। अम्बड़ को देखकर व्याध बहुत चकित हुआ। मछली के पेट से निकलने के बाद प्राणवायु के स्पर्श से अम्बड़ को होश आया। अम्बड़ ने व्याध को अपना परिचय दिया। शिकारी ने अम्बड़ को सम्मान के साथ अपने यहाँ रखा। यह व्याध उसी नवलक्षपुर का था, जहाँ समुद्र व्यापारी की रूपवती पुत्री रूपणि रहती थी। इसी रूपणि के यहाँ से अम्बड़ को लक्ष्मी और बंदरिया प्राप्त करनी थी। जब अम्बड़ को यह पता चला कि मैं नवलक्षपुर के व्याध के यहाँ रह रहा हूँ तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। छिपकर अपना कार्य साधने में यहाँ से अच्छी जगह और कहाँ मिलेगी, यह सोचकर अम्बड़ उक्त व्याध के यहाँ रहने लगा। कार्यसिद्धि तक उसने अमरावती को भूल जाना ही उचित समझा।

एक दिन अम्बड़ को नींद नहीं आ रही थी। आधी रात का समय था। अम्बड़ के पास अनेक प्रकार की विद्याएं थी, अत: रात में ही उसने गुप्त रूप से नगर-दर्शन का विचार किया। व्याध की पुत्री गोमती भी उसी समय उठी और घर से बाहर निकली। अम्बड़ भी दबे पाँव उसके पीछे हो लिया। व्याध कन्या पूर्व निश्चित स्थान पर मार्ग में ही रुकी एवं उसने क्षात्रिय पुत्री नागिनी, वणिक पुत्री सोही और विप्र पुत्री रामती को बुलाया तथा चारों सखियाँ आगे चलने लगी। बीच में ही रुककर व्याध कन्या ने नागी, सोही और रामती से कहा- अब हमें बोहित्थ (समुद्री व्यापारी) पुत्री रूपिणी के घर जाना है। इसके बाद चारों सखियाँ बकरियाँ बन गई। अम्बड़ भी विद्याबल से बकरा बनकर उन बकरियों में मिल गया। आधी रात के समय अपने बीच एक अजनबी बकरे को देखकर

चारों बहुत डरी। अत: आगे न जाकर बीच में से ही अपने-अपने घरों को लौट आई। सवेरे चारों इकट्ठी हुई और रात वाले बकरे के विषय में बातें करने लगी। व्याध कन्या ने तीनों सखियों से कहा- जब तक इस बकरे के रहस्य को न जान लिया जाय, तब तक हम निरापद नहीं हैं। विप्रकन्या रामती ने सुझाव दिया- हम रोज इसी तरह जायेंगी। देखें वह बकरा कब तक हमारे साथ जायेगा। एक न एक दिन उसका रहस्य भी अवश्य प्राप्त हो जायेगा। हमें किसी भी दशा में अपना साहस नहीं खोना चाहिए। यथासमय चारों सखियाँ बकरियाँ बनकर रूपिणी के घर की ओर जाने लगी। अम्बड़ भी बकरा बनकर उनमें मिल गया। अबकी बार चारों ने साहस से काम लिया, वे सब निर्भय होकर आगे बढ़ने लगी। साथ लगे बकरे की उन्होंने कोई परवाह नहीं की। अम्बड़ ने अपनी विद्या से चारों को स्तम्भित कर दिया। वे सब वहीं स्थिर हो गई। तिलभर हिलना भी उनके लिए मुश्किल हो गया। न आगे चल सकी और न पीछे लौट सकी। हिम्मत करके चारों ने सामने खड़े बकरा रूपी अम्बड़ से पूछा- आप कौन हैं? और आपने हमें क्यों स्तम्भित किया है? आप हमसे क्या चाहते हैं? जो भी रहस्य हो स्पष्ट बताइए। अजरूपी अम्बड़ ने कहा- यदि तुम मेरा एक काम कर सको तो मैं तुम्हें सहर्ष छोड़ दूँगा। चारों ने एक साथ कहा- आप अपना काम बताइए। अगर हमारी सामर्थ्य हुई तो हम अवश्य ही आपका काम करेंगी। अजरूपी अम्बड़ ने अजारूपी चारों सखियों को बताया- इसी नवलक्षपुर में बोहित्य की रूपिणी नाम की एक कन्या है, मैं उससे मिलना चाहता हूँ। किसी तरह मुझे उसके पास पहुँचा दो। वे चारों तो रूपिणी के घर जा ही रही थी। अत: उन्होंने अम्बड़ के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। उसने उन्हें स्तम्भन मुक्त किया। चारों अम्बड़ को लेकर रूपिणी के घर आई। रूपिणी का रत्ननिर्मित आवास जल की खाई से वेष्टित था और चारों ओर ताम्र प्राकार बना था। उसके भवन पर सैकड़ों ध्वजाएं फहरा रही थी। रत्नदीपों से उसका महल आलोकित था। रूपिणी एक स्वर्णकक्ष में लक्ष्मी के पास बैठी थी और बंदरिया से क्रीड़ा कर रही थी। चारों सखी और पाँचवां अम्बड़ पाँचों ही प्राणी बोहित्यकन्या रूपिणी के पास पहुँचे। रूपिणी ने पाँचों की सामूहिक आवभगत की और कुछ क्रुद्ध होकर चारों सखियों से बोली- यह नया अज तुम कहाँ से ले आई? इस तरह बिना मेरी पूर्व अनुमति के किसी नये जीव को तुम्हें नहीं लाना चाहिए था। व्याध पुत्री ने रुपिणी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा- निश्चित ही यह अज नया है, किंतु यह हमारे द्वारा

यहाँ लाया गया है, यह सर्वथा सत्य नहीं है। यह तो तुम्हारे बारे में पहले से ही सब कुछ जानता है। यह अद्भुत शक्तिशाली व विद्याधनी है। तुम्हारे पास तक इसे लाने के लिए हम विवश थी। अब तुम जो भी इसके बारे में जानना चाहो, सीधे इसी से पूछो। पहले तो रूपिणी अज से बातें करने में घबराई, फिर साहस बटोर कर उसने अज से प्रश्न किया- तुम जो भी हो, अपने असली रूप में आओ और अपने बारे में पूरी जानकारी दो। रूपिणी के कहते ही अम्बड़ अपने रूप में आ गया। उसके दिव्य रूप को देखकर रूपिणी की आँखें चौंधिया गई और वह उस पर मुग्ध हो गई। अब अम्बड़ ने उसे अपना परिचय दिया और नाम-धाम बताने के बाद कहा-

गोरखयोगिनी के प्रताप से मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। सारा संसार मेरी मुट्ठी में है। मैं जिसको जैसे नचाना चाहूं, उसको वैसे ही नाचना पड़ता है। रूपिणी अम्बड़ से इतनी प्रभावित हुई कि अपने को समर्पित करते हुए कहा- स्वामिन्! मैं भी आपके अधीन हूँ। आप जैसा चाहोगे, मैं वैसा ही करूँगी। अम्बड़ ने रूपिणी से कहा- तो तुम मुझे लक्ष्मी और बंदरिया प्रदान करो। अम्बड़ की इस माँग पर रूपिणी ने मुस्कराकर कहा- स्वामी! जब मैं ही आपकी हो चुकी तो फिर मेरी सब वस्तुएं स्वाभाविक रूप से आपकी ही है।

अम्बड़ को तसल्ली हुई। जब उसने रूपिणी से बंदरिया का रहस्य पूछा तो रूपिणी ने बताना शुरू किया- एक बार मैंने देवराज इन्द्र की आराधना की। उसी से प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे यह बंदरिया दी है। इस बंदरिया में यह गुण है कि यह जिसके पास रहेगी, उसका सुख-सौभाग्य बढ़ेगा और कोई भी व्यक्ति उसका पराभव नहीं कर सकेगा। बंदरिया की ये विशेषताएं बताते हुए इन्द्र ने मुझसे कहा- रूपिणी! जिस दिन तेरा इस बंदरिया से विछोह होगा, उसी दिन तेरी मृत्यु हो जायेगी। स्वामी! इसलिए मेरा और इस बंदरिया का अटूट साथ है। न तो यह मुझे छोड़कर कहीं जा सकती और न ही मैं इसे छोड़कर कहीं जाना चाहती। इसके अलावा यह बंदरिया मुझे नित्य नये-नये रत्न प्रदान करती है। ये रत्न लाखों के मूल्य के होते हैं। अत: आप पहले मेरे साथ विवाह कीजिए और मुझे और बंदरिया को साथ-साथ अपने साथ ले चलिए। अम्बड़ ने रूपिणी से कहा- अगर ऐसी ही बात है तो अपने माता-पिता से कहो कि वे शीघ्र ही विवाह की तैयारी करें। रूपिणी ने बताया- मेरे माता-पिता इतनी जल्दी कभी भी राजी नहीं होंगे। उन्हें सहमत करने के लिये पहले अज विद्या प्राप्त करें और नवलक्षपुर

के राजा मलयचन्द्र की पुत्री वीरमति के साथ विवाह करें। उसके बाद मेरे पिता आपके साथ मेरा विवाह करने के लिए सहर्ष सहमत हो जायेंगे।

अज विद्या प्राप्त कर अम्बड़ नगर में प्रविष्ट हुआ। राजा मलयचन्द्र घोड़े पर सवार होकर घूमने जा रहा था। अम्बड़ ने अपने विद्या प्रभाव से राजा मलयचन्द्र को बकरा बना दिया। बकरे के रूप में राजा मलयचन्द्र को देखकर सभासद तथा नगरवासी बड़े दु:खी हुए। राजपुरोहित और महामंत्री ने मिलकर राजा को मानवरूप देने के अनेक उपाय किये, पर सफलता नहीं मिली। आगे न जाने क्या हो जाय, इस भावी अनिष्ट की सम्भावना से प्रधानमंत्री ने नगर द्वार बन्द करवा दिये। कौतुकी अम्बड़ ने बहुरूपिणी विद्या के प्रभाव से चतुरंगिणी सेना की सृष्टि की और कुछ सुभटों को सिखा-पढ़ाकर नगर द्वार पर भेजा। द्वार तो बन्द थे ही, अत: अम्बड़ के सुभटों ने द्वारपालों से कहा- आप लोगों को मालूम नहीं है कि रथनुपूर के राजा नगर अवलोकन के लिए आए हैं। आप अपने महामात्य से कहकर द्वारा खुलवाइए। रथनूपुर के राजा का आगमन सुन महामंत्री ने द्वार खोलने की अनुमति दे दी। द्वारपालों ने द्वार खोल दिए। सैन्यदल सहित अम्बड़ ने नगर में प्रवेश किया। महामात्य ने रथनूपुर नरेश अम्बड़ का स्वागत किया। लेकिन नगर में चारों ओर शोक छाया हुआ था। इसका कारण यद्यपि अम्बड़ जानता था, फिर भी उसने अनजान बनकर पूछा- यह नगर वीरान-सा क्यों लग रहा है? यहाँ सबके चेहरे उतरे हुए हैं। ऐसी क्या बात हो गई?

महामात्य ने बताया- राजन्! किसी अज्ञात कारण से हमारे राजा मलयचन्द्र बकरा बन गए हैं। इसीलिये हम सब दु:खी हैं। अम्बड़ ने धीरज बंधाते हुए कहा- मंत्रीवर! इसके लिए आप दु:खी न हों। मेरे पास वह दिव्य शक्ति है कि मैं उन्हें निमिष मात्र में मानव बना सकता हूँ। प्रधानमंत्री बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अनुनय भरे स्वर में कहा- तो फिर विलम्ब क्यों? शुभस्य शीघ्रम। अम्बड़ अज ने विद्या का स्मरण किया और निमिष मात्र में ही मलयचन्द्र बकरे से मानव रूप में प्रकट हो गया। राजा मलयचन्द्र को जब सारी घटना का पता लगा तो उसने अम्बड़ को आधा राज्य दिया और अपनी पुत्री वीरमती का धूमधाम के साथ विवाह भी कर दिया। इसके बाद बोहित्थ ने अपनी पुत्री रूपिणी का विवाह भी अम्बड़ के साथ कर दिया। रूपिणी के साथ ही उसे लक्ष्मी और बंदरिया की भी प्राप्ति हो गई। इसके बाद व्याध पुत्री गोमती तथा क्षत्रिय पुत्री नागिनी, वैश्य कन्या सोही और विप्र कन्या रामती ने भी अम्बड़ के साथ विवाह किया। छहों पत्नियों

और धन-वैभव को प्राप्त कर अम्बड़ सुगन्धवन आया और अमरावती के पास पहुँचा। उसे देखकर अमरावती की जान में जान आई। राजर्षि देवादित्य भी बहुत प्रसन्न हुए। अम्बड़ ने मछली द्वारा निगलने से लेकर अब तक की घटना सुनाई। राजर्षि देवादित्य ने अमरावती का हाथ अम्बड़ के हाथ में दिया और विवाह भार से मुक्त हो वे और भी कठिनतर तप करने लग गए। सातों पत्नियों, अमरावती के तीनों दिव्य रत्न और बंदरिया लेकर अम्बड़ आकाश मार्ग से अपने नगर रथनूपुर आया। कुछ दिन नगर में रहने के बाद अम्बड़ धनगिरी पहुँचा और चौथे आदेश की पूर्ति स्वरूप लक्ष्मी तथा बंदरिया गोरखयोगिनी को सौंपी।

चारों आदेशों को पूरा करने के कारण योगिनी बहुत प्रसन्न हुई। अब उसे आशा बंधी कि शेष तीनों आदेशों का पालन भी यह अवश्य कर पायेगा। अब अम्बड़ ने योगिनी से प्रार्थना की- मातेश्वरी! अब आप पाँचवां आदेश भी बता दें। लगे हाथ उसको भी पूरा कर डालूं। अम्बड़ का ऐसा उत्साह देख गोरखयोगिनी ने पाँचवां आदेश भी बताया।

पाँचवां आदेश

रविचन्द्र दीपक

गोरखयोगिनी ने अम्बड़ से कहा-

वीर अम्बड़! सौराष्ट्र में देवपत्तन नामक नगर है। वहाँ देवचन्द्र नामक राजा राज्य करता है। उसके प्रधानमंत्री का नाम वैरोचन है। महामात्य वैरोचन के घर एक विशेष दीपक है। उस दीपक का नाम 'रविचन्द्र दीपक' है। तू उस दीपक को लाकर मुझे दे। धुन का धनी अम्बड़ योगिनी को नमस्कार कर शीघ्र ही वहाँ से चला। मार्ग में उसे एक ब्राह्मण मिला। क्षत्रिय अम्बड़ ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। ब्राह्मण ने भी उसे आशीर्वाद दिया। दोनों निर्जन स्थान में थे, वहाँ और कोई न था, अत: पथ का साथी समझ दोनों एक जगह बैठकर बातें करने लगे। अम्बड़ ने ब्राह्मण से पूछा- हे भूदेव! आप इधर कहाँ से आये हैं और कहाँ जा रहे हैं? एकाकी पथिक को कोई साथी मिल जाता है तो मार्ग सरल हो जाता है। ब्राह्मण ने बताया- हे भद्र! मैं देवपत्तन नगर से आ रहा हूँ और अब सिंहपुर नामक नगर को जा रहा हूँ।

यह सिंहपुर कहाँ है? अम्बड़ ने पूछा।

ब्राह्मण ने बताया- मैं तो स्वयं ही आपको सारी बातें बताने जा रहा

हूँ। उत्तर दिशा में महादुर्ग नामक पर्वत है। उसके पास ही सिंहपुर नामक नगर है। सिंहपुर में सागरचन्द्र नाम का राजा राज्य करता है। उसके पुत्र का नाम समरसिंह और पुत्री का नाम रोहिणी है। राजा सागरचन्द्र पर-काया-प्रवेश नामक विद्या जानता है। अपनी वृद्धावस्था को देख राजा ने राजसिंहासन राजकुमार समरसिंह को सौंपा और तापस वेश धारण कर वन में जाने को उद्धत हुआ। वन जाते समय तापसवेशी राजा ने अपनी पुत्री रोहिणी को एकान्त में बुलाकर कहा- पुत्री! मैं तुझे पर-काया-प्रवेशिनी विद्या सिखाता हूँ। लेकिन सावधान रहना। यह विद्या हर किसी को मत बताना। अपने भाई के अलावा तू किसी भी पुरुष के दर्शन मत करना। जिसे तू यह विद्या देगी, उसी के साथ तेरा विवाह होगा। यह इस विद्या की अनिवार्यता शर्त है। पूरी तरह से सावधान कर राजर्षि ने रोहिणी को पर-काया-प्रवेशिनी विद्या बताई और तप करने वन को चला गया। तप की साधना करने के अनन्तर राजर्षि सागरचन्द्र देहमुक्त हो गया।

ब्राह्मण ने अम्बड़ से आगे कहा- अब समरसिंह सिंहपुर की प्रजा का पालन करता है और राजकुमारी रोहिणी महलों में एकान्तवास करती है। मन बहलाने के लिये वह कभी पर्वतों पर चली जाती है, कभी गुफाओं में निवास करती है और घूम-फिर कर महलों में आ जाती है। राजा समरसिंह अपनी बहन रोहिणी का बहुत ख्याल रखता है। वह उसे किसी बात की तकलीफ नहीं होने देता है। अम्बड़ ने ब्राह्मण से पूछा- लेकिन विप्रवर! आप वहाँ क्यों जा रहे हैं, यह भी तो बताइये। कुछ खीझकर ब्राह्मण ने कहा- वहाँ जाने का उद्देश्य मैं बताने ही जा रहा था कि आपने बीच में ही प्रश्न कर दिया। सचमुच वे लोग बड़े निर्धन हैं, जिनके पास धैर्य नहीं होता। धैर्य तो मुफ्त की चीज है। धैर्य के लिये किसी को निर्धन नहीं होना चाहिए। तुम भी बड़े अधीर लगते हो? इसके बाद ब्राह्मण ने कहा- मैं रोहिणी से पर-काया-प्रवेशिनी विद्या लेने जा रहा हूँ। उसके पिता की शर्त के अनुसार जब मैं उक्त विद्या उससे ले लूंगा तो उसका विवाह भी मेरे साथ हो ही जायेगा।

अम्बड़ बड़ा चतुर था। वह अपने मतलब की बात ब्राह्मण के पेट से निकलवाना चाहता था। अत: उसने बड़ी मीठी वाणी में पूछा- लेकिन पूज्य विप्र! विद्या की प्राप्ति तो आदान-प्रदान से होती है। जब तक आपके पास कोई दूसरी विद्या न होगी तो किसके बदले राजकुमारी आपको पर-काया-प्रवेशिनी विद्या देगी? ब्राह्मण ने गर्व के साथ कहा- मेरे पास मोहिनी विद्या है। इस विद्या के बदले मैं उससे उसकी विद्या प्राप्त करूँगा। अम्बड़ उस ब्राह्मण से मोहिनी विद्या प्राप्त करना

चाहता था। अत: उसने ब्राह्मण से प्रश्न किया- रोहिणी के पिता ने बताया था कि अपने भाई के अलावा वह किसी भी पुरुष का मुँह नहीं देखेगी। अत: रोहिणी से मिले बिना आप विद्याओं का आदान-प्रदान कैसे करेंगे। अम्बड़ के इस प्रश्न पर ब्राह्मण उदास हो गया। उसने मरे मन से कहा- इसके लिये कोई न कोई जाल रचना पड़ेगा। अवसर देखकर अम्बड़ ने कहा- मेरे पास भी एक ऐसी विद्या है, जिसके प्रभाव से मनुष्य अक्षय लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है। अम्बड़ की बात सुनकर जन्म से ही गरीब ब्राह्मण के मुँह में पानी भर आया। उसने अम्बड़ से प्रार्थना की- आप मुझे अपनी विद्या सिखा दीजिये और बदले में मैं आपको मोहिनी विद्या प्रदान करूँगा। यही तो अम्बड़ चाहता था। दोनों में विद्याओं का आदान-प्रदान हो गया। वीर अम्बड़ के पास मोहिनी विद्या की वृद्धि हो गई। सब चीजें भाग्य से मिलती है। अगर अम्बड़ का भाग्य प्रबल न होता तो उसे रास्ता चलते ब्राह्मण से बात करने का मन ही न होता, वह सीधा ही चला जाता। उसका लक्ष्य तो देवपत्तन नगर पहुँचना था। लेकिन बीच में ही उसका एक और काम बनना था। सो उसके मन में राहगीर ब्राह्मण से बात करने की इच्छा हुई। अम्बड़ ने देवपत्तन नगर जाकर महामंत्री वैरोचन के यहाँ से 'रविचन्द्र दीपक' लाने का विचार फिलहाल छोड़ दिया और ब्राह्मण के साथ सिंहपुर नगर की ओर चल दिया। दोनों पथिक सिंहपुर नगर के बाहर राजोधान में ठहरे। अब दोनों ने नगर में प्रविष्ट होने का विचार किया। अम्बड़ ने ब्राह्मण से कहा- विप्रवर! यहाँ से हमें अलग-अलग हो जाना चाहिए। एक साथ नगर प्रवेश करने से कुछ गड़बड़ भी हो सकती है।

ब्राह्मण ने भी अम्बड़ के विचार का समर्थन किया और उद्यान से निकलने के बाद दोनों दो अलग-अलग दिशाओं में बढ़ गए। अपने-अपने ढंग से दोनों ही कार्य सिद्ध करना चाहते थे। ब्राह्मण अपनी युक्ति से राजकुमारी रोहिणी के पास जाने का प्रयत्न करने लगा। इधर अम्बड़ ने नगर में घुसते ही तपस्विनी का रूप बनाया। लावण्य और तारुण्य से पूर्ण तपस्विनी का रूप बड़ा ही आकर्षक था। भोग की अवस्था में योग धारण करने के कारण उक्त तपस्विनी जनता की विशेष श्रद्धेय और कुतूहल का विषय बन गई। तपस्विनी वेशी अम्बड़ एक चौराहे पर बैठ गया और मोहिनी विद्या के प्रभाव से सबको मोह लिया। पूरे सिंहपुर नगर में तपस्विनी की चर्चा फैल गयी। भूत, भविष्य और वर्तमान उसके लिये हस्तामलकवत् थे। अपनी-अपनी समस्याओं को लेकर जनता उसके पास आने लगी। ब्राह्मण अभी तक रोहिणी से मिलने में सफल नहीं हो पाया था।

उसने विचार किया कि अपने भविष्य के बारे में चौराहे पर बैठी तपस्विनी से पूछ लेना चाहिये। ऐसा विचार कर ब्राह्मण तपस्विनी रूपधारी अम्बड़ के पास आया और श्रद्धा सहित प्रणाम कर प्रश्न किया- भगवती! मैं जिस कार्य के लिये यहाँ आया हूँ, वह होगा या नहीं? तपस्विनी ने कुछ क्षण विचार करने के बाद ब्राह्मण के प्रश्न का फल इस प्रकार बताया- वत्स! तू एक नई विद्या सीखने के विचार से यहाँ आया है। किंतु तुझे वह विद्या प्राप्त नहीं होगी। तेरे सब प्रयत्न विफल होंगे।

तपस्विनी की भविष्यवाणी से ब्राह्मण बहुत निराश हुआ और साथ ही तपस्विनी से बहुत प्रभावित भी हुआ, क्योंकि उसने मन की बात भी बता दी थी। फिर भी ब्राह्मण ने प्रयत्न करना नहीं छोड़ा। भले ही सफलता मिलने की सम्भावना न हो, फिर भी हाथ-पर हाथ रखकर नहीं बैठ जाना चाहिए। परिणाम तो दैवाधीन है, पर प्रयत्न करना तो मनुष्य के ही अधीन है। ब्राह्मण ने बहुत प्रयत्न किया, पर भाग्यवश उसके सब प्रयत्न बेकार गए और वह अपने नगर देवपत्तन को वापस चला गया। तपस्विनी के नैमित्तिक ज्ञान की चर्चा राजकुमारी रोहिणी के कानों में भी पहुँची। उसने दासियों को भेजकर तपस्विनी से आग्रह करवाया। स्वामिनी! मैं तो महलों से बाहर निकलने में पूर्णत: विवश हूँ। अन्यथा आपके दर्शन करने स्वयं आती। अब कृपाकर मुझे मेरी कुटिया पर दर्शन देकर कृतार्थ करें।

अम्बड़ तो यह चाहता ही था। अत: उसने राजकुमारी की इच्छा पूर्ण करने का निश्चय करते हुए राजकुमारी की दासियों से कहा- वैसे तो हम गृहस्थों के घर कभी नहीं जाती, लेकिन तुम्हारी स्वामिनी राजकुमारी रोहिणी की मजबूरी हम से छिपी नहीं है। इसलिए हम उसे दर्शन देने अवश्य चलेंगी। तपस्विनी दासियों के साथ रोहिणी के महलों में आ गई। राजकुमारी रोहिणी ने भक्तिभाव से तपस्विनी की वंदना की और उच्चासन पर बैठाकर उसके चरणों के समीप ही बैठ गई। तपस्विनी के रूप तथा तारुण्य लावण्य को देखकर रोहिणी बहुत प्रभावित हुई। फिर उसने तपस्विनी से भोजन के लिये आग्रह किया तो तपस्विनी ने अपनी निस्पृहता दिखाते हुए कहा- सुभगे! पवन ही हमारा भोजन है। अन्य भोजन में हमें कोई रुचि नहीं है। तपस्विनी के इस उत्तर से रोहिणी और भी प्रभावित हुई। फिर उसने विनययुक्त वाणी में तपस्विनी से पूछा- स्वामिनी! मेरे मन में एक बहुत बड़ी जिज्ञासा है। इस भोग की अवस्था में, जवानी में ही आपने योग का कंटकाकीर्ण मार्ग क्यों अपना लिया? ऐसी कौन-सी घटना घटी, जिससे यह

संसार सेवल से फूल के समान आपको मिथ्या लगने लगा? तपस्विनी ने गंभीर होकर कहा- राजकुमारी! अपने योग का भेद मैं किसी को नहीं बताती, लेकिन तेरी भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए तुझे रहस्य बताये देती हूँ।

तपस्विनी वेशी अम्बड़ ने एक मनगढ़ंत कथानक बताना शुरू किया। रोहिणी ध्यानपूर्वक सुनने लगी। सुरीपर नगर में राजा शूरसेन राज्य करते थे। उनकी पुत्री का नाम माणिकी था। माणिकी बहुत सुन्दर थी। उसके चन्द्रवदन को देखकर पूर्णिमा का चन्द्र भी बादलों की ओट में छिप जाता था। बचपन में ही राजपुत्री माणिकी की माता चल बसी। राजा शूरसेन ने ही माणिकी को माता का प्यार भी दिया। विद्याध्ययन के योग्य होते ही राजा शूरसेन ने राजकुमारी माणिकी का विद्यारम्भ कराया। एक बार जब माणिकी पाठशाला में अध्ययनरत थी, मणिभद्र नामक विद्याधर की दृष्टि उस पर पड़ी और वह माणिकी का अपहरण कर वैताढ्य पर्वत पर ले गया। माणिकी अभी बालिका ही थी। विद्याधर मणिभद्र ने माणिकी को गौरी और प्रज्ञप्ति नाम की दो विद्याएं सिखाई। धीरे-धीरे माणिकी युवावस्था को प्राप्त हुई तो मणिभद्र ने उससे विवाह करना चाहा। मणिभद्र के साथ ही उसका पुत्र सुभद्रवेग भी माणिकी पर अनुरक्त था। पिता-पुत्र दोनों ही उसे पत्नी बनाना चाहते थे। इसी बात को लेकर पिता-पुत्र में संघर्ष हो गया। कामान्ध व्यक्ति कुछ भी देख नहीं पाता। अपना हिताहित भी वह नहीं समझ पाता। काम के वशीभूत नर हो या नारी अपने परम आत्मीय और स्वजन का वध करने में भी नहीं चूकते। सुभद्रवेग ने माणिकी के कारण अपने पिता मणिभद्र को मौत के घाट उतार दिया। सुभद्रवेग का रास्ता साफ हुआ कि उसके दूसरे भाई किरणवेग ने भी उसे अपनी बनाना चाहा और किरणवेग ने सुभद्रवेग को यमलोक पहुँचा दिया।

इन दो हत्याओं से राजकुमारी माणिकी (मैं) काँप गई। उसे लावण्य पर घृणा हुई, क्योंकि उसके रूप ने ही तो यह अनर्थ किया था। अब माणिकी ने आत्मघात करने का निश्चय किया और चुपचाप घर से निकल पड़ी। माणिकी एक जंगल में पहुँची और एक वटवृक्ष पर चढ़ गई। बरगद के नीचे एक खाई थी। ऊपर से कूदकर खाई में गिरकर प्राण त्याग करने के विचार से जैसे ही माणिकी ने कूदना चाहा कि उसे किसी ने पकड़ लिया। उसने मुड़कर देखा, उसे बचाने वाला वही किरणवेग था। अब कोई उपाय न देख माणिकी ने किरणवेग के साथ रहना प्रारम्भ कर दिया। माणिकी और किरणवेग एक-दूसरे के जीवन साथी बन

गये। एक दिन ऐसा हुआ कि माणिकी ने किरणवेग को एक अन्य स्त्री के साथ अनुरक्त होते देख लिया। अब माणिकी का मन संसार से उचट गया। भोग सुख से उसे विरक्ति एवं ग्लानि हो गई और गृहवास त्याग माणिकी तपस्विनी बन गई।

तपस्विनी वेशी अम्बड़ ने रोहिणी से आगे कहा- राजकुमारी मैं ही वह माणिकी हूँ। तीर्थ यात्रा करते हुए तुम्हारे नगर सिंहपुर में आ निकली और तुमसे भेंट हो गई। राजकुमारी! तुम भी तो अपने बारे में कुछ बताओ। अपनी मनोकथा बताने में तुम्हारा कोई अहित न होगा। शक्ति, गुण और योग्यता से मनुष्य किसी के मन का भेद नहीं जान सकता, पर सहानुभूति से हरेक के मन की बात जानी जा सकती है। रोहिणी ने भी तपस्विनी को अपने सुख की बातें बतायी। उसके बाद रोहिणी ने कहा- आज मैं आपको अपनी पर-काया-प्रवेशिनी विद्या प्रदान करूँगी, क्योंकि मेरे पिता राजर्षि सागरचन्द्र ने कहा था कि यह विद्या चाहे जिसको मत बताना, किसी सुयोग्य पात्र को ही बताना। आज मुझे एक सुयोग्य पात्र मिल गया है। मन में चाह होते हुए भी तपस्विनी ने विद्या ग्रहण करने में आनाकानी की। किंतु रोहिणी के विशेष आग्रह पर तपस्विनी राजी हो गई और उसने रोहिणी से पर-काया-प्रवेशिनी विद्या प्राप्त कर ली। इसके अनन्तर रोहिणी ने तपस्विनी से अपने भविष्य के बारे में एक प्रश्न पूछा- मेरा कौमार्य अब कब समाप्त होगा? तपस्विनी ने कपट ध्यान करने के बाद बताया- राजकुमारी! तेरा भविष्य तो बहुत ही उज्ज्वल। अब शीघ्र ही तेरा विवाह होगा। सब गुणों से उत्तम, सर्वांग सुन्दर, अनेक विद्याओं का धनी तेरा पति यहीं आकर तेरा पाणिग्रहण करेगा। राजकुमारी की उत्सुकता बढ़ी। उसने पुनः पूछा- स्वामिनी! मैं अपने भावी पति को कैसे पहचान सकूँगी? तपस्विनी ने बताया- वह पुरुष तेरी मालिन के हाथों तेरे लिए पुष्प कंचुकी भेजेगा। जो पुरुष ऐसा करे, वही तेरा भावी पति होगा। अपने उज्ज्वल भविष्य के सुनिश्चय से रोहिणी सन्तुष्ट और प्रसन्न हुई। अम्बड़ का काम लगभग पूरा हो चुका था। अब शेष कार्य भी उसे पूर्ण करना था और फिर देवपत्तन नगर जाकर वैरोचन मंत्री के यहाँ से रविचन्द्र दीपक भी लाना था। अतः तपस्विनी वेशी अम्बड़ ने राजकुमारी रोहिणी से कहा- राजकुमारी! अब मैं अपने आश्रम को लौटना चाहती हूँ, क्योंकि गृहस्थों के साथ अधिक समय तक रहना हमारी साधना में बाधक होता है। यह कहकर तपस्विनी उठ खड़ी हुई।

सिंहपुर के बाहर आकर अम्बड़ अपने मूल रूप में आ गया और आकाशगामिनी विद्या के सहारे सीधा देवपत्तन नगर पहुँचा। अम्बड़ देवपत्तन

नगर के बाहर उद्यान में उतरा और उद्यान रक्षक के घर पर ठहरा। अपनी मोहिनी विद्या के द्वारा उसने उद्यान रक्षक के समस्त परिवार को अपने वश में कर लिया। यों तो अम्बड़ से सभी प्रभावित थे, पर उद्यान रक्षक की पुत्री देमती उसके दिव्याकर्षण रूप से बहुत प्रभावित हुई, यहाँ तक कि उसने अपनी माता से अम्बड़ के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। माँ को देमती का यह प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा। उसने अम्बड़ से कहा तो वह भी देमती के साथ विवाह करने को तैयार हो गया। अब तो अम्बड़ उनका स्वजन और साथ ही परम आत्मीय बन गया। एक दिन देमती की माँ तथा अम्बड़ की सास मालिन ने उससे कहा- आप तो अनेक विद्याओं के धारक हैं। देवपत्तन में कोई ऐसा चमत्कार दिखाओ, जिससे राजा-प्रजा सभी चमत्कृत हो जाएं। अम्बड़ ने अपनी सास मालिन से कहा- कोई अवसर आने दो। हर चीज यथावसर ही शोभा को प्राप्त होती है। जेठ की चिलचिलाती धूप में बंशीवादन किसे सुहायेगा? सावन की फुहारों के मध्य बंशीरव सबके मन को मोह लेता है। इस समय चमत्कार दिखाने का कोई उपयुक्त अवसर नहीं है।

एक दिन मालिन फूलों का हार लेकर राजसभा में जा रही थी। अम्बड़ ने दो हार अभिमंत्रित कर दिये और मालिन से कहा- इनमें से एक हार राजा देवचन्द्र को देना और दूसरा प्रधानमंत्री वैरोचन को देना। इनके अलावा और किसी को मत देना। यथासमय राजा और मंत्री को हार देकर मालिन लौट आई। अम्बड़ ने कुछ अभिमंत्रित चूर्ण नगर-द्वार तथा राजमहलों के विभिन्न द्वारों पर छिड़क दिया। मंत्रों के प्रभाव से सभी द्वार ऐसे काँपने लगे, जैसे जाड़े के बुखार से रोगी कांपता है। यह कौतुक देखकर सभी भयभीत हो गये। सभी ने अनुमान किया कि किसी भूत-प्रेत के कोप के कारण यह सब हो रहा है। ऐसा लगता था कि कुछ देर में राजमहल और सम्पूर्ण नगर नष्ट-भ्रष्ट होकर धरती में समा जायेगा। जनसमूह राजा के पास पहुँचा। एक के बाद दूसरी विपत्ति आई। सबके देखते-देखते मंत्री वैरोचन मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। मंत्री को होश में लाने के सभी सम्भव उपाय किये गए, पर मंत्री की मूर्च्छा दूर नहीं हुई। दूसरे दिन मंत्री को होश आया तो वह शृगाल की तरह चिल्लाने लगा और मंत्री के साथ राजा देवचन्द्र भी सियार की बोली बोलने लगा। दोनों को सियार की तरह चिल्लाते देखकर सभी नागरिक और सभासद बड़े दु:खी हुए, पर उनसे कुछ करते नहीं बन रहा था।

राजा और मंत्री की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। वे पागल से हो

गए। कभी कपड़े फाड़ते, कभी नंगे होकर नाचते और कभी कीचड़ में लोटते। इस देवी उपद्रव से नगर में हाहाकार मच गया। कुछ भी कारण समझ में नहीं आया। अनजान बनकर अम्बड़ ने अपनी सास मालिन से पूछा- नगर में हाय-तौबा क्यों हो रही है? सभी लोग व्याकुल दिखाई देते हैं। मालिन ने मुस्करा कर कहा- यह सब तो आपकी ही माया है। आपने चमत्कार दिखा ही दिया। अब अपनी माया को समेटकर सबको सुखी कीजिए। बहुत देर तक कायम रहने से बड़े से बड़ा चमत्कार भी सामान्य बात हो जाती है।

अम्बड़ राज्यसभा में आया और सभी सभासदों तथा जनता को सम्बोधित कर कहा- अगर मुझे मेरी मांगी हुई दक्षिणा दी जाए तो मैं यह उपद्रव निमिषमात्र में समाप्त कर सकता हूँ। सभी ने एक स्वर से कहा- आप जो चाहेंगे वही मिलेगा, पर हमें इस विपत्ति से बचाइए। अम्बड़ ने कहा- पहले बता देना ठीक रहता है। इस संकट मोचन के बदले मैं देवपत्तन का आधा राज्य, राजकन्या के साथ विवाह और महामंत्री का 'रविचन्द्र दीपक' लूंगा। अम्बड़ की मांग सुनकर लोग सोच में पड़ गए। उनकी दशा सांप-छछूंदर की सी हो गई थी। न तो वे इतनी बड़ी दक्षिणा ही देना चाहते थे और न संकटग्रस्त ही रहना चाहते थे। सबको मौन मग्न देख अम्बड़ ने कहा- आप लोग सोच लीजिए। मेरी कोई जबरदस्ती नहीं है। ऐसी विद्याओं को सिद्ध करने में हमें अपना जीवन खपाना पड़ता है। यदि आपको राजकुमारी, रविचन्द्र दीपक और आधा राज्य अपने प्राणों से अधिक प्रिय है तो इनका त्याग मत कीजिए। मैं तो अपने स्थान पर जा रहा हूं। जैसे ही अम्बड़ चलने को मुड़ा कि लोगों ने आग्रहपूर्वक कहा- आप हमें संकट मुक्त कीजिए। आपको तीनों चीजें मिल जायेगी।

अम्बड़ ने मंत्र पाठ का अभिनय किया और कुछ ही समय में सबकुछ यथावत् कर दिया। सभी बड़े प्रसन्न हुए। सभासदों तथा जनता ने राजा और मंत्री को सब बातें बताई तो दोनों बड़े प्रसन्न हुए। राजा देवचन्द्र ने हर्ष के साथ राजपुत्री मदिरावती का विवाह अम्बड़ के साथ कर दिया और आधा राज्य भी प्रदान कर दिया। महामात्य वैरोचन ने अपना दिव्य देवाधिष्ठित 'रविचन्द्र दीपक' तो दिया ही, साथ ही अपनी पुत्री कनकमंजरी का विवाह भी उसके साथ कर दिया। उद्यान रक्षक की पुत्री देमती का विवाह तो उसके साथ पहले ही हो चुका था। अपनी तीनों पत्नियों और रविचन्द्र दीपक को लेकर अम्बड़ रथनूपुर आया और कुछ दिन उनके साथ दाम्पत्य सुख भोगकर और फिर राजकुमारी रोहिणी

को प्राप्त करने के उद्देश्य से सौराष्ट्र देश की राजधानी सिंहपुर की ओर रवाना हुआ। मार्ग में एक स्त्री को करुण विलाप करते हुए देखा तो उसके दु:ख का कारण पूछा। उस स्त्री के सामने एक बालक का शव रखा हुआ था। शव की ओर संकेत करते हुए उस स्त्री ने कहा- मैं सिंहपुर के उद्यान रक्षक की पुत्री वनमालिया हूँ। माता-पिता ने मेरा विवाह इसी नगर में किया था। मेरे एक पुत्र हुआ। एक दिन मैं पीहर आई कि मेरे पीछे ही मेरा पुत्र चल बसा। अन्तिम समय में मैं उससे दो बातें भी नहीं कर पाई। अब मैं भी अपने पुत्र के साथ जलकर प्राण त्याग करूँगी।

अम्बड़ ने उद्यान रक्षक की पुत्री को समझाया। संसार की नश्वरता और आत्मा की अमरता का प्रकाश डाला तथा जन्म-मरण की अनिवार्यता के विषय में बताया। अनेकविध समझाने पर भी उक्त स्त्री का मोह कम नहीं हुआ। अंत में अम्बड़ ने कहा- इस संसार में सभी मरते हैं। तुम्हें इतना अधिक शोक नहीं करना चाहिए। वस्तुत: कोई किसी का बेटा नहीं होता और न कोई किसी की माता होती है। कर्म बन्धन के कारण ये नाते-रिश्ते बनते-बिगड़ते हैं। सभी रिश्ते झूठे हैं। इस पर उद्यान रक्षक की पुत्री ने कहा- मुझे तो इस बात का शोक है कि मेरी अनुपस्थिति में ही मेरे पुत्र की मृत्यु हुई। मैं उससे दो बातें भी न कर पाई। अम्बड़ को अपनी पर-काया-प्रवेशिनी विद्या का स्मरण हो आया। अत: उसने उद्यानपाल की पुत्री से कहा- तुम्हारे मन में दिवंगत पुत्र से बातें न करने का जो मलाल है, उसे मैं दूर कर दूँगा। तुम अपने पुत्र से बातें कर सको, इतनी देर के लिये मैं उसे जीवित कर दूँगा। लेकिन तुम्हें यह वचन देना पड़ेगा कि पुत्र के शव के साथ नहीं जलोगी। उद्यान रक्षक की पुत्री को इस प्रस्ताव पर हर्ष होना ही था। उसने अम्बड़ की शर्त मान ली। अब अम्बड़ ने पुन: कहा- देखो! मैं एकान्त में पेड़ों के झुरमुट में बैठकर देवाराधना करूँगा। तुम यहीं बैठो। मेरे ध्यान के प्रभाव से तुम्हारा पुत्र जीवित हो जायेगा। तुम उससे बात कर लेना। जब तुम उससे बातें कर चुकी होगी, तब मैं तुम्हारे पास आऊँगा। यह कहकर अम्बड़ एकान्त स्थान में चला गया और धरती पर लेटकर अपनी आत्मा को शरीर से बाहर निकाला तथा उद्यान रक्षक की पुत्री के मृत बालक के शरीर में प्रविष्ट हुआ।

अपने पुत्र को जीवित देखकर मालिन की लड़की ने उससे खूब बातें की। जब काफी बातें हो गई तो अम्बड़ की आत्मा बालक के शरीर को छोड़कर पुन: अपने शरीर में प्रविष्ट हुई। रोहिणी से प्राप्त पर-काया-प्रवेशिनी नामक विद्या का सफल प्रयोग और साथ ही सदुपयोग करके अम्बड़ बहुत प्रसन्न हुआ। उसके

बाद वह उस स्त्री के पास आया। दोनों ने मिलकर बालक की अन्त्येष्टि क्रिया की। उसके बाद अम्बड़ उस उद्यान रक्षक की पुत्री के साथ उसी के घर आ गया।

वनमालिनी ने अम्बड़ का विशेष स्वागत-सत्कार किया। वह पुष्पहार लेकर प्रतिदिन राजमहल में जाती थी। धीरे-धीरे सिंहपुर नगर में यह बात फैल गई कि उद्यान रक्षिका के यहाँ एक ऐसा सिद्ध पुरुष ठहरा हुआ है, जिसने उसके मृत बालक को जिला दिया था। राजकुमारी रोहिणी ने जब यह बात सुनी तो उसने उद्यान रक्षिका से पूछा- उद्यान रक्षिका ने अम्बड़ के गुणों की बहुत प्रशंसा की और साथ ही उसके रूप का भी बखान किया।

सुनकर रोहिणी के मन में एक अज्ञात अनुराग की लहर उठी पर उसने दबा ली। एक दिन अम्बड़ ने फूलों की कंचुकी बनाई और वनमालिका को देकर कहा- भद्रे! मेरी यह भेंट राजकुमारी को देना। पुष्पकंचुकी प्राप्त कर रोहिणी को माणिकी नाम की तपस्विनी की भविष्यवाणी का स्मरण हो गया। उसने तुरन्त अपने भाई राजा समरसिंह को सारी घटना बताई। राजा समरसिंह ने बड़ी धूमधाम से अपनी बहन रोहिणी का विवाह उस सिद्ध पुरुष (अम्बड़) के साथ कर दिया। रोहिणी को पत्नी रूप में प्राप्त कर अम्बड़ अपने नगर रथनूपुर को वापस आया और 'रविचन्द्र दीपक' लेकर गोरखयोगिनी के पास पहुँचा। 'रविचन्द्र दीपक' को प्राप्त कर योगिनी बहुत प्रसन्न हुई।

छठा आदेश

सर्वार्थसिद्धि दण्ड

गोरखयोगिनी ने छठा आदेश देते हुए कहा-

अम्बड़! सौवीर देश में सिन्धु नामक पर्वत है। उस पर्वत की तलहटी में कोडिन्न नामक नगर है। वहाँ देवचन्द्र नामक राजा राज्य करता है। उसकी पुत्री सुर सुन्दरी साक्षात् देवांगना के समान है। उसी कोडिन्न नगर में वेद-वेदांगों का ज्ञाता सोमेश्वर नामक ब्राह्मण रहता है। उस ब्राह्मण के पास 'सर्वार्थसिद्धि दण्ड' है। तू उसे लेकर आ। अम्बड़ ने तत्काल सिन्धु पर्वत की तलहटी में बसे कोडिन्न नगर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में एक नदी पड़ती थी। अम्बड़ ने आकाश मार्ग से जाते देखा कि उस नदी में एक कुटिया बह रही थी। कुटिया केले के पत्तों से आच्छादित थी। अम्बड़ को कुतूहल हुआ। उसने कुछ नीचे आकर आकाश में रहते हुए ही गौर

से देखा तो उस कुटिया के पीछे एक योगी बैठा हुआ था और पास में एक मृगी बंधी हुई दिखाई दी। योगी उस हरिणी की पंखे से हवा कर रहा था। यह एक रहस्यमय घटना थी। अम्बड़ ने रहस्योद्घाटन का निश्चय करके उस कुटिया को स्तम्भित कर दिया और भयंकर विकराल रूप बनाकर योगी पर झपटा। योगी भी कम नहीं था। उसने भी अम्बड़ का मुकाबला किया। अम्बड़ योगी को आकाश में ले उड़ा। पापात्मा व्यक्ति की विद्याएं भी शक्तिहीन हो जाती हैं। विद्याओं की प्रतियोगिता में अम्बड़ की ही विजय हुई और योगी को यमलोक पहुँचा दिया गया। योगी को मारकर अम्बड़ कुटिया में आया और सूक्ष्मता से उसका निरीक्षण किया। मृगी सोने की जंजीर से बँधी हुई थी। एक स्वर्ण पुरुष, दो रत्न कुण्डल और एक-एक लाल-सफेद बेंत की छड़ी रखी हुई थी। अपने अनुमान से उसने लाल छड़ी उठाई और हरिणी को उससे पीटा। लाल छड़ी के स्पर्श से वह मृगी तत्काल सुन्दर तरुणी बन गई। अब तो सब रहस्य उसकी मुट्ठी में था। उसने युवती से पूछा- मुझे इस स्वर्ण पुरुष और रत्न कुण्डल का भेद बताओ और यह भी बताओ कि तुम कौन हो? यह योगी कौन था और उसने तुम्हें मृगी क्यों बनाया?

सुन्दरी ने अपनी राम-कहानी सुनाना प्रारम्भ किया। बंग देश में भोजकटक नामक नगर है। वहाँ का राजा वैरसिंह है। मैं उसी राजा की पुत्री रत्नवती हूँ। अपने पिता राजा वैरसिंह से आज्ञा लेकर एक दिन विलास कूप से पारद लेने के लिये चली। दुर्भाग्य से जिस घोड़े पर बैठकर मैं जा रही थी, वह वक्र शिक्षा प्राप्त अश्व था। रोकने पर वह बहुत ही तेज भागता था। मैं उसकी उलटी प्रवृत्ति से अनजान थी। वह घोड़ा मुझे एक घने जंगल में ले गया। वहाँ मुझे एक योगी मिला। योगी मेरे सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो गया। योगी ने विद्याबल से मुझे अपने अधीन कर लिया। उसी ने मुझे हरिणी बनाया था, लेकिन कुछ दिन अपने पास रखकर उसने मुझे मुक्त कर दिया और मैं अपने घर आ गई।

एक दिन योगी मेरे पिताजी राजा वैरसिंह की सभा में पहुँचा। यही योगी मेरा अपहर्ता है, इस रहस्य से सभी अनजान थे। अपना प्रभाव जमाने के इरादे से योगी ने राजसभा में केले का एक वृक्ष आरोपित किया। राजा और सभी सभासद चकित रह गये। योगी ने सबको चकित देखकर कहा- अभी तो आपने कुछ नहीं देखा। और भी कुछ चमत्कार देखना चाहते हो तो इस कदली स्तम्भ को बीच से चीर डालो। मेरे पिताजी राजा वैरसिंह सिंहासन से उठे और म्यान से तलवार निकाल कर योगी द्वारा आरोपित कदली स्तम्भ को चीर डाला। चमत्कार यह हुआ

कि उस कदली स्तम्भ से दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एक सुन्दरी निकली। उसके सौन्दर्य के सामने रति का सौन्दर्य भी फीका मालूम पड़ता था। योगी ने सबको विस्मय विमुग्ध देखकर कहा- यह कोई माया सृष्टि नहीं है, बल्कि वास्तविकता है। यह सुन्दरी विद्याधर मणिवेग की पुत्री है। इसका नाम रत्नमाला है। आपको समर्पित करने के विचार से इसे मैं यहाँ लाया हूँ। योगी की इस भेंट को पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। अयाचित उपहार को पाकर किसको प्रसन्नता नहीं होती। लेकिन योगी तो बड़ा धूर्त था। वह यों ही मुफ्त में विद्याधर पुत्री रत्नमाला को देना नहीं चाहता था। उसे तो अपना उल्लू सीधा करना था। अत: राजा को विद्याधर पुत्री रत्नमाला पर आसक्त देखकर योगी ने कहा- अगर आप इसे प्राप्त करना चाहें तो आपको मेरा एक काम करना पड़ेगा। राजा ने योगी से उसके काम के बारे में पूछा तो योगी ने बताया- राजन्! मैं एक विशेष साधना कर रहा हूँ। योगियों और साधकों की साधना निर्विघ्न समाप्त हो, इसके लिए आप जैसे राजाओं का सहयोग उन्हें मिलता ही है। योगी द्वारा राजा के अहंकार की तुष्टि हुई। राजा फूलकर कुप्पा हो गया। उसने कहा- आप काम बताइए। मैं अवश्य आपकी सहायता करूँगा। योगी ने बताया- आगामी अष्टमी की सन्ध्या को मेरी साधना का समापन होगा। उस दिन आप अपनी पुत्री रत्नवती के साथ श्रीपर्णा नदी के तट पर पधारिए और मेरी साधना के उत्तर-साधक बनकर मेरी साधना को पूर्ण कराइए।

बिना सोचे विचारे राजा ने उक्त तिथि को श्रीपर्णा नदी पर पहुँचने की स्वीकृति दे दी। उतावलेपन में जो कार्य किया जाता है, उसका परिणाम प्राय: अच्छा नहीं होता। कहा भी है- बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताए। जब महामंत्री को सब ज्ञात हुआ तो उसने राजा की स्वीकृति का विरोध करते हुए कहा- महाराज! आप व्यर्थ ही योगी की बातों में आ गए। मुझे तो यह योगी धूर्त मालूम पड़ता है। जो योगी विद्याधर मणिवेग की पुत्री रत्नमाला को उड़ा लाया, निश्चय ही वह योगी नाम पर कलंक है। राजकुमारी रत्नवती के साथ आपको बुलाना, मुझे तो कुछ रहस्यमय मालूम पड़ता है। आप तक की बात तो ठीक भी हो सकती है, पर उसने राजकुमारी को क्यों बुलाया? आप हरगिज वहाँ न जाइए। मंत्री की बात सुनकर राजा वैरसिंह ने कहा- मंत्रीवर! कहते तो आप बिल्कुल ठीक हैं, पर मैं तो उसे वचन दे बैठा। वचन देकर इन्कार होना भी तो जीते जी मरना है। कुछ भी हो अब तो मुझे जाना ही पड़ेगा।

अष्टमी का दिन आया। श्रीपर्णा नदी तट पर जाने के लिए राजा तैयारी

करने लगा। तभी वह योगी भी वहाँ आ धमका। राजा को तैयार होता देख योगी ने पूछा- राजकुमारी रत्नवती कहाँ हैं? क्या उसने तैयारी कर ली? राजा ने कहा- योगीराज! उसको वहाँ जाने की क्या जरूरत है? मैं अकेला ही आपके साथ जाऊँगा। राजा के इस उत्तर से योगी कुपित हो गया। उसने क्रुद्ध स्वर में कहा- राजन्! वचन देकर मुकरने का परिणाम अच्छा नहीं होगा। यदि कुछ विघ्न आ जाए तो मुझे दोष मत देना। राजकुमारी के बिना मेरी साधना पूर्ण नहीं होगी। तुम्हें उसी के साथ चलना पड़ेगा। होनहार या भवितव्यता कहाँ टलती है? जो कुछ होगा, सो देखा जाएगा।

यह विचार कर राजा वैरसिंह मुझ रत्नवती को लेकर श्रीपर्णा नदी के तट पर पहुँच गए। हम दोनों पिता-पुत्री योगी के साथ ही गए थे। योगी ने मार्ग में ही लाल और सफेद बेंत की दो छड़ियाँ भी ले ली। हमें साथ लेकर योगी गुफा में पहुँचा। गुफा में पहले से ही एक कुण्ड में अग्नि जल रही थी। योगी वहाँ बैठकर यज्ञ करने लगा। हम दोनों पिता-पुत्री भी वहीं बैठ गए। हवन पूर्ण करने के बाद योगी हमें लेकर कुटिया में आ गया। वहाँ उसने मुझे श्वेत छड़ी से पीटा। मैं तत्काल मृगी बन गई। योगी ने मुझे जंजीर से बाँध दिया। मेरी यह दशा देखकर पिताजी बड़े दु:खी हुए, पर वे तो योगी के जाल में फँस चुके थे। आखिर करते भी क्या? योगी मेरे पिताजी राजा वैरसिंह को लेकर पुन: गुफा में पहुँचा और अग्निकुण्ड के पास बैठ जाने का संकेत दिया। पिताजी वहीं बैठ गए, फिर योगी ने उन्हें तीन गोलियाँ दी और कहा- इन्हें एक-एक करके अग्निकुण्ड में डालना है और हर बार यह कहना है कि मेरे सान्निध्य से योगीराज की विद्या सिद्ध हो। हर बार ही मुझे नमस्कार करना है।

तीसरी बार गोली डालते समय पिताजी ने योगी का उक्त कथन कहने के बाद ज्यों ही योगी को नमस्कार किया कि योगी ने उन्हें अग्निकुण्ड में डाल दिया। देखते ही देखते पिताजी स्वर्ण पुरुष बन गए। स्वर्ण पुरुष और मुझे लेकर योगी इस कुटिया सहित नदी तट पर आया। और पानी के प्रवाह में कुटी को तैराते हुए न जाने हमें कहाँ ले जा रहा था। इसके बाद जो हुआ, सो आपको मालूम ही है। आपने ऐसे पापी को मारकर मेरा उद्धार ही किया और अनेक लोगों का भी उद्धार किया। वरना न जाने यह धूर्त किस-किस को स्वर्ण पुरुष और हरिणी बनाता। अम्बड़ ने उस अद्‌भुत घटना को सुनकर दीर्घ नि:श्वास छोड़ा और रत्नवती से पुन: पूछा- लेकिन इन कुण्डलों का क्या रहस्य है, यह तो तुमने

बताया ही नहीं। इनके बारे में भी तो बताओ।

रत्नवती ने बताना शुरू किया इन कुण्डलों का रहस्य योगी ने ही मुझे बताया था। एक बार योगी ने अपनी आराधना से कालिका देवी को प्रसन्न किया। काली देवी ने प्रकट होकर ये दोनों कुण्डल योगी को प्रदान किये। इनमें से एक कुण्डल ऐसा है कि यदि आकाश में फेंक दिया जाय तो वर्ष भर पूर्णिमा सी चाँदनी छिटकी रहती है और दूसरे कुण्डल को फेंका जाय तो दो वर्ष तक रात में भी सूर्य सा प्रकाश फैला रहेगा। सारा रहस्य जानने के बाद अम्बड़ ने अपना विकराल रूप त्यागा और अपना मूल रूप प्रकट किया। अम्बड़ के दिव्य रूप को देखकर राजकुमारी रत्नवती उस पर मोहित हो गई। उसने अम्बड़ को अपना समर्पण किया और अम्बड़ ने उसका समर्पण स्वीकार कर उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। विवाहोपरांत रत्नवती की आँखें गीली हो गई। उसे पिता की याद आ गई। उसने अपने पति अम्बड़ से कहा- स्वामी! अब मेरे पिता को भी जीवनदान दीजिए और हम दोनों को लेकर हमारे नगर भोजकटक में पधारकर मेरे भाई समरसिंह को प्रसन्न कीजिए। मेरे भाई समरसिंह को पिताजी तथा मेरे बारे में कुछ भी पता नहीं है। हम दोनों की याद में वह बहुत दु:खी होगा।

अम्बड़ ने अपनी विद्या से स्वर्ण पुरुष को भी मानव रूप दिया। स्वर्ण पुरुष राजा वैरसिंह के रूप में प्रकट हुआ तो रत्नवती को बहुत प्रसन्नता हुई। रत्नवती ने आपबीती घटना सुनाई। अम्बड़ जैसे जामाता को पाकर वैरसिंह को परम संतोष हुआ। फिर तीनों प्राणी आकाशमार्ग से भोजकटक नगर पहुँचे। नगर में प्रविष्ट होने से पहले ही अम्बड़ ने देखा कि पूरा नगर शत्रु-सेना से घिरा हुआ है। अम्बड़ ने भयंकर रूप बनाया और सेना पर धावा बोल दिया। शत्रु-सैनिक अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। नगर को निष्कंटक करने के बाद सबके साथ अम्बड़ ने नगर में प्रवेश किया। समरसिंह अपने पिता, बहिन और बहनोई से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। बड़ी धूमधाम के साथ अम्बड़ और रत्नवती का विवाहोत्सव मनाया गया। अम्बड़ का मुख्य उद्देश्य गोरखयोगिनी के छठे आदेश की पूर्ति हेतु 'सर्वार्थसिद्धि-दण्ड' को प्राप्त करना था। अत: एक रात रत्नवती को सोता छोड़कर वह कोडिन्न नगर की ओर चल दिया। नगर में पहुँचकर उसने एक व्यक्ति से सोमेश्वर ब्राह्मण का पता पूछा। उस व्यक्ति ने कहा- इस नगर में तो सोमेश्वर नाम के अनेक ब्राह्मण रहते हैं, पता नहीं आप किस ब्राह्मण के घर जाना चाहते हैं?

अम्बड़ सोच-विचार में पड़ गया। वहाँ से चलकर वह जंगल में पहुँचा और जंगल में बने कामदेव यक्ष के मंदिर में प्रविष्ट हुआ। अम्बड़ ने सोचा, इस मंदिर में ही रात बिताई जाय। जो कुछ करना होगा, सुबह ही किया जायेगा। लेकिन नई जगह नींद भी तो मुश्किल से आती है। अत: बैठा-बैठा अम्बड़ सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा। अम्बड़ जाग तो रहा ही था। उसने एक युवती को एक मंदिर में घुसते देखा। उस युवती को देख अम्बड़ एक कोने में छुप गया। युवती ने तो यही समझा कि सदा की भाँति यह मन्दिर आज की रात भी जनशून्य है। अत: वह एक प्रस्तर प्रतिमा के पास पहुँची। उसके स्पर्श से ही वह प्रस्तर पुतली मानवी बन गई और क्रुद्ध स्वर में बोली- चन्द्रकान्ता! आज तू इतनी देर से क्यों आई? चन्द्रकान्ता नाम की उक्त युवती ने कहा- मेरे पिता महा पण्डित सोमेश्वर आज राजसभा से बहुत विलम्ब से लौटे थे। उनके लौटे बिना मैं कैसे आ सकती थी? चलो जो कुछ हुआ सो ठीक है, आओ आगे का कार्य करें। यह कहकर वह पुतली से प्रकट हुई युवती, चन्द्रकान्ता के साथ कामदेव की प्रतिमा के समक्ष नृत्य करने लगी।

अब अम्बड़ ने अपने को छिपाना उचित नहीं समझा। तत्काल वह प्रकट हुआ तथा दोनों युवतियों से पूछा- बालाओ! तुम कौन हो? नृत्य रुक गया। अचानक एक अपरिचित व्यक्ति को अपने सामने देखकर दोनों सखियाँ डर गयी। दोनों कुछ देर सहमी सी खड़ी रही। थोड़ी देर बाद सोमेश्वर विप्र की पुत्री चन्द्रकान्ता ने साहस करके पूछा- महाभाग! आप पहले तो अपना परिचय दीजिए। आप कौन हैं, यहाँ क्यों आये और हमारा परिचय क्यों पाना चाहते हैं? कौतुकी अम्बड़ ने अपना असली परिचय छिपाकर कहा- मेरा नाम पंचशीर्ष है। मैं परदेशी हूँ। पश्चिम देश का निवासी हूँ। घूमता-फिरता यहाँ आकर रात्रि विश्राम कर रहा हूँ। यही मेरा परिचय है। अम्बड़ के इस उत्तर से चन्द्रकान्ता बिल्कुल प्रभावित नहीं हुई। अम्बड़ की ओर से उदासीन होकर दोनों बातें करने लगी। बातों के सिलसिले में पुतली ने चन्द्रकान्ता से कहा- सखी चन्द्रकान्ता! आज तो मेरा मन वासवदत्ता के घर जाने को हो रहा है। चन्द्रकान्ता ने कहा- वासवदत्ता के घर जाना तो मैं भी चाहती हूँ। रथ भी हमारे पास है, पर आज सारथि कोई नहीं है। पुतली ने हँसकर कहा- जब वासवदत्ता के घर जाने का विचार उठा तो संयोग से सारथि का प्रबन्ध भी हो ही गया। हम पंचशीर्ष को सारथि बनाकर ले चलेंगी। चन्द्रकान्ता ने अम्बड़ के सामने सारथि बनने का प्रस्तुत/प्रस्ताव रखा तो उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह यह जानना

चाहता था कि ये दोनों कहाँ जाना चाहती हैं और यह वासवदत्ता कौन है?

पंचशीर्ष बने अम्बड़ ने पूछा- आपके रथ का सारथी बनकर मुझे कहाँ जाना होगा?

हमें पाताल-लोक जाना है। चन्द्रकान्ता ने बताया।

अम्बड़ जानता था कि ये दोनों पाताल लोक जाकर वासवदत्ता से मिलने के लिए बहुत उत्सुक हैं। अत: दोनों की प्रबल इच्छा का लाभ उठाते हुए उसने कहा- मैं सारथि तो आपका बन जाऊंगा, लेकिन इसके बदले में जो भी विद्या सीखना चाहूंगा, उसे प्रस्थान से पूर्व ही सीखूंगा। चन्द्रकान्ता और पुतली ने पंचशीर्ष छद्मनामधारी अम्बड़ की शर्त स्वीकार कर ली। उसी समय वहाँ एक रथ उपस्थित हो गया। लेकिन उस रथ में विशेषता और विचित्रता यह थी कि उसमें घोड़े अथवा बैल नहीं जुते थे। दोनों युवतियाँ रथ में बैठ गयी और अम्बड़ सारथि के स्थान पर बैठ गया। आश्चर्यचकित अम्बड़ ने कहा- बिना घोड़े के इस रथ को खींचेगा कौन? अम्बड़ के इस प्रश्न पर दोनों सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली- तुम तो बहुत नादान हो। यह रथ घोड़ों से नहीं चलता, बल्कि विद्याबल से चलता है। इसकी गति का मुकाबला घोड़े नहीं कर सकते। बैल या घोड़े जुते होने पर तो सभी रथ चला लेते हैं। आप नि:शंक होकर इसका संचालन करें, यह अपने आप चलने लगेगा।

उक्त युवतियों के दर्प-कथन से अम्बड़ का स्वाभिमान भी जाग्रत हो गया। उसने रथ को स्तभित कर दिया। दोनों युवतियों की विद्या बे-काम हो गई। रथ टस-से-मस नहीं हुआ। जब रथ नहीं चला तो दोनों एक-दूसरे का मुँह देखने लगी। फिर वे समझ गईं कि यह सब इस पंचशीर्ष की ही करामत है। उनका अहंकार चूर-चूर हो गया और उन्होंने अम्बड़ से अनुनय की। आपने यह रथ स्तम्भित क्यों कर दिया? हम पर दया कीजिए और इसे अपने विद्या प्रभाव से मुक्त कीजिए। अम्बड़ ने कहा- पहले आप मुझे बिना बैलों अथवा घोड़ों के रथ चलाने की विद्या सिखाइए, तब मैं इस रथ को अपने विद्या प्रभाव से मुक्त करूँगा। दोनों पहले से ही वचनबद्ध थी। अत: उन्होंने बिना घोड़ों के रथ चलाने की विद्या पंचशीर्ष को सिखा दी। अब रथ वायु-वेग से उड़ने लगा। यथा समय दोनों वासवदत्ता के घर पहुँच गई। उसने दोनों का स्वागत किया। दोनों सखियों ने पंचशीर्ष रूपी अम्बड़ का स्वत: ही परिचय दिया। ये हमारे नये सारथि पंचशीर्ष हैं। तीनों सखियाँ घुल-मिलकर बातें करने लगी। थोड़ी ही देर में नागश्री नाम की

चौथी सखी भी आ गई, जो वासवदत्ता के पड़ोस में ही रहती थी। चन्द्रकान्ता, पुतली, वासवदत्ता और नागश्री- चारों सखियाँ विनोद वार्ता में लीन थी। इतने में ही नागश्री ने तीनों सखियों से अपने घर चलने का आग्रह किया। नागश्री के स्नेहाग्रह से वे तीनों उसके घर गई। पंचशीर्ष भी उनके साथ गया। पंचशीर्ष ने यहाँ भी अपनी विद्या का कमाल दिखाया। चारों को एक-एक पान दिया। पान अभिमंत्रित थे। पान खाते ही चारों मृगी बन गई। पाताल लोक में हाहाकार मच गया। पंचशीर्ष मृगी के रूप में चन्द्रकान्ता को लेकर कोडिन्न नगर आया। उसने मृगी रूपी चन्द्रकान्ता को नगर में ही छोड़ दिया। चन्द्रकान्ता मृगी रूप में ही अपने पिता सोमेश्वर के यहाँ पहुँच गई। मृगी के हावभाव और उसके अश्रुपूरित नेत्रों को देखकर ही सोमेश्वर समझ गया था कि अवश्य ही यह मेरी पुत्री चन्द्रकान्ता है। सोमेश्वर अपनी पुत्री की यह दशा देख बड़ा दु:खी व चिन्तित हुआ। वह राजपुरोहित था। उसने राजा को भी अपनी पुत्री का रूप परिवर्तन बताया। राजा स्वयं पुरोहित सोमेश्वर के घर आया। रास्ते में उसने बिना बैल या घोड़े के रथ को दौड़ते हुए देखा तो उसके सारथि से पूछा- भाई! तुम क्या कोई ऐन्द्रिजालिक जादूगर हो। बिना खींचने वाले के रथ चलता हुआ तो हमने कहीं नहीं देखा। अम्बड़ ने अपना प्रभाव जमाने के विचार से कहा- मैं एक विद्याधर हूँ। अनेक विद्याएं मेरी मुट्ठी में हैं। अब अम्बड़ अपने मूल रूप में था। उसके दिव्य रूप को देखकर कोडिन्न नगर का राजा देवचन्द्र बहुत प्रभावित हुआ।

उसने विनययुक्त वाणी में अम्बड़ से कहा- हे महाभाग! मेरे पुरोहित सोमेश्वर की कन्या देव वश मृगी हो गई है। आप मुझ पर अनुग्रह कर उसे मानवी रूप प्रदान करें। पंचशीर्ष नामधारी अम्बड़ ने कहा- चलो, पहले चलकर देखें। अम्बड़ राजा देवचन्द्र के साथ राजपुरोहित सोमेश्वर के यहाँ पहुँचा। कुछ देर तक उसने कपट-ध्यान किया। तदनन्तर उसने कहा- इसे मानवी रूप देना बहुत कठिन है। करने को तो मैं इसे मानवी कर सकता हूँ, पर इस कार्य में मुझे अपनी पूरी शक्ति का अपव्यय करना पड़ेगा। यदि आप मुझे मुँह माँगी दक्षिणा दे सकें तो मैं उपाय करूँ। पानी के बिना तड़फता राजा एक लोटा पानी के लिए अपना राज्य तक दे सकता है। संकट में फँसे व्यक्ति के लिए कुछ भी अदेय नहीं होता। देवचन्द्र ने पंचशीर्षनामी अम्बड़ की शर्त स्वीकार कर ली। तब अम्बड़ ने कहा- इस कार्य के बदले मुझे राजपुरोहित सोमेश्वर का 'सर्वार्थसिद्धि दण्ड' चाहिए। सोमेश्वर पहले तो अचकचाया, पर मरता क्या न करता, आखिर राजी हो गया।

अब क्या देर थी? अम्बड़ ने मृगी को उसके मूल रूप विप्रकन्या चन्द्रकान्ता के रूप में परिवर्तित कर दिया। चन्द्रकान्ता को अब अपनी तीनों सखियों की याद आई। उसने अम्बड़ से प्रार्थना की कि मेरी तीनों सखियों को भी पशुरूप से मुक्त कीजिए। अम्बड़ चन्द्रकान्ता के साथ पातालपुरी पहुँचा और नागश्री, वासवदत्ता तथा पुतली को भी हरिणी से मानवी बना दिया।

चन्द्रकान्ता सहित चारों सखियों का विवाह अम्बड़ के साथ हो गया। राजा देवचन्द्र ने भी अपनी पुत्री का विवाह अम्बड़ के साथ किया। पाँचों पत्नियों और 'सर्वार्थसिद्धि दण्ड' लेकर अम्बड़ कोडिन्न से भोजकटक नगर आया। वहाँ से रत्नवती, स्वर्ण पुरुष और दिव्य कुण्डलों को लेकर छहों पत्नियों सहित अपने नगर रथनूपुर आया। कुछ दिन पत्नियों के साथ आनन्द विलास करने के बाद वह गोरखयोगिनी के पास पहुँचा और उसे 'सर्वार्थसिद्धि दण्ड' समर्पित किया।

गोरखयोगिनी के छह आदेश पूर्ण करके अम्बड़ ने अनुपम और आलौकिक वैभव प्राप्त किया था। उसे हर कार्य में सफलता मिली। पुण्यबल से क्या नहीं हो पाता? असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अब तो एक ही आदेश शेष था। इस अंतिम आदेश को पूर्ण करने का अम्बड़ को विशेष उत्साह था।

अम्बड़ को ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न बनाने के लिए ही गोरखयोगिनी ने सात आदेशों की सृष्टि की थी। अब गोरखयोगिनी अम्बड़ की परमपूजनीया और श्रद्धेया बन गई थी। अम्बड़ का रोम-रोम गोरखयोगिनी का आभारी था। अम्बड़ सातवाँ और साथ ही अंतिम आदेश प्राप्त करने के लिये गोरखयोगिनी के पास पहुँचा। गोरखयोगिनी ने उसके शौर्य व साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के अनन्तर सातवाँ आदेश भी प्रदान किया।

सातवाँ आदेश

मुकुट चीर

गोरखयोगिनी ने सातवाँ आदेश देते हुए कहा-

वीर अम्बड़! दक्षिण दिशा में सोपारक नामक नगर है। वहाँ चण्डीश्वर नामक राजा राज्य करता है। राजा चण्डीश्वर की राजकुमारी सुरसुन्दरी यथानाम तथागुण सम्पन्न है, अर्थात् देवांगना के समान सुन्दर है। उस राजा के मुकुट में एक वस्त्र है। तू उस वस्त्र को लाकर मेरे अंतिम आदेश को भी पूर्ण कर।

योगिनी का आदेश प्राप्त कर अम्बड़ दक्षिण दिशा की ओर चल दिया। आकाश मार्ग से गरुड़ की तरह उड़ता हुआ वह शीघ्र ही सोपारक नगर के निकट पहुँच गया। नगर के समीप 'देवब्रह्म' नामक उद्यान था, जो बड़ा ही सुरम्य और फल-फूलों से लदा था। नगर में प्रविष्ट होने से पहले अम्बड़ उस उद्यान की रमणीयता से आकर्षित हुआ और घूम-घूम कर उद्यानश्री को देखने लगा। सरस, सुमधुर फलों को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया और ज्यों ही फल तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया कि 'ठहरो' की आवाज से चौंककर अम्बड़ एकदम ठिठक गया। पेड़ पर बैठा एक बन्दर मानुषी भाषा में कह रहा था- पहले मेरी बात सुनो। उसके बाद फल तोड़ना। यदि आपने मेरी बात नहीं मानी तो विरूप हो जाओगे। किसी की भी बात सुनने में क्या हानि है, यह सोचकर अम्बड़ ने कहा- सुनाओ! जो कुछ कहना है, शीघ्र ही कह डालो। बन्दर ने कहा- इस ब्रह्म उद्यान के दक्षिण में तुम्बगिरी नामक पर्वत है। वहाँ एक आम्र वृक्ष है। पहले तुम उसके फल ले आओ, फिर इस वृक्ष के फल खाना। गगनगामिनी विद्या के प्रभाव से निमिष मात्र में ही अम्बड़ तुम्बगिरी पर स्थित आम्र वृक्ष के पास पहुँचा। फलों के भार से आम्र वृक्ष की डालियाँ नीचे झुकी हुई थीं। फल आने से पेड़ झुक जाते हैं, नव वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं और सम्पतिवान् होने पर सज्जन नम्र हो जाते हैं- परोपकारियों का तो स्वभाव ही ऐसा है। अम्बड़ ने आम तोड़ने के लिये हाथ बढ़ाया, पर उसकी शाखा ऊपर उठ गई। वृक्ष के चारों ओर घूमकर अम्बड़ ने हर झुकी हुई शाखा से फल तोड़ने का प्रयत्न किया, पर प्रत्येक शाखा उसकी पकड़ से ऊँची हो गई। अम्बड़ को फल तो लेना ही था, अत: वह पेड़ पर चढ़ गया। जैसे ही अम्बड़ आम्र वृक्ष पर चढ़ा कि वह जड़ सहित उखड़कर आकाश में उड़ने लगा। अम्बड़ वीर व साहसी था, इसलिए डरा नहीं, पर चकित अवश्य हुआ।

वृक्ष पर बैठा अम्बड़ चारों ओर के दृश्य देखता जा रहा था और साथ ही सोच रहा था, जाने यह वृक्ष मुझे कहाँ ले जायेगा। कुछ देर बाद वृक्ष एक अन्य मनोरम उद्यान में उतरा और एक स्थान पर ऐसे आरोपित हो गया, मानो यह यहीं उगकर पौधे से वृक्ष बना हो। अम्बड़ वृक्ष से नीचे उतरा। उसने चारों ओर नजर घुमाई। यहाँ बड़ी चहल-पहल थी। वाद्य संगीत का कार्यक्रम हो रहा था। कहीं नाटक हो रहा था। एक स्थान पर अग्निकुण्ड प्रज्वलित था। उस अग्निकुण्ड में होकर देवांगना जैसी सुन्दरियाँ आ-जा रही थी। इस अद्भुत दृश्य को देखकर अम्बड़ विस्मय विमुग्ध था। अम्बड़ कुछ सोच ही रहा था कि दिव्य पुरुष ने

उसका स्वागत करते हुए कहा- आइए वीर अम्बड़! हमें आपका ही इंतजार था। वह बन्दर कैसा लगा और तुम्बगिरी का आम्र वृक्ष कैसा था? अम्बड़ कुछ पूछे कि उससे पहले ही उस दिव्य पुरुष ने स्वयं ही बताना प्रारम्भ किया- आप मेरी बातों से अवश्य चौंके होंगे और सब कुछ जानने को उत्सुक होंगे। इस अग्निकुण्ड और नृत्य समारोह को देखकर भी आपके मन में रहस्य जानने की जिज्ञासा होगी। मैं आपको सब कुछ बताये देता हूँ। अम्बड़ सुनने लगा।

वह पुरुष कह रहा था- पाताल लोक में लक्ष्मीपुर नामक एक नगर है। वहाँ हंस नामक राजा राज्य करता है। मैं वही हँस हूँ। आपको यहाँ लाने के लिये बन्दर का रूप बनाकर मैं ही ब्रह्म वाटिका में पहुँचा था। मुझे मालूम था कि सोपारक नगर आयेंगे और नगर में प्रविष्ट होने से पहले ब्रह्मवन में पधारेंगे। उसके बाद तुम्बगिरी पर मैंने ही आम्र वृक्ष का रूप धारण किया था और अब अपने मूलरूप राजा हँस के रूप में मैं आपसे बातें कर रहा हूँ। इस कौतुकी ढंग से मैं आपको क्यों लाया? अब इस विषय की पूरी जानकारी मैं आपको दे रहा हूँ। विद्याधरों ने मुझे आपको लाने का कार्य सौंपा था। इसकी पृष्ठभूमि इस प्रकार है- शिवशंकर नामक विद्याधरों के नगर में शिवशंकर नाम का विद्याधर राजा राज्य करता है। राजा के नाम पर ही इस नगर का नाम रखा गया है। राजा शिवशंकर के कोई पुत्र नहीं था। पुत्र प्राप्ति के लिये राजा शिवशंकर ने अनेक प्रयत्न किये, पर हर प्रयत्न के बाद निराशा ही मिली। अन्त में विश्व दीप तपस्वी ने राजा की भक्ति से प्रसन्न होकर एक फल प्रदान किया और बताया कि राजा-रानी दोनों मिलकर इस फल को खाना, संतान की प्राप्ति हो जायेगी, किंतु राजा शिवशंकर ने अकेले की वह फल खा लिया। जैसी होनहार होती है, वैसी ही आदमी की बुद्धि हो जाती है। राजा के गर्भ रह गया। कुछ दिन बाद राजा शिवशंकर के पेट में भयंकर और असह्य पीड़ा हुई। वैद्यों ने निदान किया कि राजा तो गर्भवान् है। सुनकर सभी चकित रह गए। अब तक गर्भवती होना तो सुना था, पर आज गर्भवान् होना भी देख लिया। धीरे-धीरे गर्भ की वृद्धि होती रही। लज्जावश राजा महलों में ही छिपा रहा। राजा ने सबसे मिलना-जुलना बंद कर दिया। यह अद्भुत बात पूरे नगर में फैल गई।

सातवें महीने राजा के पेट में पुन: पीड़ा होने लगी। सभी विद्याधर एकत्र हुए। राजा की कष्ट मुक्ति के लिए क्या किया जाए, इस पर सभी ने विचार किया। एक विद्याधर ने सुझाव दिया कि यदि धरणेन्द्र की आराधना की जाए तो राजा की वेदना दूर हो सकती है। दूसरे विद्याधर ने आपत्ति उठाई कि राजा तो कष्ट में

है, धरणेन्द्र की आराधना कौन करेगा? विद्याधर राजा शिवशंकर के छोटे भाई ने कहा कि भाई के स्थान पर मैं धरणेन्द्र की आराधना करूँगा। शुभ दिन और शुभ वेला में विद्याधर राजा शिवशंकर के भाई ने धरणेन्द्र की आराधना आरम्भ कर दी। सातवें दिन धरणेन्द्र प्रकट हुआ। धरणेन्द्र ने पूछा- मुझे क्यों याद किया है? शिवशंकर के भाई ने बताया- मेरे बड़े भाई उदर वेदना से व्याकुल हो रहे हैं। आप उन्हें कष्ट मुक्त करें।

धरणेन्द्र ने भगवान पार्श्वनाथ के मंत्र से अभिमंत्रित जल दिया और वह जल राजा शिवशंकर को पिलाने का आदेश देकर धरणेन्द्र अन्तर्ध्यान हो गया। उस जल ने चमत्कार दिखाया। उसके पीते ही राजा की उदर वेदना शान्त हो गई। साढ़े आठ महीने बाद रानी के पेट में प्रसव पीड़ा हुई। पुन: धरणेन्द्र का स्मरण किया गया। दूसरी बार भी धरणेन्द्र ने पार्श्ववनाथ मंत्र का मंत्रित जल दिया। रानी ने सुखपूर्वक एक पुत्र को जन्म दिया और जन्म देने के साथ ही वह चल बसी। धरणेन्द्र ने राजा शिवशंकर के पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाया। उस राजपुत्र का नाम 'धरणेन्द्र-चूड़ामणि' रखा गया। धरणेन्द्र चूड़ामणि के लिये धरणेन्द्र ने यह पातालपुरी बसाई। आप जो यह अग्निकुण्ड देख रहे हैं, इसी में होकर पातालपुरी जाने का मार्ग है। धरणेन्द्र चूड़ामणि के लिए धरणेन्द्र ने एक सुन्दर नगर बसाया है और धरणेन्द्र ने धरणेन्द्र चूड़ामणि के लिये विशेष आदेश किया कि तुम कभी भी पर्व तिथि के दिन भगवान की वंदना-स्तुति किये बिना भोजन करोगे तो विद्याभ्रष्ट हो जाओगे और साथ ही कोढ़ी भी हो जाओगे। साथ ही धरणेन्द्र ने अन्य विद्याधरों को भी चेतावनी दी कि सोलह वर्ष से अधिक आयु का कोई भी विद्याधर चार पर्व तिथियों में भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति किये बिना भोजन नहीं कर सकेगा। यदि कोई करेगा तो वह भी कोढ़ी तथा विद्याभ्रष्ट हो जायेगा। धरणेन्द्र ने धरणेन्द्र चूड़ामणि के लिये चन्द्रकान्ता मणि का एक दिव्य सिंहासन भी भेंट किया है। ऐसा दिव्य सिंहासन त्रिलोक में भी नहीं है। आज अष्टमी का पर्व दिवस है। अत: सभी विद्याधर नृत्य-गान आदि कर रहे हैं।

राजा हँस ने आगे कहा- एक बार पर्व तिथि के दिन राजा धरणेन्द्र चूड़ामणि ने भगवान की स्तुति-वंदना किये बिना भोजन कर लिया। उसी दिन से राजा विद्याभ्रष्ट हो गया और कोढ़ी भी हो गया। राजा धरणेन्द्र चूड़ामणि के रोग निवारण के लिये धरणेन्द्र का पुन: स्मरण किया गया। धरणेन्द्र ने दर्शन तो दिये, पर वे इस बार बहुत रोष में थे। उन्होंने क्रुद्ध स्वर में कहा- अरे मूर्ख राजा! तूने मेरी

आज्ञा का उल्लंघन किया है। तुझे इसका दुष्परिणाम भोगना ही पड़ेगा। अब मैं तेरी कोई सहायता नहीं कर सकता। यह कहकर धरणेन्द्र अदृश्य हो गया। लेकिन रूठे सुजन को तो मनाना ही चाहिए। रानी ने राजा की कष्टमुक्ति के लिये विशेष तप का अनुष्ठान किया, चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान कर वह धरणेन्द्र के जाप में बैठी है। आज इक्कीस दिन हो गये। रानी के प्राण कण्ठ में आ गए हैं। इस उग्र साधना से धरणेन्द्र का रोष शान्त हो गया। उसने स्वप्न में दर्शन देकर रानी को बताया कि सोपारक नगर के निकट ब्रह्म वाटिका में आज अम्बड़ नाम का सिद्ध पुरुष आएगा, तुम किसी तरह उसे यहाँ ले आओ। वही राजा को कष्ट मुक्त कर सकेगा।

राजा हँस ने आगे कहा- वीर अम्बड़! आपको यहाँ तक लाने का काम विद्याधरों ने मुझे सौंपा। इसलिये मैं आपको लेकर आया। अब आप मेरे साथ पातालपुरी के लक्ष्मीपुर नगर में चलिए और राजा धरणेन्द्र चूडामणि को कष्ट मुक्त कीजिए। अम्बड़ राजा हँस के साथ अग्निकुण्ड में कूद पड़ा और सीधा लक्ष्मीपुर पहुँचा। अम्बड़ ने धरणेन्द्र चूडामणि को कुष्ठ ग्रस्त देखा तो उससे भगवान पार्श्वनाथ व धरणेन्द्र का जाप करवाया और अभिमंत्रित जल राजा धरणेन्द्र चूडामणि को पिलाया तथा उससे अनेक दान-पुण्य भी कराए। परिणामस्वरूप राजा की काया कंचन जैसी हो गई और उसकी विद्याएं भी वापस आ गई। अपने पति को पूर्ण स्वस्थ देख रानी ने अम्बड़ के प्रति अपना विशेष आभार प्रकट किया और राजा धरणेन्द्र चूडामणि तो इतना उपकृत हुआ कि उसने अपनी पुत्री मदनमंजरी का विवाह अम्बड़ के साथ कर दिया तथा अपना चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित सिंहासन भी प्रदान किया। अम्बड़ कुछ दिन अपनी ससुराल लक्ष्मीपुर रहा और विद्याधरों से कई प्रकार की विद्याएं सीखी। तदुपरान्त मदनमंजरी को लेकर अम्बड़ सोपारक नगर आया। अब उसे सोपारक के राजा चंडीश्वर के मुकुट से वस्त्र प्राप्त करके गोरखयोगिनी का अंतिम आदेश पूर्ण करना था। अम्बड़ ने सोपारक नगर में कई चमत्कार दिखाकर वहाँ की जनता को चमत्कृत किया, पर राजभवन में उसका प्रवेश नहीं हो पाया। अभी तक कोई ऐसी युक्ति उसके हाथ नहीं आई, जिससे वह अपने उद्देश्य में सफल हो सके। जब काम होने को होता है तो अपने आप ही अनुकूल परिस्थितियाँ बन जाती हैं।

एक दिन वसन्तोत्सव मनाने नगर की जनता ब्राह्म वाटिका में आई। राजपरिवार भी वहाँ पहुँचा, सुरसुन्दरी भी अपनी सखियों सहित उद्यान में आमोद-प्रमोद करने में लीन हो गयी। अम्बड़ ने मोहिनी विद्या के प्रयोग द्वारा

राजकुमारी सुर-सुन्दरी को मोहित कर लिया और स्वयं योगी का वेश बनाकर एक स्थान पर बैठ गया। सुर-सुन्दरी सबकुछ भूलकर मोहिनी प्रभाव से योगी अम्बड़ के पास ही बैठ गई और मुग्ध भाव से योगी अम्बड़ के मुख की ओर देखने लगी। अम्बड़ ने राजकुमारी को बंग, कलिंग, कोसल, गुर्जर आदि देशों की सरस बातें सुनाई और अभिमंत्रित राख राजकुमारी सुर-सुन्दरी को दी। राजकुमारी ने वह राख मस्तक पर लगाई। योगी वेशी अम्बड़ वहाँ से उठकर चला तो सुर-सुन्दरी की सखियों ने दौड़कर पूरी घटना राजा चण्डीश्वर को सुनाई। यह सुनते ही राजा आग बबूला हो गया और बोला- यह कौन धूर्त योगी है जो मेरी पुत्री को ठगने आया है। यह कह राजा ने एक विशाल सेना योगी को पकड़ने भेजी। योगी ने सेना को अपनी ओर आते देखा तो तत्काल मोहिनी विद्या का प्रयोग किया। पूरी सेना मोहित होकर धनुषाकार पंक्ति में योगी अम्बड़ के चारों ओर बैठ गई और अम्बड़ की बातें सुनने लगी। राजा ने जब योगी की धृष्टता सुनी तो दलबल सहित स्वयं योगी को पराजित करने पहुँचा। अम्बड़ और राजा चण्डीश्वर में भयंकर युद्ध हुआ।

दोनों ओर की भीषण बाण वर्षा से अम्बर ढक गया। अंत में विद्या धनी अम्बड़ की ही जीत हुई। अम्बड़ के कौशल को देखकर राजा चण्डीश्वर चिंतित हो गया। सोचने लगा, निश्चय ही यह कोई सिद्ध पुरुष है। इससे पार पाना मुश्किल है। राजा को चिन्तातुर देख अम्बड़ ने राजा तथा उसकी सेना को स्तंभित कर दिया। राजा का स्पन्दन तक रुक गया। तभी बड़ी चतुराई और हस्तलाघव से अम्बड़ ने राजा के मुकुट में से वस्त्र निकाल लिया और अपने मूल उद्देश्य में सफल हुआ। समूची सेना और राजा चण्डीश्वर को स्तम्भित देख सुर-सुन्दरी ने उन्हें स्वस्थ करने की प्रार्थना अम्बड़ से की तो उसने स्तम्भन विद्या का हरण करके सबको पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया।

राजा चण्डीश्वर अम्बड़ का लोहा मान चुका था। अम्बड़ से अच्छा जामाता उसे और कहाँ मिलता? अत: धूमधाम के साथ उसने अम्बड़ और सुर-सुन्दरी का विवाह कर दिया। पातालपुरी-लक्ष्मीपुर और सोपारक से अनेक बहुमूल्य भेंट सामग्री तथा मदनमंजरी और सुर-सुन्दरी दोनों पत्नियों को लेकर अम्बड़ अपने नगर रथनूपुर आया। मुकुट का वस्त्र भी उसने प्राप्त कर लिया था। पत्नियों को रथनूपुर छोड़, अम्बड़ मुकुटचीर लेकर गोरखयोगिनी के पास धनगिरी पहुँचा और उसे भेंट करके निवेदन किया।

मातेश्वरी! आपकी कृपा से मैंने सातों ही आदेश पूर्ण कर दिये हैं। अब

मैं सदा आपका चरणानुगामी रहूँगा। मेरा रोम-रोम आपका आभारी रहेगा। पहले मैं एक मामूली अम्बड़ था और अब आपकी कृपा से...।

कहते-कहते अम्बड़ का गला भर आया। योगिनी के प्रति वह बहुत कृतज्ञ था। कृतज्ञता से वह आगे बोल नहीं पाया। आगे की बात गोरखयोगिनी ने पूरी की- और अब तू वीर, पराक्रमी, अमिट, वैभवशाली, विपुल साम्राज्य का स्वामी तथा बत्तीस पत्नियों का स्वामी है। बोल, तेरे अभाव की पूर्ति अभी हुई या नहीं। अम्बड़ का मस्तक गोरखयोगिनी के चरणों में झुक गया। योगिनी की बार-बार वन्दना कर अम्बड़ अपने नगर को लौट आया और सुखों का भोग करते हुए धर्म-कर्म के साथ जीवन यापन करने लगा।

❑❑❑

श्रीवास नगर का राजा और उसके सभासद स्वर्गीय अम्बड़ के पुत्र कुरुबक के मुँह से अम्बड़ की शौर्य कहानी सुन रहे थे। पूरी कहानी सुनने के बाद राजा विक्रमसिंह का ध्यान उस बात की ओर गया जो कुरुबक ने आते ही बताई थी। वह यह कि राजन् धनगिरी पर्वत पर जहाँ गोरखयोगिनी ध्यान करती थी, वहाँ उनकी ध्यान कुण्डलिका के निकट एक विशाल धन भण्डार है।

भण्डार का नाम सुनते ही राजा विक्रमसिंह के मुँह में पानी भर आया था। जब उसने उक्त भण्डार की जानकारी मालूम करनी चाही तो बातों ही बातों में उस भण्डार से संबंधित वीर अम्बड़ की पूर्व बातें कुरुबक सुनाने लग गया। जब वह यहाँ तक सुना चुका तो राजा विक्रमसिंह ने कुरुबक से पूछा- अब तुम मूल बात पर आओ। उस भण्डार के बारे में तुम जो कुछ बताना चाहते थे, सो अब बताओ। कुरुबक ने कहा- राजन्! मेरे पूज्य पिताजी स्वर्गीय वीर अम्बड़ की थोड़ी-सी बातें और रह गई। उनके जीवन का शेषांश सुनाने के बाद मैं मूल विषय पर आऊँगा।

राजा विक्रमसिंह धैर्य के साथ कुरुबक की बातें सुनने लगा।

विद्यासिद्ध अम्बड़ का अन्तिम जीवन

कुरुबक ने कहा- राजन्! मेरे पिताजी अम्बड़ ने इतनी विद्याएं प्राप्त की कि उनका नाम ही विद्यासिद्ध हो गया। मेरे पिता की विगत घटनाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि निर्धनता मनुष्य की प्रगति में बहुत बड़ी बाधा नहीं है।

कितना ही निर्धन व्यक्ति हो, यदि उसमें साहस और सूझबूझ है तो सफलता और सम्पन्नता उसकी दासी बन जाती है। मेरे पिताजी अम्बड़ निर्धन थे। अभिभावकों की छत्रछाया भी उन पर नहीं थी। किसी भी स्वजन या आत्मीयजन का सहयोग भी उन्हें प्राप्त नहीं था, फिर भी उन्होंने जो प्रगति की, सुनने पर वह असम्भव जैसी लगती है, लेकिन उनका भाग्य, पौरुष, साहस और गोरखयोगिनी का मार्ग-दर्शन निमित्त बना और वे भारतवर्ष के सबसे बड़े राज्य के अधिकारी बने।

कुरुबक ने कथा को दूसरा मोड़ दिया- अम्बड़ में उपकारी के प्रति कृतज्ञता की भावना विशेष रूप से समाहित थी। प्रतिदिन और तीनों समय वीर अम्बड़ गोरखयोगिनी की चरणसेवा करते थे। गोरखयोगिनी ने प्रसन्न होकर ही अम्बड़ का नाम विद्यासिद्ध रखा था। गोरखयोगिनी समय-समय पर वीर अम्बड़ को अद्‌भुत वस्तुएं प्रदान करती रहती थी। कुरुबक ने आगे कहा- राजन्! जब मैं आठ वर्ष का था, तब एक बार की घटना है कि वीर अम्बड़ गोरखयोगिनी के पास गए। गोरखयोगिनी ने अपनी ध्यान कुण्डलिका के नीचे गड़ा राजा हरिशचन्द्र का धन भण्डार दिखाया। अग्नि बेताल उस धन भण्डार का संरक्षक अथवा रखवाला था। योगिनी के कारण वह बेताल मेरे पिताजी अम्बड़ पर प्रसन्न हुआ और वह पूरा भण्डार मेरे पिताजी को दे दिया। पिताजी ने भी अग्नि बेताल का सम्मान किया और पातालपुरी के राजा धरणेन्द्र चूडामणि द्वारा प्रदत्त रत्न सिंहासन बेताल को सौंपा। रत्नवती के साथ जो स्वर्ण पुरुष पिताजी ने प्राप्त किया, वह स्वर्ण पुरुष भी उस भण्डार में रख दिया। तत्पश्चात् भण्डार मुद्रित हो गया।

राजन्! यह सब मैंने पिताजी के मुख से सुना है। इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। इस नश्वर संसार में कौन हमेशा रहा है? आयुष्य पूरा होने पर गोरखयोगिनी के वियोग से पिताजी बहुत दुःखी हुए। अब उन्हें अपना जीवन भार लगने लगा। एक दिन वीर अम्बड़ अपनी बत्तीस रानियों के साथ वनभ्रमण के लिये गये। वन में उन्हें 'केशी श्रमण' मिले। घोड़े से उतरकर उन्होंने केशी श्रमण की वंदना की। उन्होंने पिताजी को धर्मोपदेश दिया। निर्ग्रन्थ धर्म की आत्म-कल्याण मूलक साधना का वर्णन सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए, फिर उन्होंने केशी श्रमण से पूछा- प्रभो! निर्ग्रन्थ धर्म उपकारक व शुभ है, आत्म-कल्याण कारक है, लेकिन क्या वह शिवधर्म के समान सार्वजनीन भी है? पिताजी के इस प्रश्न को सुनकर केशी श्रमण ने कहा- राजन्! किसी भी विषय का अधूरा ज्ञान निर्णायक नहीं होता। कूपमण्डूक सागर के विस्तार की कल्पना

नहीं कर सकता। तूने अभी केवल शिवधर्म का ही अनुशीलन किया है। निर्ग्रन्थ धर्म की पूरी जानकारी तुझे नहीं है। जब तू पूरी तरह से जैन दर्शन का रहस्य हृदयंगम कर लेगा तो तेरे प्रश्न का समाधान स्वयमेव ही हो जायेगा। वीर अम्बड़ ने विनम्र वाणी में केशी श्रमण से कहा- प्रभो! कितना अच्छा हो कि मुझे अपने आवास पर ही ज्ञान लाभ का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो। केशी श्रमण ने मेरे पिताजी की प्रार्थना स्वीकार की और हमारे आवास पर पधारे। केशी कुमार श्रमण के श्रीमुख से प्रतिदिन धर्म-देशना सुनकर पिताजी प्रतिबुद्ध हुए और उन्होंने सम्यक्त्व रत्न (रत्नत्रय) प्राप्त किया। श्रावक के बारह व्रत भी उन्होंने ग्रहण किये और श्रावक पर्याय का निरतिचार पालन करते हुए वे जीवन-यापन करने लगे। इतना सुनाने के बाद कुरुबक ने आगे की कथा इस प्रकार कही-

केशी कुमार श्रमण से ही नरपति वीर अम्बड़ को यह मालूम हुआ कि भगवान महावीर जनता का कल्याण करते हुए विचरण कर रहे हैं। एक दिन उन्हें सूचना मिली कि तीर्थंकर महावीर स्वामी चम्पा नगरी में पधारे हुए हैं। अम्बड़ वहाँ पहुँचे। वीर प्रभु को वंदन नमस्कार किया। प्रभु ने उन्हें उपदेश दिया। तदन्तर पिताजी ने प्रभु से पूछा- प्रभो! मैं संसार से कब पार पाऊँगा? वीर प्रभु ने बताया- अम्बड़! भावी उत्सर्पिणी में तू देव नामक बाईसवाँ तीर्थंकर होगा।

अपना ऐसा सुन्दर भविष्य सुनकर पिताजी अत्यन्त आह्लादित हुए, फिर पिताजी ने भगवान महावीर की वन्दना करके निवेदन किया- प्रभो! प्रतिदिन आप मेरी वन्दना स्वीकार करें। मैं राजगृह की ओर जा रहा हूँ, कोई निर्देश प्रदान करें। भगवान ने कहा- अम्बड़! राजगृह में तेरी साधर्मिका सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में विशेष निपुण है। उसे मैं धर्म आशीर्वाद देता हूँ। उसे धर्म-ध्यान की अभिवृद्धि करनी चाहिए। वीर अम्बड़ चकित हो गए। भगवान महावीर भी जिसकी धार्मिक प्रवृत्तियों की प्रशंसा करते हैं, सचमुच ही वह दिव्य व दृढ़ श्राविका होगी। ऐसा सोच अम्बड़ ने सुलसा की परीक्षा लेने का विचार किया। राजगृह में आकर विद्यासिद्ध अम्बड़ ने सर्वप्रथम सुलसा की सम्यक्त्व परीक्षा की योजना बनाई। उसने एक तपस्वी का रूप बनाया और पद्मासन लगाकर आकाश में निरालम्ब ठहर गया। वह अद्भुत चमत्कार देखने थोड़ी ही देर में हजारों व्यक्ति आने लगे और तपस्वी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। सुलसा ने भी यह घटना सुनी पर उसके मुख पर आश्चर्य की एक रेखा भी नहीं उभरी। राजगृह के भावुक भक्तों ने तपस्वी अम्बड़ से अपने घर भिक्षा लेने

की प्रार्थना की, पर उन्होंने किसी का भी निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। आखिर जनता पूछने लगी- हे तपस्वीराज! आप किस भाग्यशाली को भोजन का लाभ देंगे? अम्बड़ ने कहा- सुलसा को। लोग दौड़े-दौड़े सुलसा के घर आये और बधाइयां देते हुए बोले- सुलसा! तू धन्य है। तेरे घर पर वह महातपस्वी भिक्षार्थ आयेंगे। तेरे बिना निमंत्रण दिये ही उन्होंने भोजन करने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। तू कितनी भाग्यशालिनी है। चल, अब तो तपस्वीराज को निमंत्रण दे।

सुलसा ने शान्त-भाव से एक ही उत्तर दिया- जो है, वह मैं समझती हूँ। मुझे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। सुलसा का उत्तर सुनकर लोग चकित रह गये और वे अम्बड़ तपस्वी के पास आकर सुलसा की हठधर्मिता की निन्दा करने लगे। अम्बड़ ने समझ लिया कि सुलसा वास्तव में ही दृढ़ सम्यक्त्वधारिणी है। वीतराग देव के सिवाय किसी को भी अपना देव नहीं मानेगी। इसके बाद तपस्वी अम्बड़ राजगृह नगरी के पूर्व द्वार पर ठहरे और चतुरानन ब्रह्मा का रूप बनाया। ब्रह्मा नगरी में अवतरित हुए हैं, ऐसी प्रसिद्धि नगर में फैल गई। नर-नारी, आबाल-वृद्ध ब्रह्माजी के दर्शनों को आने लगे। लोगों ने सुलसा से भी कहा- आपका अहोभाग्य है, चलकर ब्रह्माजी के दर्शन करो। लेकिन ब्रह्माजी के दर्शन करने की कोई उत्सुकता सुलसा के मन में नहीं हुई। वह दर्शन करने नहीं गई।

इसी क्रम में दक्षिण, पश्चिम द्वार पर अम्बड़ ने विष्णु व शिव के रूप धारण किए। जनता चमत्कृत हुई। लोगों ने सुलसा को कहा- चलो, भगवान शिव-पार्वती को साथ लेकर पधारे हैं। उनके दिव्य रूप के दर्शन करके आँखों को पवित्र करो। पर दृढ़ धर्मिणी सुलसा का एक ही उत्तर था- मैं वीतराग प्रभु की उपासिका हूँ। निर्मोही वीतराग प्रभु के दर्शन कर मैंने अपना जीवन पवित्र कर लिया है। अब मुझे कहीं भी भटकने की जरूरत नहीं। जब लोगों से अम्बड़ ने सुलसा का उत्तर सुना तो अब उसे भरमाने की योजना बनाई। उत्तर दिशा के द्वार पर अम्बड़ ने इन्द्रजाल से चतुर्मुख तीर्थंकर का रूप धारण किया और जनसमूह को धर्म देशना देना शुरू कर दिया। नगर में प्रसिद्धि हो गई- पचीसवें तीर्थंकर प्रकट हुए हैं। लोगों से सुलसा ने कहा- यह सब ढोंग है। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर ही होंगे और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर विद्यमान हैं। पचीसवें तीर्थंकर तो हो ही नहीं सकते। जनता को ठगने के लिए किसी पाखण्डी ने कोई षड्यन्त्र रचा है। मैं तो वहाँ कदापि नहीं जा सकती। सुलसा की दृढ़ता व धर्मनिष्ठा अम्बड़ से छिपी नहीं रही। वह उससे बहुत प्रभावित हुआ और अपने

मूल रूप में सुलसा के पास पहुँचा। एक सहधर्मी के रूप में सुलसा ने अम्बड़ का स्वागत किया। अम्बड़ ने उसकी परीक्षा का रहस्य बताते हुए कहा-

सुलसा बहिन! तेरे सम्यक्त्व की परीक्षा के लिए मैंने विविध उपक्रम किए। तेरी धर्म में ऐसी दृढ़ आस्था देखकर मैं विशेष प्रभावित हुआ हूँ। भगवान महावीर ने भी तेरे सम्यक्त्व की प्रशंसा की है। राजगृह से लौटकर अम्बड़ अपने नगर रथनूपुर आए और श्रावकव्रतों का पालन करते हुए अपनी विद्याओं से जैन शासन की विशेष प्रभावना की। तीर्थंकर नाम कर्म के अर्जन में विशेष रूप से योगभूत होने वाले बीस स्थानों की सम्यक् आराधना की और विरक्ति भाव से रहने लगे। कुरुबक ने राजा विक्रमसिंह से कहा- राजन्! कुछ समय बाद पिताजी ने राज्यभार मुझे सौंप दिया। अंतिम समय में अनशन करके समाधिपूर्वक प्राण त्याग करके देवलोक में गए। पिताजी के देवलोकवास के पश्चात् मेरी माता रानी चन्द्रावती तथा मेरी अन्य इकतीस विमाताएँ उनके विरह दुःख को नहीं सह पाई। उनकी बत्तीस रानियों ने भी अनशन करके प्राण त्यागे, किंतु मोहनिश्रित भावों के कारण मरकर व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुई। अपने पति अम्बड़ के प्रति उन सबका विशेष अनुराग था, अतः व्यन्तरी बनने के बाद वे धन भण्डार में रखे हुए रत्न सिंहासन में पुतलियाँ बनकर रह रही हैं। कुरुबक ने कहा- हे राजन्! पाप कर्म के योग से स्व. पिताजी से प्राप्त मैं अपना सम्पूर्ण वैभव गंवा बैठा। मेरा विशाल राज्य शत्रुओं ने हड़प लिया। अब मेरे पास जीवनयापन का भी कोई साधन नहीं है। इसलिए मैंने गोरखयोगिनी की ध्यान कुण्डलिका के नीचे दबे धन भण्डार को निकालने का निश्चय किया है। जब मैं ध्यान कुण्डलिका के निकट गया तो व्यन्तरी रूपी मेरी माता चन्द्रावती ने मुझसे कहा- पुत्र! हम सभी रानियां व्यन्तरी योनि को प्राप्त हुई हैं और बत्तीस पुतलियों के रूप में तेरे पिता के दिव्य सिंहासन की रक्षा कर रही हैं।

मैं जानती हूँ कि तू यहाँ धन भण्डार प्राप्त करने आया है, लेकिन तू भूलकर भी ऐसा दुस्साहस मत करना। तेरे भाग्य में लक्ष्मी नहीं है। अतएव तू घर लौट जा। कुरुबक ने कहा- राजन्! मैंने विचार किया कि यदि मेरे भाग्य में लक्ष्मी नहीं है तो किसी भाग्यवान् पुरुष से वह भण्डार व सिंहासन प्राप्त करने को कहूँ। इसलिए मैं आपके पास आया हूँ। सम्भव है, आप जैसे भाग्यशाली के सहयोग से मुझे भी गुजारे लायक कुछ मिल जाये। भाग्यहीन का भाग्य जब किसी भाग्यशाली के साथ जुड़ जाता है तो भाग्यहीन के भी दिन फिर जाते हैं। जैसे डोर के सहारे

पतंग भी आकाश में उड़ने लगती है वैसे ही भाग्यवान पुरुष के सहयोग से भाग्यहीन भी सुख व आनंद का अनुभव ले सकता है। अत: अब मेरे साथ चलकर ध्यान कुण्डलिका के नीचे छिपे धन भण्डार व रत्न सिंहासन को प्राप्त कीजिए।

श्री वासपति राजा विक्रमसिंह और उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य

वीर, धीर और पराक्रमी राजा विक्रमसिंह ऐसा सुअवसर कब छोड़ने वाला था। वह कुरुबक के साथ धनगिरी पर्वत पर पहुँचा और ध्यान कुण्डलिका के नीचे सुरक्षित धन भण्डार को निकालने का प्रयत्न किया, त्यों ही आवाज आई- राजन्! इस निधान को हस्तगत करने का प्रयत्न मत करो। यह भण्डार तुम्हें प्राप्त नहीं होगा। इस भण्डार का उपभोक्ता केवल उज्जेयिनी नरेश विक्रमादित्य ही होगा। यह दिव्य सिंहासन भी उसी को प्राप्त होगा। विक्रमसिंह इस अदृश्य वाणी को सुनकर चमत्कृत हुआ। उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। कुछ देर तक चुपचाप खड़ा हाथ मलता रहा और फिर कुरुबक के साथ अपने नगर को लौट आया। राजा विक्रमसिंह ने कुरुबक को अपने दरबार में नियुक्त करके उसकी जीविका की व्यवस्था की। कुरुबक के दिन अमन-चैन से गुजरने लगे। विक्रमसिंह ने भी न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया।

इस वसुधा पर कितने ही राजा आये और गये। यह अनन्त आकाश नित्य नये रंग बदलता है। बहुत समय बाद महाराजा विक्रमादित्य का उद्भव हुआ। महाराज विक्रमादित्य बहुत ही साहसी, पराक्रमी और शूरवीर थे। उन्होंने अपने साहस से अग्निबेताल को वश में किया, अग्निबेताल ने राजा विक्रमादित्य को अम्बड़ का बत्तीस पुतलियों वाला रत्न सिंहासन दिया और साथ ही राजा हरिशचन्द्र का धन-भंडार भी और स्वर्ण पुरुष भी सौंपा। बेताल के सहयोग से राजा विक्रमादित्य ने सारी पृथ्वी को ऋणमुक्त कर दिया और अपने नाम से विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। न्यायपूर्वक प्रजा का संतानवत् पालन करते हुए शासन किया और धर्माराधनापूर्वक शरीर त्याग करके स्वर्ग प्राप्त किया।

राम चमकते भानु समाना

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत – श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,

श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,

नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर–334401 (राज.)

दूरभाष : 0151–2270261, 3292177, 2270359

visit us : www.sadhumargi.com

e-mail : ho@sadhumargi.com

978-93-91137-16-8

9 789391 137168

Price : ₹ 150/-